पथ-भ्रान्त [illegible] के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार स्वर्गीय चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय के 'पयभोला पथिक' नामक उपन्यास का अनुवाद है। इमका अनुवाद श्री सुन्दरलाल त्रिपाठी ने इडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग के साहित्य-विभाग में कार्य करते समय आरम्भ किया था और वह सन् १९३३ ई० की सरस्वती मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ है। किन्तु कुछ विशेष कारणवश सुन्दरलाल जी समस्त पुस्तक का अनुवाद नही कर मके। आठवे परिच्छेद तक तो उन्होने अविकल अनुवाद किया है, बाद को दो परिच्छेदो मे अवशिष्ट अश का साराश लिखकर उपन्यास समाप्त कर दिया है। अन्त मे सरस्वती में प्रकाशित अन्य समस्त धारावाहिक उपन्यासो के समान इसे भी पुस्तक-रूप में प्रकाशित करते समय यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि सरस्वती में जिन परिच्छेदो का साराशमात्र प्रकाशित हुआ है, उनका भी अविकल अनुवाद हो जाना चाहिए और उसका भार अर्पित किया गया इन पक्तियो के लेखक को। इस प्रकार प्रारम्भ के आठ परिच्छेदो का अनुवाद श्री सुन्दरलाल त्रिपाठी ने किया है और अन्त के नौ, परिच्छेदो का इन पक्तियो के लेखक ने।

ठाकुरदत्त मिश्र

पथ-भ्रान्त पथिक

पहला परिच्छेद

परिचय

वह बेचारा मर्चेण्ट आफिस का एक साधारण क्लर्क है। केवल तीस रुपया मासिक वेतन पाता है। इतने मे क्या खाये और क्या पहने। इसी लिए न तो उमे यथेप्ट पुष्टिकर भोजन मिल पाता है और न उसके मन में पोशाक-पहनावे की तरफ ही नजर डालने का उत्साह उत्पन्न होता है। उसकी आकृति देखते ही मालूम पड जाता है कि वह अनाहार-क्लिप्ट और दुर्भिक्ष-पीडित है—उसकी आँखें भीतर को धँस गई है। आँखो के गड्ढो से लेकर उसके दोनो गालो को मानो किसी ने तराश कर बैठा दिया है। उसकी दोनो आँखें वडी-वडी है, परन्तु उनमें कोई भाव नही है, चाहना में कोई अर्थ नही है। मछलियो की आँखो की तरह वे आँखें केवल देख सकती है, मन का कोई भाव व्यक्त नही कर पाती। लोग कहने है कि आँखे मन का दर्पण है, परन्तु उस पर यह बात विलकुल लागू नही होती। उसकी दृप्टि शिशु की तरह सरल नही है, किन्तु मूढ की तरह अचेतन है। उसके शरीर का वर्ण शायद कभी गौर रहा हो, अव वह आलस्य-अवहेलना के कारण तांवा का-सा हो गया है। उसके सिर के प्राय सभी वाल झडकर पतले पड गये है। परन्तु न तो वह एकदम चँदवा ही कहा जा सकता है और न यही कहा जा सकता है कि उसके सिर मे वाल ही है। सारे सिर में वाल फैले हुए है, परन्तु वहुत विरल

हो गये हैं, मानो बहुत दिन के मलेरिया-ज्वर से पीड़ित रोगी का सिर हो। उसकी मूँछें भी पतली हैं, ओठ के बीच के बाल विरल हैं और दोनो किनारो की मूँछे लम्बी होकर नीचे की ओर झुक गई हैं, मानो किसी चीनी की मूँछें हों। तिस पर उसके दोनो कानो के नीचे तक फैले हुए और कानों में भरे हुए बालों ने उसकी एक अजीब किस्म की सूरत बना दी है।

उसके दफ्तर जाने की पोशाक ने न जाने कब जन्म ग्रहण किया था, उसका कोई लेखा नही है। अपने जीवन के पहले प्रभात मे वह ज़ीन के सादे कोट-पतलून के रूप में थी। अब उसमे कुछ-कुछ पीले रग का मिश्रण दिखाई पड़ता है। यदि वह अपनी इस एक-मात्र पोशाक को मैली होने पर धोबी के घर भेजने का अवसर भी निकाल ले और अधिक-से-अधिक दो दिन तक उसका विरह भी सहन कर सके तो धोबी तो उसकी अन्तर्वेदना नही समझेगा—वह आठ-दस दिन से कम मे उसे नही लौटायेगा। इतने दिनो का विरह वह कैसे सहन कर सकता है? वह मर्चेण्ट आफिस का क्लर्क ठहरा, उसके भाग्य में तो विधाता ने एक साथ ही चार दिन से अधिक छुट्टी लिखी ही नही है। तिस पर पूजा की छुट्टियो मे कुछ दिनो तक धोबी लोग भी आनन्द मनाते है, उन दिनो कपड़े नही धोते। अतएव बीच-बीच मे दो-एक दिन की छुट्टी मिलने पर वह तुरन्त धो देने के लिए अपनी पोशाक को उड़िया धोबी के हाथो सौप देता है अथवा गर्म पानी मे साबुन घोलकर खुद ही धो लेता है। धोबी के घर मे ज़्यादा दिनो के लिए डालकर धुलवा लेने का मौका उसे कभी नही मिलता। पोशाक पहने बिना जाने पर भी साहब नाराज होता है और मैली पोशाक देखकर भी उसका पारा चढ़ जाता है। इसी लिए वह ग़रीब अपनी पोशाक को न तो धुलने को ही डाल सकता है और न दूसरे कपड़े पहनकर ही दफ्तर जाने का साहस करता है और उस ग़रीब का वेतन महीने मे केवल तीस रुपया निर्धारित है। जिस महीने

में तीस दिन होते है उसमें तो एक रुपये, रोज की भी आय हो जाती है। परन्तु वर्ष के अधिकाश महीनो मे प्राय इकतीस दिन ही होते है। अतएव महीने मे एक दिन उसे घाटे मे काम करना पडता है। इतने थोडे रुपयो में क्या खाये, क्या पहिने और किस आसरे पर नई पोशाक बनवाये ? इसी लिए उसकी यह पोशाक इतने दिनो तक पक-पककर पीली पड गई है। कोट की बाँहो और पेट के किनारो के फट जाने से उनमें से सूत के फुचडे निकल आये है, मानो कोट-पतलून भालरदार ही हो।

उसका पैत्रिक मकान कलकत्ते में ही घूघूडाँगा में है। उसके पिता ने यशोहर-जिले से कलकत्ते में आकर मामूली रोजगार करना शुरू किया था। पहले-पहल वह अपने सिर पर लादकर कुलफी-बरफ बेचा करता था, आम की भी फेरी लगाता था। उसी से कुछ रुपया जमा करके उसने टाला मुहल्ले में एक किराने की दूकान खोली। समय पाकर उसकी दूकान जम गई और हाथ में कुछ रुपये भी आ गये। अन्त मे उसने न शहर और न गाँव मे, बल्कि कलकत्ते से मिले हुए घूघूडाँगा नाम के मुहल्ले मे थोडी-सी ज़मीन लेकर दो पक्के कमरे और एक खपरैल का रसोईघर बनवाया था। लेकिन उसने अपने लडके को भला आदमी बनाने की दुराशा में स्कूल-कालेज मे पढा-लिखा और एक दफ्तर की क्लर्की दिलवाकर बहुत आनन्द के साथ परलोक-गमन किया। क्लर्क महोदय ने बाप की किराने की दूकान उठा दी है और अब उसी मकान में रहने तो लगे है, परन्तु मरम्मत न होने के कारण मकान में लोना लग गया है और वह जहाँ-तहाँ से झर-झर कर गिरने लगा है। किसी दिन यही उसे दफनाकर उसकी ससार-यन्त्रणा शान्त कर देगा। इसकी अपेक्षा तो यदि वह अपने पिता की किराने की दूकान ही चलाता होता, तो खा-पहनकर स्वस्थ शरीर से आनन्द-पूर्वक अपने दिन बिता सकता। लेकिन इससे तो भलमनसाहत में बट्टा लग जाता।

उसका मकान लकडियो के घेरे से घिरा हुआ है। घेरे के एक तरफ लगा हुआ बेडा ही उसके मकान का दरवाजा है। दीवार घिरवाने के पहले ही उसके पिता का स्वर्गारोहण हो गया था। इसी लिए मकान की चहारदीवारी नही बनवाई जा सकी।

ये लोग तीन भाई है। यह मँझला है। बडे और छोटे दोनो भाई पढ-लिखकर नौकरी की तलाश मे परदेश चले गये है। उनमे से कोई भी मँझले की खोज-खबर नही लेता। उसका पिता भद्रासन मकान के अतिरिक्त चार हज़ार के लगभग नकद रुपया भी छोड गया था। उसने मरते समय कहा था कि "तुम्हारी यह मातृहीन छोटी बहन छोडे जाता हूँ। इसे बडी मुसीबत से पाल-पोसकर इतनी बडी कर सका हूँ। परन्तु इसका विवाह करके नही मर सका। जो रुपया छोडे जा रहा हूँ उससे अच्छा वर और घर ढूँढकर इसका विवाह कर देना। तुम लोग लडको की जाति हो, अपने लिए उद्यम करके कमा लोगे, मेरी दुखिनी की तरफ ध्यान रखना। यह सब रुपया मैने दुखिनी के लिए ही जमा करके रक्खा था।" दुखिनी के बडे और छोटे भाइयो ने कहा कि वे लोग इन रुपयो से परदेश मे नौकरी अथवा रोजगार के द्वारा शीघ्र ही धनी बनने का रास्ता ढूँढ-निकालेंगे। तब दुखिनी के विवाह मे दस-पचीस हज़ार रुपया भी खर्च कर सकेंगे। आज-कल के समय मे केवल चार हजार रुपया मे कही अच्छा लडका भी मिल सकता है? मँझला भाई गरीब, सीधा आदमी था। अतएव उसने भाइयो के बहकावे मे आकर उन्हे सब रुपया सौंप दिया। अपने लिए अथवा बहन के लिए कुछ भी नही रख सका।

उन रुपयो को लेकर उसका बडा भाई अमरीका जा पहुँचा और वहाँ नरम रेशम का चोगा और पगडी पहनकर सन्यासी बन गया। वह अब विवाह न करने पर भी स्वामी जी अथवा बाबा जी बनकर विलास और ऐश्वर्य के सुख में भूला है। वह ससार-विरक्त सन्यासी ठहरा, जिसे अपने-पराये का भेद नही है। अब उसके लिए वसुधैव

कुटुम्बकम् का मन्त्र ही इष्ट है। अतएव उसके मन से अपने भाई-बहन का कोई सवाद लेन की बात ही नहीं उठती।

और उसका छोटा भाई ब्रह्मदेश मे चावल और लकडी का रोजगार करने चला गया। वहीं उसने एक ब्रह्मी स्त्री से अपना घर बसा लिया है और सुख-स्वच्छन्दता-पूर्वक रहने लगा है। उसने भी तब से आज तक अपने घर की तरफ अपना मुँह नहीं किया है, साथ ही भाई-बहन की कोई खोज-खबर लेना भी उचित नहीं समझा।

बहन जब विवाह करने के योग्य हो गई तब मँझले भाई ने अपने दोनो भाइयो को अनेक चिट्ठियाँ लिखी, तार दिये, परन्तु कोई जवाब नहीं पा सका। अन्त मे लाचार होकर पैत्रिक मकान गिरवो रखकर अपनी मातृहीन दुखिनी बहन का बहुत अच्छे घर में विवाह कर दिया। परन्तु विवाह के दो महीने के बाद ही वह बहन मर गई और उसे बे-घर का बना गई। उसका मकान दूसरे के हाथ मे चला गया, वह कभी उसे छुडा भी सकेगा, इसकी कोई सम्भावना नहीं है। उसके पिता ने यह मकान बनवाया था और पूँजी का रुपया खर्च किये बिना ही अपने चलते हुए रोजगार से हर महीने कुछ न कुछ खर्च करके उसे पूरा करवाता जाता था। परन्तु दीवार के भीतरी हिस्से मे पलस्तर लगवा लेने पर भी बाहर चूना नहीं लगवा सका था। अब मकान दूसरे के हाथ गिरवी रक्खा है, बहुत सम्भव है कि किसी दिन इसे छोडकर रास्ते मे खडा होना पडे। इसी लिए वह मकान की मरम्मत की बात तक नहीं सोचता, और सोचने पर भी वह कर क्या सकता है। कुल तीस रुपया का तो नौकर है, खुद क्या खाये-पहने और कहाँ से मकान मे पलस्तर लगवाये। अतएव उसका मकान उसी की तरह अकालवार्धक्य से जराजीर्ण हो गया है, दरवाजो और खिडकियो पर न रङ्ग पोता, न तारकोल लगवाया जा सका है। सारा मकान गन्दा पडा है। वह अब अपने ही पैत्रिक मकान मे दूसरे के मकान की तरह उदासीन होकर निवास करने लगा

है। उसका महाजन प्राय' आकर उसे डाँट जाता है कि मै तुम्हारा मकान वेचकर अपना ऋण और सूद अदा कर लूंगा।

इन्ही सब कारणो से वह गरीब अपना विवाह तक नही कर सका है। ससार मे कौन उसका अपना है, सो भी तो वह नहीं जानता। ये लोग कभी अपने देश नही गये। अब तक परदेश मे ही रहते चले आ रहे है। उसकी मा के मरने पर उसके पिता ने दूर के रिश्ते की एक विधवा वहन को बुलाकर भोजन वनाने के लिए अपने मकान मे रख लिया था। वही बुढिया बुआ अब तक उसके मकान मे है। वही रसोई वनाकर उसे दफ्तर जाने के पहले खिला देती है और उसके घर की रखवाली करती है।

परन्तु इस हीन, दरिद्र और अभागे क्लर्क का नाम काफी यमकपूर्ण श्रीपुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड है, जैसे काने लडके का नाम पद्मलोचन हो। वेचारे के इस (न उच्चारण किये जा सकने योग्य) नाम के कारण भी दफ्तर का साहव उस पर वहुत नाराज रहता है। वह अपने मुंह से इसके नाम का उच्चारण नही कर पाता। न तो वह पुण्डरीकाक्ष वाबू ही पुकार सकता है और न मिस्टर पूतितुण्ड ही उच्चारण कर पाता है। उसकी वात कहते वक्त साहव वहुत नाराज हो जाता है और कहता है—ऐ भद्दे और भयावह नामवाले वावू!

पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड की जितनी अधिक दुर्दशा हुई थी, उसका मन भी उतनी ही हताशा से भर उठा था। वह हर साल अपने आफिस के साहव की मार्फत देशी और विलायती वहुत-से घुडदौडो के टिकट खरीदता है। कौन जाने यदि तीर लग जाय तो वात की वात में उसका भाग्य जग जाय। वेचारा पेट काटकर जो दो पैसा जमा करता है वह घुडदौड के घोडे के पीछे विलीन हो जाता है, अधिक दिन उसके पास सञ्चित नहीं रह पाता। इसकी अपेक्षा भी एक वहुत भारी और दुर्लभ दुराशा ने उसके मन में स्थान कर लिया था। यह दुराशा गङ्गानगर के जमींदार राजावहादुर राजेन्द्रनारायण रायचौधरी की ज्येष्ठा कन्या

मेना देवी को अपने इस टूटे-फूटे घर में गृहिणी के रूप में लाने की प्रचण्ड इच्छा थी। वह मेना को केवल दूर से अपनी आँखों से देखकर उसका अत्यन्त आन्तरिक स्नेह कर बैठा था।

पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड के मकान के ठीक सामने ही राजाबहादुर का बाग से घिरा हुआ एक विशाल भवन है। उस भवन मे एक प्रकाण्ड अहाता है, बाग चहारदिवारी से घिरा है, सामने की ओर लोहे का फाटक है, उसमे सोने का पानी चढा है। फाटक के सामने सङ्गीनधारी सन्त्री का पहरा है। फाटक के भीतर चारो तरफ एक आँगन से घिरा हुआ दोमञ्जिला भव्य भवन है। पुण्डरीकाक्ष के एकमञ्जिले मकान के आँगन से उसकी छत भर दिखाई पड़ती है, भवन बाग की आड़ मे वृक्षो और पत्तो से ढका है। बाहर के फाटक से मकान की तरफ जाने के रास्ते के किनारे एक कटघरे में दो बुलडाग कुत्ते बँधे रहते है। उन दोनो का भो-भो का भयावह नाद पुण्डरीक अपने घर से सुनकर ही डर के मारे कॉंप उठता है। शाम के वक्त लालबेगी जब उन शेर के समान दोनो कुत्तो को मोटी जञ्जीर में बाँधकर घुमाने के लिए बाहर निकालते है तब उनका विपुल कलेवर और प्रकाण्ड मुंह में दाँतो की बिभीषिका देखकर पुण्डरीक के मन में कभी राजाबहादुर के मकान मे जाने तक की कल्पना नही हो सकती थी। बहुत दुर्लभ होने पर भी पुण्डरीक का मन मेना देवी के प्रति आकृष्ट हो गया था। वह इस दुराशा को किसी प्रकार भी अपने मन से दूर नही कर सकता था।

पुण्डरीक की आँखें उसे देखने के लिए लालायित रहती है। मेना और एना दो बहनें है, वे रोज कालेज जाती-आती है। कभी-कभी वे शाम को प्रकाण्ड रोल्सरायस कार में बैठकर घूमने भी निकलती है। पुण्डरीक अपने आफिस जाने का बढ़िया सूट पहन और धूसर वर्ण का एक छाता हाथ मे लेकर अपने मकान के बाड़े के सामने खड़ा हो जाता है। मेना देवी को एक बार आँखो से देख लेने को अपनी शुभ यात्रा मानकर आफिस की तरफ रवाना होता है। कालेज में

अनेक छुट्टियाँ होती हैं। इन छुट्टियो में मेना और एना कालेज नही जाती। परन्तु अभागे मर्चेंट आफिस मे तो इतनी सस्ती छुट्टियाँ नही है। अतएव पुण्डरीक को कालेज की छुट्टियो के दिनो में मेना देवी को देखे विना ही दफ्तर जाना पडता है। यात्रा का मुहूर्त शुभ किये विना जाने को मजबूर होने के कारण सारा दिन उसका मन असमञ्जस मे पडा रहता है, यह डर लगा रहता है कि न जाने कव कौन अमगल हो जाय। किसी दिन बडे बाबू अथवा साहब से डाँट खाने पर ही वह सोचता है—भाग्य मे आज कष्ट बदा था। उसे मै पहले से ही जानता था। आज की यात्रा एकदम निष्फल थी।

मेना और एना से आँखो की वार्ता के अतिरिक्त वह कभी मौखिक आलाप नही कर सका था। फिर भी उसने उनके नौकरो-दरवानो आदि से बाते कर करके उनका पूरा परिचय प्राप्त कर लिया था।

पुण्डरीकाक्ष मेना को मन ही मन प्यार करने लगा था, अतएव वह मेना के मकान के सभी लोगो को प्यार करता था, यहाँ तक कि उन दोनो वुलडागो तक को वह प्यार करने की चेष्टा करता। क्योकि अँगरेजी में एक कहावत है कि यदि तुम मुझे स्नेह करो तो मेरे कुत्ते को भी तुम्हे स्नेह करना होगा। उस मकान के नौकर-चाकर, दासी-दरवान, गुमाश्ते आदि सभी के प्रति पुण्डरीकाक्ष के मन में आदर का भाव था, सवका वह सम्मान करता था। परन्तु उसी मकान में एक आदमी था जिसे देखते ही न जाने क्यो उसके शरीर मे आग लग जाती थी, उसे वह फूटी आँखो नही देख सकता था। उस आदमी के वारे मे भी उसने जान लिया था कि वह राजावहादुर का मन्त्री है। उसका नाम भास्कर है। उसकी उम्र और रूप देखते ही पुण्डरीकाक्ष को रोष आ जाता। उसकी उम्र छव्वीस-सत्ताईस वर्ष के करीव होगी। और रूप वडा मनोहर, सुन्दर, साँचे मे गढा हुआ-सा सुडौल मुँह है, उसकी दोनो उज्ज्वल और विषाद-पूर्ण आँखे सवसे पहले लोगो का मन

हर लेती है। बहुत बडी खिची हुई नहीं होने पर भी इन दोनों आँखो मे जो एक तेज छिपा हुआ है उसे देखते ही उसके सामने सबका मन अभिभूत और सकुचित हो जाता है। आँखो के बाद ही तीक्ष्ण खड्ग के समान उसकी नाक पर दृष्टि जाती है। उसके शरीर का वर्ण चम्पक-पुष्प के समान गौर है और उसमें एक प्रकार की सुनहरी दीप्ति फूटी पडती है, वह मानो शान्त सरोवर के नील जल पर चन्द्र-ज्योत्स्ना का वर्ण हो। उसका आकार काफी वडा है, छ फुट के लगभग लम्बाई होगी, शरीर न अधिक स्थूल है, न अधिक दुर्वल, सारा अङ्ग-प्रत्यङ्ग ठोस, केवल पेशियो से बना है। साथ ही उसका शरीर ऐसा कमनीय है, मानो मक्खन से बना हो, मानो किसी निपुण शिल्पी ने मोम गूँध गूँध-कर इस मूर्ति का गठन किया हो। पहले-पहल देखते ही उसके बल का ज्ञान हो जाता है। परन्तु उसमे कही भी गुण्डेपन का आभास नहीं मिलता। उसका मुँह सदा ही विषादयुक्त गम्भीर और मितभाषी-सा बना रहता है। पुण्डरीकाक्ष उसे देखते ही डरते-डरते नमस्कार करता है, वह भी बदले में नमस्कार करता है, उसके मुँह का भाव ज़रा भी नही वदलता। पुण्डरीकाक्ष का मन यद्यपि उसे नमस्कार करने के बाद जलने लगता है, तथापि वह मेना देवी के मकान का एक प्रधान व्यक्ति है, उसका असम्मान करने का भी उसे साहस नही होता। पुण्डरीकाक्ष ने यद्यपि कभी खुलकर यह वात नही सोची थी, तो भी अनजाने मे ही उसके अन्तर में एक सन्देह उत्पन्न हो गया था कि मेना और भास्कर की जो विषादयुक्त गम्भीरता है उसमे कोई न कोई रहस्य अवश्य छिपा है। उसके अन्तर में एक प्रकार की ईर्ष्या और भय का यह भाव था कि जिसे वह अपने प्राणो से भी अधिक प्यार करता है उसे शायद यह व्यक्ति छीने लिये जा रहा है, हो न हो अब तक यह उसका मन छीन भी चुका हो। ऐसी ही दुर्भावनाओ से पुण्डरीक का मन जितना ही भरता था, उतना ही वह मेना से अनुरक्त और भास्कर से विरक्त होता जाता था।

राजाबहादुर के मैना और एना के अतिरिक्त कोई सन्तान नही थी। एक लडका था, उसे मरे हुए पाँच-छ वर्ष हो गये है। लडके के शोक मे तीन-चार वर्ष पहले इन दोनों की मा रानी भी मर चुकी है। राजाबहादुर की उम्र अभी ज्यादा नही है, अधिक-से-अधिक पचपन-छप्पन के लगभग होगी। इस उम्र मे राजा-महाराजा के लिए एक और विवाह कर लेना कौन-सी बडी बात है? रानी के मरने के बाद से बहुत-से ब्राह्मण विवाह तय करने के लिए उनके मकान मे आते-जाते रहते है। परन्तु राजाबहादुर किसी प्रकार भी विवाह करने के लिए प्रस्तुत नही होते। वे कहते है कि समर्थ लडकियो का विवाह न करके स्वय अपना दूसरा विवाह करने पर ससार क्या कहेगा और लडकियाँ ही क्या सोचेगी। बडी लडकी मैना उन्नीस वर्ष की हो गई है और छोटी लडकी का सत्रहवाँ वर्ष पूरा होने को है। परन्तु लड़कियाँ जिद किये बैठी है कि एम० ए० पास किये बिना वे विवाह ही नही करेगी। मैना और एना दोनो ही बी० ए० मे है--एक फोर्थ ईयर मे और दूसरी थर्ड ईयर मे। उन्हे एम० ए० पास करने मे अब भी दो-तीन वर्ष बाकी है। तब तक तो राजाबहादुर की उम्र साठ तक पहुँच जायगी। तब भी क्या वे विवाह करेगे? वे किसी को गोद लेगे अथवा नही, यह कुछ सुना नहीं जाता। तो भी एटर्नी महोदय बीच-बीच मे आते-जाते रहते है और न मालूम क्या-क्या लिखा-पढी होती है।

पुण्डरीकाक्ष ये सब बाते सुनता है और सोचता है--हाय, यदि ये मुझे गोद ले लेते। परन्तु यदि मै राजाबहादुर का पोष्यपुत्र हो जाऊँगा तो मैना मेरी बहन हो जायगी। तब तो विवाह की सम्भावना उसी क्षण सदा के लिए समाप्त समझो। इसकी अपेक्षा तो मुझे यदि ये अपना दामाद बनाकर घर मे रख ले तो सभी दृष्टियों से सुन्दर हो। परन्तु ये क्या देखकर मुझे अपना दामाद बनायेगे? जिसके पास कुछ नही होता उसे ही तो लोग घर-जमाई बनाते है। जिसके पास कोई जीविका अथवा धन-सञ्चय होगा वह अपनी ससुराल मे रोटियो के

टुकड़ों पर क्यों पड़ा रहेगा ? दीन-हीन होने के कारण ही तो मैं अपनी पत्नी के चरणों का दास बनकर उसकी आज्ञा के अनुसार चलने को तत्पर होऊँगा। तो भी दामाद बनने के लिए एक गुण का होना तो आवश्यक ही है—वह है राजकुमारी का वर बनने के योग्य रूप। यदि दोनों वक्त पेट भर अच्छी चीजें खाने को मिलें तो इसी चेहरे से आभा फूट पड़े। परन्तु हाय रे भाग्य। यह तो मेरा दिन का सपना देखना है। यदि घुड़दौड़ का एक दाँव मार सकूँ तो फिर मेरी बराबरी कौन कर सकता है ? मैना मुझे नित्य ही देखती है, मेरी तरह वह भी अवश्य ही मन ही मन मुझसे स्नेह कर बैठी है। अब हम लोगों के विवाह का प्रश्न उठने के लिए किसी सुयोग का ही विलम्ब है। यदि मेरे पास कुछ अर्थ-बल होता, तो दास-दासियों को बख़शीश देकर मैना के पास प्रेमोपहार भेजकर उसे काबू में कर लेता।

हमारे देश में कन्यापक्ष ही विवाह का प्रस्ताव करता है। परन्तु हम लोगों का तो प्रणय-घटित पाणि-ग्रहण का मामला है, कन्या तो किसी प्रकार अपने पिता से मुँह खोलकर विवाह की बात कह न सकेगी। अतएव पाश्चात्य विधान के अनुसार वर को ही विवाह का प्रस्ताव रखना पड़ेगा। किन्तु मुझमें तो इतना साहस है नहीं। यदि कहीं दरबान के द्वारा धक्के मारकर निकलवा दिया गया तो मैं मैना के सामने मुँह दिखाने योग्य भी नहीं रह जाऊँगा। अन्त में विवाह के लोभ में उसे देख पाने का भी सुख खो दूँगा। विरह असह्य हो जाने पर किसी न किसी दिन मैना ही किसी के द्वारा पिता से अपने मन की बात अवश्य ही उठायेगी, और यह बात उठते ही सारा मामला बन जायगा।

पुण्डरीकाक्ष सारे दिन, दिन के स्वप्न देखता और आकाश-कुसुम-चयन करता रहता है। उसकी बुढ़िया बुआ बीच-बीच में उससे विवाह करने के लिए तक़ाज़ा कर लेती है। वह कहती है—अब मेरी उम्र बीत आई। कुछ ठीक नहीं, कब मर जाऊँ। तब देख-भाल

कौन करेगा रे पुण्डरीक ? एक कोई सयानी-सी लडकी देखकर विवाह कर ले, जो तेरी गृहस्थी का बोझ सँभाल सके। पुण्डरीक कहता है—ठहरो बुआ, पहले कुछ रुपये-पैसे तो हाथ में आ जायँ, नही तो वहू को घर में बिठालकर खिलाऊँगा क्या ? उसकी बुआ अपने ही आप बकने लगती है—हाँ, हाँ, तेरे हाथ में आ चुके रुपये, और कर चुका तू व्याह। न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी।

परन्तु पुण्डरीक निराश नही होता। उसके मन में दृढ विश्वास है कि मेना के बी० ए० का नतीजा निकलने के पहले ही या तो वही घुडदौड की बाज़ी मे अपार सम्पत्ति पा जायगा और तब स्वच्छन्दता-पूर्वक राजाबहादुर के पास जाकर उनकी कन्या मेना के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव रख सकेगा, और नहीं तो मेना ही स्वयवरा के रूप में अपने पिता से कहेगी कि पुण्डरीकाक्ष-पूतितुण्ड को वह स्नेह कर बैठी है, उसके अतिरिक्त इस जीवन मे और किसी से वह विवाह नहीं कर सकती।

पुण्डरीकाक्ष अपने मन मे इस प्रकार के पागलपन की बात सोचता ही रहता। परन्तु कभी किसी से अपने मन की यह दुराशा प्रकट न करता। उसके मस्तिष्क मे इतनी बुद्धि अवश्य थी और मेना की ओर से भी कभी उसे अपनी दुराशा के सफल होने का आभास नही मिला। मेना के मुखमण्डल मे सदा गाम्भीर्य की छाप लगी रहती है, मानो को गम्भीर चिन्ता उसके मन में अकित हो गई है, मानो कोई विषाद का कारण उसके जीवन में विजडित हो गया है। वह महारानी की तरह महामहिमान्वित है, मानो वह देवी-प्रतिमा है। न उसके मुँह में हँसी दिखाई पडती है, न कोई चञ्चलता, आत्मस्थितता का परम गाम्भीर्य अवश्य दिखाई पडता है। उसमें ऐसा अनुपम रूप और लावण्य है कि उसे देखकर श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसे पूजा करने की इच्छा होती है। उसे देखकर मन मे भय का सञ्चार होता है, परन्तु उसे अपने मन में स्नेह करने का साहस नही उत्पन्न हो सकता। मानो ऐसा लगता

है कि नरलोक से उसका कोई सम्पर्क ही नही है, वह तो ससार से स्वतन्त्र, विच्छिन्न, स्वय सम्पूर्ण है।

मेना के पास मे ही गाडी मे एना बैठी रहती है। वह मानो अपनी वहन के गाम्भीर्य का चित्रपट है। मेना की गम्भीरता को वह और भी अधिक परिस्फुट करके प्रकाशित कर देती है। उसकी आँखो में, मुँह मे, सारे अवयवो मे हँसी की हिलोर और चञ्चलता मौजूद रहती है। मानो वह आनन्द-सरोवर की एक तरङ्ग, शरीरिणी वाणी है। उसकी प्रत्येक अङ्ग-भङ्गी मुखर हो उठती है। उसके समीप होने के कारण ही उसकी वहन की महिमा और गम्भीरता और अधिक स्पष्ट हो जाती है। और उसके वगल मे ही उसकी वहन बैठी होती है, इसी लिए वह और अधिक चञ्चल प्रतीत होती है।

पुण्डरीकाक्ष चाहे एना की ओर न देखे, परन्तु एना नित्य पुण्डरीकाक्ष की ओर देखती है और अपनी वहन से चुपके-चुपके कहती है—देखो दीदी तुम्हारा वह लोभी वङ्गाली मुँह वाये खडा है।

यह कहकर एना जव हँसते-हँसते अपनी वहन की गोद मे लोट जाती है तव उन लोगो की मोटरगाडी पुण्डरीकाक्ष के शरीर पर धूल उछालकर वडी दूर निकल जाती है। पुण्डरीक को किसी दिन पता नही चलता कि उसे देखकर एना कैसा परिहास करती है और मेना एक वार अपनी आँखो की एक कोर से उसे देखकर और गम्भीर वनकर अपनी दीदी से तिरस्कारपूर्वक क्या कहती है। मेना गम्भीर होकर एना से कहती है—छि एना! तुम क्या लडकपन करती हो? तुम दिन दिन वच्ची होती जाती हो क्या? उस वेचारे का मकान ही जब वही है तव वहाँ न खडा होगा तो कहाँ खडा होगा?

परन्तु कौन उसकी युक्ति सुनता है? एना प्रतिदिन पुण्डरीकाक्ष को देखकर 'वह देखो दीदी' कहकर वहन की गोद में लोट जाती है। जितने दिन बीतते जाते है, एना की वाते उतनी ही सक्षिप्त होती जाती है। फिर वह केवल 'दीदी' कहकर ही मेना की गोद मे हँसी की

किल्लोल करती हुई लौट जाती है और उसकी दीदी को भी यह समझने में देर नही लगती कि क्या दखकर एना को इस प्रकार हँसी का उद्रेक हो आता है। अन्त मे ऐसा हो गया कि पुण्डरीक यथास्थान उपस्थित है या नही, यह देखने के कौतूहल से मेना भी अव नित्य कटाक्ष के साथ उसे एक बार देख लेती और एना के हँसना शुरू करने पर उसका भी मुँह कुछ-कुछ हँसी की आभा से उद्भासित हो उठने लगा।

इसी प्रकार पुण्डरीक मेना और एना से विशेषरूप से परिचित हो गया था। और पुण्डरीक भी अधिकाश समय मेना और एना के मन मे विराजमान रहने लगा। परन्तु उन लोगो की अवस्था का तारतम्य ऐसा विषम था कि वे लोग परस्पर पडोसी होने पर भी वरावर अनजान-अपरिचित चले आ रहे है। इस जनाकीर्ण नगर मे आमने-सामने के मकान के निवासी होने पर भी उन लोगो में से कोई किसी को पहचान कर भी नही पहचानता। पडोसी होने पर भी एक पक्ष दूसरे पक्ष से वातें करना आवश्यक नही समझता, और दूसरा पक्ष दुर्निवार आकाक्षा होने पर भी वातें करने का साहस नही कर पाता।

एक दिन पुण्डरीक दफ्तर जाने के लिए प्रस्तुत हो रहा था। इतने में उसकी बुआ ने आकर कहा--अरे पुण्डरीक, कल तेरा जन्म-दिन है। आज आफिस से लौटते समय अपने लिए कोई भली-वुरी चीज़ खरीदे लाना। और एक नया वस्त्र भी ले आना। कल एक कपडा पहनाकर तुझे खीर खिलाई जायगी। तू पैंतीस वर्ष का हो गया वेटा। अब छत्तीसवे मे पैर रक्खेगा। इस बार अपना ब्याह कर ले बेटा। बहू के विना यह सूना घर क्या अच्छा लगता है? तेरा एक भाई तो सन्यासी होकर कहाँ जाकर रहने लगा है, इसका कुछ ठीक-ठिकाना नही है। अव क्या तू भी सन्यासी हो जायगा? तेरा यह ढङ्ग न तो सन्यासियो का-सा ही दिखाई पडता है और न गृहस्थियो का-सा।

पुण्डरीकाक्ष ने थोडी देर चुप रहकर कहा—इस पार अथवा उस

पार, जो कुछ होगा, मैं तुम्हे आषाढ के महीने मे बताऊँगा बुआ। तब तक गृहस्थी अथवा फकीरी दो में से एक स्थिर हो जायगी। अब तक जब तुम मेरा स्त्री-शून्य ससार चला लाई तब और ये कुछ महीने किसी प्रकार चला दो। उसके बाद यदि मैं विवाह कर सका तो अच्छी ही बात है, और नही तो तुम्हारी सेवा और सहायता करने के लिए एक नौकरानी रख दूँगा।

बुआ ने सिर हिलाकर कहा—हाय रे मेरा भाग्य ? मैं क्या अपनी सेवा करवाने के लिए तुझसे बहू लाने को कहती हूँ ? तेरी यह दशा मैं अब अपनी आँखों से देख नहीं सकती।

पुण्डरीक ने बुआ की बात सुनकर भी नही सुनी। उसने कोई जवाब नही दिया। उस समय वह मन ही मन हिसाब लगा रहा था—आगामी मार्च महीने मे मेना की बी० ए० की परीक्षा हो जायगी और जून मे नतीजा निकल जायगा। जून के ही महीने मे डर्बी स्वीपर की लाटरी का फलाफल ज्ञात हो जायगा। उसके बाद मेरे भाग्य मे जो कुछ लिखा होगा उसका निर्णय हो जायगा, और मेरा भविष्य स्थिर हो जायगा।' इस बीच यदि मेना का विवाह हो गया तो सारा मामला खत्म समझो। यदि तब तक विवाह न हुआ और मैं घुड-दौड में बाजी मार ले गया तो सीधे राजाबहादुर के पास जाकर अपने साथ मेनादेवी के पाणिग्रहण का प्रस्ताव करूँगा। तब तो मेना अथवा राजा-बहादुर कोई भी मुझे अस्वीकार नहीं कर सकेंगे।

पुण्डरीकाक्ष ने अन्यमनस्क-भाव से ही डिब्बिया से एक पान निकाल-कर मुँह मे रख लिया और मा दुर्गा का स्मरण करके अपना छाता हाथ मे लेकर दफ्तर की राह ली। वह अपने मकान के लकडी के बेडे को खोलकर बाहर आ उपस्थित हुआ और चारो ओर निगाह दौडाकर देखने लगा कि मेना की मोटर चली गई है या नही। वह उस मोटर के टायर का चिह्न सडक की धूल मे देखकर पहचान लेता था। उसने मेना के मकान की तरफ आँख फेरते ही देखा कि मेना की मोटर चली जा रही

है। गाडी के पीछे का नम्बर तो उसके सामने ही था। गाडी उस पर धूल झोकती हुई चली गई, यह देखकर वह चकित रह गया और मन ही मन बुआ को गालियाँ बकता हुआ दफ्तर की ओर बढा। व्यर्थ ही उम्र का लेखा और विवाह की चिन्ता सिर पर लादकर ही उसने देर करा दी। आज का दिन एक-दम निष्फल गया। केवल एक बार चकित दृष्टि से देख लेता था, सो भी आज मेरे भाग्य मे नही बदा था। आज दफ्तर मे जाकर न जाने कैसी लाञ्छना सहन करनी पडे। मधुसूदन ! मधुसूदन ! !

पुण्डरीक बहुत गिरे हुए मन से दफ़्तर को चला।

दूसरा परिच्छेद
भाग्यं फलति सर्वत्र

पुण्डरीकाक्ष दुर्गा-दुर्गा जपता हुआ दफ्तर जा उपस्थित हुआ। उसके दफ्तर के बडे बाबू का नाम वैद्यनाथ था। लेकिन वहाँ के सब बाबू उसके सूने मे उसे दैत्यनाथ कहकर पुकारते थे। पुण्डरीकाक्ष दफ्तर पहुँचकर अपनी चुनी हुई चद्दर को कुर्सी की पीठ पर बाँधता हुआ चारो तरफ ताकने लगा। वह सोचने लगा कि दफ्तर आने में तीन मिनट की देर हो गई है, यह देखकर दैत्यनाथ कही से लपका हुआ चला तो नही आ रहा है। आ पहुँचा तो आफत ही समझो, क्योकि आज घर से एकदम निष्फल और अशुभ यात्रा करके चला हूँ। परन्तु यह जानकर कि दैत्यनाथ अभी तक दफ्तर नही पहुँचा है उसे थोडा धैर्य बँधा और वह अपनी कुर्सी पर एक अखबार रखकर बैठा। उसके बाद लेजर के पन्ने खोलकर अपने काम में लग गया।

उसका सारा दिन डर के मारे दुर्गा का नाम जप करते-करते ही बीता। उस दिन शनिवार था। दफ्तर की छुट्टी भी जल्दी ही हो गई। उस दिन न जाने कौन से भाग्य से उसे झिडकी अथवा अपमान नही सहन करना पडा। यह देख वह कुछ आश्चर्य के साथ दफ्तर से बाहर हुआ। अब वह प्रसन्नचित होकर सोचने लगा—मैं प्रतिक्षण देवीसूक्त का जो स्मरण करता हूँ, यही मेरा रक्षा-कवच है। दैत्यदलनी मेनादेवी की महिमा से दैत्यनाथ के विष मे भरे हुए दाँत भी आज मेरा कुछ न कर सके।

पुण्डरीकाक्ष सिर पर छाता लगाये हुए धीर मन्थरगति से घर वापस जा रहा था। उस समय चारो तरफ स्वदेशी-आन्दोलन और विदेशी-बहिष्कार के उत्साह का तूफान उठा हुआ था। रास्ते में बहुत-से

स्त्री-पुरुष दल बाँधकर वन्दे मातरम् की आवाज़ लगाते हुए जुलूस व साथ चल रहे थे। विलायती कपडे की दूकानो के सामने लडके-लडकिय के दल के दल पडे हुए धरना दे रहे थे। कितने ही लोग शराब, अफीम चरस आदि की दूकानो में धरना दिये पडे थे। चारो तरफ एक तरह का शोरगुल और चचलता दिखाई पडती थी। सत्याग्रही बालक-बालिकाएं हाथ जोड़कर और पैर पकडकर खरीदारो से विदेशी चीज न खरीदने और मादक वस्तु न छूने के लिए विनय कर रही थी। बहुत-से खरीदार लज्जित होकर वापस जा रहे थे। कोई चुपचाप खरीद भी लेता था तो उसके मुँह मे उदासी का भाव आ जाता था और कोई कोई मूर्खों की तरह चिल्ला-चिल्लाकर तर्क कर रहे थे, नाराज़ दिखा रहे थे और अपनी स्वाधीनता मे बाधा पहुँचते देख थोथे घमड और क्षमता का ढोग भर रहे थे। और साथ ही पुलिस के कान्स्टेबुल और सार्जेंट आकर सत्याग्रही धरनेवालो को पीट रहे थे, उन्हें गिरफ्तार कर रहे थे, तितर-बितर करके भगा रहे थे। इस समय सडक पर चलना भी निरापद नही था। तितर-बितर होकर भागे हुए लोग कब सिर पर आ पडें, इसका कुछ ठीक नही था। कब सत्याग्रहियो का पीछा करनेवाली पुलिस की लाठी किसके सिर पर आ बैठेगी, इसका भी कुछ ठिकाना नही था। चारो तरफ से होनेवाली लाठियो की बौछार अपराधी-निरपराधी के निर्णय का अवसर नही पाती थी। पुलिस के लोग इस बौछार के अलावा और किसी तरफ नही देखते थे उनकी केवल यही कडी आज्ञा थी कि 'सामने के लोगो, भागो।' सडक के दोनो तरफ के फुटपाथ छोडकर उसके बीच से चलना भी खतरे से खाली नही था। वहाँ भी ट्राम के आरोहियो को उस पर न बैठने की प्रार्थना करने के लिए दल के दल लडके चलती हुई ट्राम पर चढ जाते थे और वहाँ सार्जेंट अथवा ट्राम के नौकरो की लाठियों की चोट खाकर गिरते-पडते थे। वह शनिवार का दिन था। दफ्तर की छुट्टी हो जाने पर भी अब तक बहुत-से कालेजो मे छुट्टी

नही हुई थी। कालेजो के हर एक गेट पर भी वडी भीड जमी हुई थी। सत्याग्रही वालक-वालिकाये विद्यार्थियो से कालेज छोडकर स्वदेश के वुरे दिन मे उसकी दीनता मिटाने के लिए सलग्न होने का अनुरोध कर रही थी। वहाँ भी 'पुलिस लाठी ऊँची किये हुए आ रही है' और उसके वाद 'इसी क्षण भागो' का शोर भगी हुई भीड मे मच रहा था।

निरीह, गरीव पुण्डरीकाक्ष अपना पैत्रिक प्राण और निज का शरीर किसी प्रकार वचाकर घर पहुँच जाता तो उसकी जान वचती। जो दशा थी उससे न जाने कव प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाय कि 'काये वचने न सम्वन्ध का कस्य परिदेवना।' इसी लिए वह वहुत सतर्क होकर डर के मारे दोनो तरफ के फुटपाथ छोडकर वीच सडक से खूव जल्दी-जल्दी चला जा रहा था। जव वह प्रेसीडेन्सी कालेज के नजदीक आया तब उसने देखा कि वहाँ विद्यार्थियो की वडी भीड जमी हुई है और उनका तमाशा देखने के लिए रास्ते पर चलनेवालो की उससे भी ज्यादा भीड जमा हो गई है। इतने मे ही कही से गाडी मे भरे हुए पुलिस के कान्स्टेबुल और सार्जेंट वहाँ आकर उतर पडे और तुरन्त अन्धे होकर चारो तरफ से सव पर विना विचारे हुए लाठियाँ वरसाने लगे। भीड तितर-वितर होकर इधर-उधर जहाँ जगह मिली, और गलियो आदि से भागने लगी। पुण्डरीकाक्ष कोई चारा न देख कालेजस्ट्रीट छोड हिन्दूस्कूल के सामने की गली में घुस गया और श्यामाचरण दे स्ट्रीट से होता हुआ हरिसन रोड पार करके एकदम कालेजस्ट्रीट मार्केट के सामने आकर फिर कालेजस्ट्रीट से चलने लगा। पीछे जो काण्ड हो रहा था उसे दूर के निरापद स्थान से देखने का लोभ भी वह रोक नही रहा था।

वार-वार पीछे की तरफ देखता हुआ वह उत्तर की ओर जा रहा था। उसका मुँह सामने की अपेक्षा पीछे की तरफ को ही अधिक फिरा हुआ था। अभी तक वह कालेजस्ट्रीट की सीमा को पार

नही कर सका था कि उसने अपने सामने की तरफ चटापट दौडने की आवाज सुनी और डरकर पीछे की ओर मुडा हुआ मुँह सामने फिराकर आश्चर्य के साथ देखा कि बहुत-सी छोटी-बडी लडकियाँ भागी चली आ रही है। पहले उनके आने की आवाज सुनकर वह जिस प्रकार डर गया था, अब उसी प्रकार आश्चर्य में पडकर अवाक् रह गया और खडा होकर देखने लगा कि ये लडकियाँ कहाँ जा रही है। विस्मय से काँप उठने के बाद जब उसकी आँखो के सामने का अँधेरा दूर हुआ तब उसने बडे आश्चर्य के साथ देखा कि उन स्त्रियो के दल के बीच मेना और एना मौजूद है। वे दोनो राजा राजेन्द्रनारायण राय-चौधरी की कन्यायें है, जो कभी गाडी के अलावा एक पैर भी पैदल नही चलती, वे लोग भी आज पैदल चलकर लाठियो के बौछार की तरफ जा रही है। किस उद्देश्य से वे लोग टूटे बाँध के जलस्रोत की तरह भागी चली जा रही है, यह ठीक-ठीक न समझ पाने के कारण पुण्डरीकाक्ष वही खडा-खडा हतबुद्धि होकर देखने लगा। लेकिन जब उसने यह देखा कि एना उसे छोडकर चली गई तब उसे होश आया और वह भी उन लोगो के पीछे भागता हुआ चिल्लाने लगा——मेनादेवी, मेनादेवी, उस तरफ मत जाना, मत जाना, वहाँ मार-काट मची है, सिर फोड दिये जाते है।

वे सब बेथून कालेज की छात्राये थी। पुलिस छात्रो पर प्रहार कर रही है, यह खबर पाते ही वे दल बाँधकर इस यातना से उनकी रक्षा करने अथवा उसे उनके साथ खुद बँटा लेने के इरादे से निकल पडी। बीच सडक पर नाम लेकर पुकारने की आवाज सुनकर मेना ने एक बार मुँह फिराकर पुण्डरीकाक्ष की तरफ देखा, साथ ही और भी बहुत-सी लडकियो ने देखा। लेकिन उस सडक पर खडी होकर कैफियत देने का समय नही था। वे लोग कुछ बोले बिना आगे बढ गईं। केवल एना पुण्डरीकाक्ष को देखते ही हँस पड़ी——हि हि हि! दीदी! वही........

मेना जरा डाँटकर आगे बढती हुई बोली--चुप।

लडकियो का दल जितना आगे बढता जाता था, भीड उसके लिए रास्ता खाली करती जाती थी। लडकियाँ भीड को पार करके आगे बढ गई और कौतुकप्रिय जनता से घिरकर वे पुण्डरीकाक्ष की दृष्टि से ओझल हो गई।

पुण्डरीकाक्ष कर्तव्य-ज्ञान-शून्य होकर एक क्षण तक खडा रहा और उसने मन मे एक निश्चय कर लिया। उसके बाद वह भी उसी गोलमाल की तरफ वेग से दौडा। आज मेना से परिचय प्राप्त करने का जो परमसुयोग उपस्थित हुआ था, उसे वह किसी प्रकार खो नही सकता था।

लडकियाँ सुगमता से ही जनता का व्यूह भेद करके भीतर पहुँच गई। सबने आदर के साथ उनके लिए रास्ता छोड दिया। परन्तु उस भीड की पक्की दीवार को तोडकर भीतर घुसने मे पुण्डरीकाक्ष को बडी देर लग गई। पूर्वीपाडा के फुटपाथ से होकर प्रेसीडेन्सी कालेज के सामने पहुँचकर उसने देखा कि लडकियाँ दीवार की तरह आड करके छात्रो के सामने खडी है, वे लोग पुलिस की लाठियो के निष्ठुर प्रहार के सामने छात्रो का जिरहबख्तर बन गई है। पुलिस लडकियो का हाथ खीचकर उन्हे दूर हटा देती है और जहाँ उसे जरा भी जगह मिली वही से लाठी बरसाकर पुरुष पिकेटरो को मारती है और दूर हटाई हुई लडकियो को गिरफ्तार कर-करके मोटर-बस मे ले जाकर बन्द कर देती है। एक क्षण में ही यह सब हो जाता है, ठीक तरह देखने का अवसर तक किसी को नही मिल पाता। पुण्डरीकाक्ष ने व्याकुल दृष्टि से भीड मे मेना को ढूँढते-ढूँढते देखा कि एक सार्जेंट मेना का हाथ पकडने को उद्यत हो रहा है। पुण्डरीकाक्ष की सारी भीरुता उसी क्षण लुप्त हो गई। वह एक छलाँग मे ही रास्ते को पार करके उसकी तरफ मन आकृष्ट करने के लिए हाथ का छाता ऊँचा करके सार्जेंट से बोला--टेक केयर, प्लीज़ डोण्ट टच हर।

दूसरे ही क्षण वह सिर पर चोट खाकर आँखो में अँधेरा देखते-देखते जमीन पर गिर पडा। होश आने पर उसने अपने को एक अनजान जगह मे लेटा हुआ पाया। पहले-पहल ज्ञान होने पर उसने समझा कि वह शायद मेना के मकान मे ले आया गया है और स्वय मेनादेवी उसी प्रकार उसकी सेवा-शुश्रूषा कर रही है, जिस प्रकार आयशा ने जगतसिंह की शुश्रूषा की थी। धीरे-धीरे अधिक सचेत होने पर उसने देखा कि वह अस्पताल मे पड़ा है और उसके नजदीक पुलिस कान्स्टेबुल का पहरा खड़ा है। पहले उसका मन निराशा से दुखी हो गया। परन्तु दूसरे ही क्षण उसके जी मे यह बात उठी कि वह अपनी प्रियतमा मेनादेवी को अपमानित होने से बचाने के लिए घायल और गिरफ्तार हुआ है। तब उसका मन खिल उठा। उसने बदले मे कोई पुरस्कार पाये बिना केवल त्याग की भावना से यह कष्ट स्वीकार किया था, इससे उसका आनन्द दूना बढ़ गया। पृथ्वी की सृष्टि से लगा कर आज तक कोई वीर सैनिक युद्ध को जीतकर अथवा उसमे आत्मविसर्जन करके इतना प्रसन्न हुआ है कि नहीं, इसमें सदेह है। वह अपने तेज बुखार और सिर के दर्द को भूलकर आनन्द-विभोर होकर आँखें बन्द किये पडा रहा। उसने किसी लाभ की आशा रक्खे बिना ही इस निश्चित विपत्ति को अपनाया था, तो भी उसके मन में क्षीण आशा हो रही थी कि यदि मेना मुक्त होगी तो उसके लिए जो अपनी इच्छा से चोट खाकर बन्दी हुआ है, उसे एक बार देखने के लिए अवश्य आयेगी। और इस बहाने से उससे बातचीत तो हो ही जायगी, घनिष्ठता बढ़ने मे भी देर न लगेगी। और उसके बाद........

पुण्डरीकाक्ष अपने आहत मस्तिष्क से इसके बाद के आनन्द की सम्भावना की कल्पना न कर सका क्योंकि वह आनन्द सदा ही उसकी कल्पना से परे था।

उपन्यास मे जो घटना सहज ही हो जाती है, वास्तव जीवन में

वह हर समय घटित नही होती। कोई भी उपन्यास-लेखक इस प्रकार की दैवघटना के अपघात की अवहेलना न करता। यहाँ तक कि विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ने भी मोटरगाडी की दुर्घटना मे अमित और लावण्यलता को मिला दिया था। वंकिमचन्द्र की आयशा तो आहत और बन्दी जगतसिंह की शुश्रूषा करने जाकर उसके प्रेम में आवद्ध हो गई थी। सर वाल्टर स्काट की रचना में रेबेका भी आइवनहो को इसी प्रकार स्नेह कर बैठी थी। और भी कितने ही लेखको की पुस्तको मे इसी प्रकार के सस्ते कौशल के अवलम्बन की कहानियाँ है। परन्तु पुण्डरीकाक्ष का भाग्य-विधाता उस प्रकार की लीक पर चलनेवाला व्यक्ति है ही नही, उसके भाग्य में इस सहज मिलन के उपाय की वह एकदम उपेक्षा कर गया। भाग्यवश वह यहाँ तक पहुँच गया था, इसी लिए इस कहानी को और थोडे विस्तार की जरूरत पड गई, नही तो उसकी कलम छिः, कलम नहीं, टाइप करने की मशीन, रोक देनी पडती, और पाठक-पाठिकायें बडी खुशी से यहीं पर पुस्तक बन्द करके कहानी के निष्कर्ष का अनुमान लगा लेती।

पुण्डरीकाक्ष घायल या गिरफ्तार हो गया है, यह वात उस भारी गोलमाल मे मना अथवा एना कोई भी न जान सकी। पुलिस जव उन लोगो को गिरफ्तार करके नारिकेलभाँगा पार करके गाँव के रास्ते में छोडकर चली आई तव वे लोग पैदल चलते-चलते वहुत थक गई और अधिक रात बीतने पर घर लौट सकी। उसके वाद भी उन्हे मालूम नही हो सका कि पुण्डरीक गिरफ्तार हो गया है या घायल हो गया है।

वे लोग नित्य कालेज जाती थी, परन्तु पुण्डरीकाक्ष उन्हे न दिखाई पडता। वे सोचती कि शायद वह कलकत्ते मे नहीं है अथवा बीमार पड गया है। मेना उसके विपय मे उतनी सचेत नही थी, इसलिए उसकी अनुपस्थिति का उसे अधिक ध्यान नही था। परन्तु एना

प्रतिदिन यह वात देखती थी। यह देखकर कि एना की गम्भीरता हठात् और अधिक वढ गई है, वह उस प्रसग को उठाने मे एक प्रकार का भय और सकोच अनुभव करने लगी ।

दस दिन अस्पताल मे रहने के वाद पुण्डरीक विचार क लिए अदालत मे लाया गया। यह सावित हो गया कि उसने छाता उठाकर पुलिस को मारना चाहा और पुलिस के नियमो की पावन्दी और शान्ति-रक्षा मे वाधा पहुँचाई। उसे छ महीने की कडी सज़ा दे दी गई। इससे वह दुखी हुआ अथवा सुखी, यह वात वह स्वय न सोच सका। वह सोचने लगा कि मैंने मेना के लिए यह कष्ट स्वीकार किया है और देश-सेवा के नाम पर दड पाने पर वह मेरे लिए और भी अधिक मूल्यवान् वस्तु वन गया है। मर्चेंट आफिस के क्लर्कों मे ही मैं अपना निष्फल और हेय जीवन व्यतीत कर देता। अकस्मात् मेरे प्रणय को उपलक्ष्य वनाकर भारत-माता ने मेरे दुख को वलि के रूप मे स्वीकार किया है, जिससे मैं अव अपने को धन्य मानता हूँ। वह सोचने लगा, मेरी इस अवस्था मे 'सुखम् इति दु खम् इति वा।'

तीसरा परिच्छेद

दूसरे पक्ष का परिचय

गङ्गानगर के जमींदार खानदानी बडे आदमी है। परन्तु राजा राजेन्द्रनारायण अपने पुरखो की अमीरी चाल की रक्षा करते रहने के कारण बहुत दिनो से अधिक ऋणी हो गये है। इसी लिए वे देश छोड-कर अपने कलकत्ते के घर में आ बसे है, परन्तु लोगो से कहते है कि लडकियो को पढाने-लिखाने के कारण घर छोडकर परदेश में रहना पडता है। यह मकान भी रहन रख दिया गया है। यह भी अब हाथ से निकलने ही को है। बचपन से अपव्यय करते-करते राजाबहादुर को इतना बुरा अभ्यास हो गया है कि अब सर्वस्व नष्ट हो जाने के करीब होने पर भी वे अपना हाथ नही खीच पाते। आय से अधिक व्यय करते-करते उन्हे ऐसी बुरी आदत पड गई है कि हाथ मे रुपया आते ही खर्च कर डालने के लिए उनका मन मचलने लगता है। वे सच्चरित्र और सयमी है। उनके शत्रु भी उन पर यह अपवाद नही लगा सकते कि जीवन में उनका भी कभी नैतिक पतन हुआ है। केवल तम्बाकू पीने के अतिरिक्त वे और कोई नशा नही करते। चाय भी बन्धु-बान्धवो के एकत्र होने पर जब-तब ही पी लेते है। घुडदौड आदि की बाजी लगाने का भी उन्हें शौक नही है। वे अपने पिता की एकमात्र सन्तान थे। इसी लिए बचपन से ही बढावा पाते रहने के कारण जो जी में आया वही खर्च कर डालने का उन्हें अभ्यास पड गया। पर अच्छे काम मे खर्च करने की ओर ही सदा उनकी प्रवृत्ति रही, इसलिए उनके पिता ने कभी उनका हाथ नही रोका। बाल्या-वस्था में हाथ में रुपया आते ही वे अपने साथ के गरीब विद्यार्थियो की आवश्यकताये मुक्तहस्त होकर पूरी करते थे। बाहर घूमने निकलने

पर यदि उन्हे पता चलता कि उनका कोई पडोसी अथवा उनकी प्रजा कष्ट में है तो उसकी सहायता करने की चेष्टा करते। इसी लिए वे छुटपन से ही सबके स्नेहपात्र हो गये थे और उनके मन की इस दुर्बलता का पता पाकर बहुतेरे लोगो ने बिना प्रयोजन के भी सहायता के रूप मे उनसे मनमाना रुपया वसूल किया। उसके बाद जब से वे जमीदारी के मालिक हुए तब से उनके तीन प्रधान व्यसनो ने निरकुश होकर उन्हें अपव्ययिता की चरमसीमा तक पहुँचा दिया। एक तो वे पुस्तकें खूब खरीदते, दूसरे यदि कोई फेरीवाला अथवा दूकानदार उनके मकान मे कोई चीज बेचने ले आता तो वे आवश्यकता हो चाहे न हो, प्रचुर परिमाण मे खरीद अवश्य लेते। तीसरे अपने अथवा देश के नाम पर कोई उनसे सहायता माँगता तो उसकी आवश्यकता आदि के सम्बन्ध मे सोच-विचार किये बिना ही एक मोटी रकम उसे चन्दे में सौप देते। सहायता माँगनेवाला व्यक्ति विश्वसनीय है अथवा नही, उनमे यह सोचने तक की प्रवृत्ति नही थी। जमीदार राजेन्द्रनारायण ने राजाबहादुर का जो खिताब पाया है उसके लिए भी उन्होने अपव्यय किया है। सरकार के प्रार्थना करने पर अथवा अपनी ओर से देश हित अथवा साहब बहादुरो के हित के लिए बहुत-सा रुपया दान करते-करते खुद नि स्वता की अन्तिम सीमा तक पहुँचकर उन्होने यह खिताब खरीदा है। खुले रूप से और गुप्त दान करते रहने के कारण उनकी जमीदारी की प्राय. सारी आय खर्च हो जाती है। उसके बाद सरकार को आमदनी जमा करते समय ऋण लेने के अतिरिक्त और कोई उपाय नही रह जाता। तिस पर लगान न जमा करने के लिए काग्रेस के लोग आज-कल किसानो को समझाते-बुझाते है। फलत उन लोगो ने लगान देना बन्द कर दिया है। जोर-जुल्म अथवा नालिश करने पर वे कहते है कि हमारे पास रुपया ही नही है। सारे देश मे तो दरिद्रता और अकाल फैला है, जब अपने को ही खाने को नही मिलता तब जमीदार को लगान कहाँ से दे। छोटे-मोटे जमीदारो की जमीदारियाँ

लगान न देने के कारण नीलाम होने लगी है और बड़े जमींदार क़िस्तों में लगान अदा कर रहे हैं। उनकी जायदाद रहन रक्खी जाने लगी है। गङ्गानगर की भी प्रायः सारी जमींदारी रहन रख दी गई है और अब उधार मिलना भी कठिन हो गया है। जमींदारों के सात्विक चाल-चलन की रक्षा करनी ही पड़ती है और पास में रुपया है नहीं। इसलिए उनकी अवस्था अधिक शोचनीय हो गई है। इस समय नौकरी पर जीवन बितानेवाले लोग तो एक प्रकार से अच्छे हैं। वे लोग महीने में निश्चित वेतन तो पाते ही हैं। तिस पर सब चीज़ों के सस्ते हो जाने के कारण उन्हें बड़ी सुविधा हो गई है।

अतएव पुण्डरीकाक्ष यद्यपि तीस रुपये महीने का ही क्लर्क है, तथापि उसकी अवस्था गङ्गानगर के राजाबहादुर की अपेक्षा अधिक बुरी नहीं है। और गङ्गानगर के निःस्व राजा भी वृथा अभिमान के कारण ही अपने दरिद्र पड़ोसी से बातचीत करना आवश्यक नहीं समझते। परन्तु अन्दरूनी स्थिति देखने पर इन दोनों में बहुत कम अन्तर रह जाता है।

गङ्गानगर के जमींदार के ऋणी होने की खबर सरकार को लग गई। इसलिए रेवेन्यू बोर्ड ने उनके पास प्रस्ताव भेजा कि यदि वे एक साल के भीतर ही अपना सारा कर्ज चुका देने का प्रबन्ध न कर सकेंगे तो उनकी जमींदारी कोर्ट आफ़ वार्ड्स की देख-रेख में कर ली जायगी।

राजाबहादुर यह दुःखपूर्ण संवाद पाते ही अपने सहपाठी सत्यनिधन दे एटर्नी के दफ्तर में पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने हाँफते हाँफते कहा—भाई सत्य, अब तुम हमें बचाओ। अन्त में इस बुढ़ापे में क्या नाबालिग अथवा विधवा स्त्री की तरह असहाय अवस्था में दूसरे की दया की भीख पर ही निर्भर होना पड़ेगा? तुम मुझे इस विपत्ति से बचने का कोई उपाय बताओ।

सत्यनिधन ने बोर्ड की चिट्ठी देखकर कहा—तुम ऐसे फिज़ूलखर्च हो कि यदि अभी से सावधान नहीं होओगे तो तुम्हारे भाग्य में इससे

भी अधिक दुर्गति और अपमान वदा है। तुम एक काम करो। अब कलकत्ते मे तुम्हारे रहने की आवश्यकता नही है। लडकियो का विवाह करके या तो तुम देश मे जाकर रहो अथवा किसी ऐसे गाँव मे जाकर रहो, जहाँ तुम्हे कोई न पहचानता हो और तुम भी किसी को न पहचानते होओ और न कोई तुम्हे पहचानने हो पाये। शहर में रहोगे तो ढेरो अनावश्यक चीजे खरीद-खरीद कर रुपया उडाओगे। अभी उस दिन दो सौ रुपये का इत्र ही खरीद वैठे। क्यो, उस इत्र मे नहाओगे क्या या फिनाइल के बदले दुर्गन्ध मिटाने के लिए मोरी मे वहाओगे ?

राजावहादुर ने शर्मिन्दा होकर उत्तर दिया—तो क्या करूँ भाई, तुम्ही वताओ। लोग मेरे पास यह सोचकर आते है कि उनकी चीज विक जायगी, इसी लिए लेनी पडती है। उस दिन एक गन्धी आया, वोला, आपका नाम सुनकर वढिया इत्र लाया हूँ। इसी लिए कुछ खरीद लेना पडा।

सत्यनिधन ने हँसकर कहा—वाह रे तुम्हारा कुछ! तभी तो कहता हूँ कि तुम गाँव मे जाकर वसो। वहाँ रहने पर तुम्हारा खर्च कम हो जायगा। गाँव मे खरीदने योग्य वस्तुएँ आँखो के सामने पडेगी ही नही कि जो देखोगे वही खरीद लोगे। और वहाँ पर चन्दे का खाता और भिखमगे की झोली भी तुम्हे नही चूस सकेगी। देश मे जाकर रहने पर तुम्हें अपना कलकत्ते का मकान रखने की जरूरत न रहेगी। इस मकान को वेच डालने पर भी तो तुम्हारा पचास-साठ हजार रुपये का कर्ज सहज मे ही अदा हो जायगा। साथ ही इसी बीच सरकार को इस आशय का एक जवाव लिख दो कि आगे हम वहुत मितव्ययिता से काम चलायेगे और एक साल के भीतर ही वहुत-सा कर्ज अदा करके प्रमाणित कर देगे कि हमने मितव्ययिता शुरू कर दी है।

राजावहादुर ने उत्तर दिया—भाई, मै अपनी तवीअत से कलकत्ते

मे थोडे ही पडा हूँ। लडकियो की पढाई-लिखाई समाप्त होते ही उनका विवाह कर लेने पर मै कही भी जाकर रह सकता हूँ। मेना इस बार ही बी०ए० की परीक्षा देगी, उसे समझा-बुझाकर इसी साल उसका विवाह कर देना है। लडका तो मिल ही गया है, वही कुमीरखाली का ज़मींदार कन्दर्पभूषण।

सत्यनिधन ने कहा—यह भी तो अभी बहुत दिनो की बात है। तब तक तुम एक काम करो। तुम्हे एक ऐसे अभिभावक की बडी आवश्यकता है जो तुम्हारी स्थिति सुधार कर तुम्हारा काम चला सके। मै एक ऊँचे ख़ानदान के सच्चरित्र, विद्वान् और बुद्धिमान् लडके को जानता हूँ। वह इस समय दिनो के फेर मे पडकर नौकरी ढूँढ रहा है। उसे अपना प्राइवेट सेक्रेटरी अथवा मैनेजर नियुक्त कर लो। अधिक रुपये भी नही देने पडेगे। कोई दो सौ रुपयो पर ही वह अभी राजी हो जायगा। इसके बाद कर्ज़ कुछ अदा हो जाने पर उसका वेतन थोडा-बहुत बढा देना।

राजाबहादुर सत्यनिधन का प्रस्ताव सुनते ही उसी क्षण इस बात पर राज़ी हो गये। क्योंकि रुपये खर्च करने का एक नया मार्ग पाकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। बडप्पन के एक अङ्ग की शून्यता की ओर अब तक उनकी दृष्टि नही गई थी। अपनी इस लज्जा के निवारण का उपाय उन्हें इतना शीघ्र मिल गया। अब वे एक प्राइवेट सेक्रेटरी नौकर रक्खेंगे परन्तु खर्च कम करवाने की सलाह लेने आकर महीने में दो सौ रुपये का खर्च और बढ गया, इस ओर राजाबहादुर ने आँख उठाकर देखा तक नही।

राजाबहादुर के प्राइवेट सेक्रेटरी का नाम भास्कर है। भास्कर का भी एक इतिहास है, जिसे जान रखना हमारे लिए जरूरी है। वह अपना परिचय किसी को नही देता। उसके विषय की बातें उसके अतिरिक्त—केवल उसके पिता के एटर्नी—सत्यनिधन ही जानते हैं। वह भी एक बडे ज़मींदार का लडका है। उसने अँगरेज़ी और सस्कृत

में एक साथ एम० ए० पास किया है, बी० एल० की परीक्षा में भी वह सर्वोच्च नम्बरो से उत्तीर्ण हुआ है। वह जमीदार का लड़का ठहरा, नौकरी अथवा वकालत करने की उसे आवश्यकता न थी। शिक्षा प्राप्त करने के बाद देश जाकर अपनी जमींदारी के अनेक स्थानो में उसने प्राइमरी स्कूल और नाइट-स्कूल खुलवाकर किसानो मे शिक्षा-प्रचार करने का प्रयत्न किया। किसानो में व्याख्यान देकर और छाया-चित्र (मैजिक लैण्टर्न) दिखा-दिखाकर उन्हें स्वास्थ्य-तत्त्व, अर्थनीति, कृषि-तत्त्व, वाणिज्य-तत्त्व आदि समझाने की चेष्टा की। उसने गाँव-गाँव में अखाडे खुलवाकर हर एक वालक-वालिका का शरीर-मन सुगठित करने के काम मे अपने को लगा दिया। परन्तु देश के प्रति इस सेवा के फल-स्वरूप उस पर पुलिस और सरकार की निगाह पड गई। सरकार ने उसके पिता को आज्ञा दी कि आपको अपने लडके की ये सब हरकतें वन्द करने के लिए उस पर अपना प्रभाव डालना पडेगा। भास्कर के नाम यह अभियोग था कि वह वडा स्वदेश-भक्त है, गाँव-गाँव के किसानो को स्वदेशी चीजे खरीदने के लिए अनुरोध करता है और मादक द्रव्य खरीदने से रोकता है। जमीदार के लडके का अनुरोध तो हुक्म ही है। उसके डर मे कोई विलायती वस्तु खरीद नही सकता और इस प्रकार लोगो की स्वाधीनता में वाधा पहुँचती है। जिन गाँवो में आवकारी की दूकाने है, वहाँ की आय वहुत कम होती जा रही है। जिन लोगो ने आवकारी की दूकानो के ठीके लिये है उन्हें वडा नुकसान हो रहा है, दूकानदार सरकार से इस वात की शिकायत कर रहे है। दूकानदारो के नुकसान के कारण सरकार की भी आय कम हो रही है। इन सब वातो की जड भास्कर ही है। ये सब काम परोक्ष-रूप मे कांग्रेस का ही समर्थन करते है। गाँव-गाँव में कुश्ती के लिए अखाडे खोलकर देश के वालक-वालिकाये गुण्डापन और डकैती करने के लिए तैयार किये जा रहे है। इसलिए उसे इन सब आचरणो को छोड़कर भलेमानस की तरह शान्त-शिष्ट बनकर रहना चाहिए। अन्यथा

इसका फल आपको भोगना पड़ेगा, क्योंकि आप ही जमींदार हैं। अपनी जमींदारी के किसी भी गैरसरकारी आयोजन के लिए आप ही तो जवाबदेह हैं।

सरकार से यह कड़ी आज्ञा और भय का आभास पाकर भास्कर के पिता का मन अस्थिर हो उठा। उन्होंने अपने लड़के को बुलाकर इन उपद्रवों को छोड़ देने का आदेश दिया। भास्कर ने कहा—मैं धर्म और कानून के अनुसार जब कोई अन्याय नहीं कर रहा हूँ तब यदि सरकार की लाल-पीली आँखें देखकर ही अपना काम बन्द कर दूँगा तो लोग मुझे कापुरुष और डरपोक कहेंगे। आपका लड़का होकर मैं यह कलङ्क कैसे सहन कर सकूँगा?

भास्कर के पिता पुराने जमाने के आदमी थे। वे सरकार और पुलिस को यमराज से भी अधिक डरते थे। इसी लिए उन्होंने पहले लड़के को मीठी बातों से समझाने की कोशिश की। परन्तु जब उन बातों का कोई फल नहीं निकला तब अनुनय-विनय से काम लिया। इतने पर भी भास्कर ने अपनी जिद नहीं छोड़ी। अन्त में वे अपने अवज्ञाकारी लड़के पर नाराज़ हो गये और उससे कह बैठे कि "मैं ऐसे कुलाङ्गार लड़के से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहता। अन्त में इस बुढ़ापे में लड़के के लिए मैं जेल थोड़े ही जाऊँगा, और न सारी जमींदारी जब्त करवाकर राह-घाट में भीख ही माँगता फिरूँगा। तेरे जैसे लड़के का मैं मुँह नहीं देखना चाहता। तू मेरे घर से निकल जा। तब जो तेरे जी में आये सो कर।"

भास्कर पिता के तिरस्कार के उत्तर में मंद हँसी से हँसकर वहाँ से चल दिया। दूसरे दिन ढूँढ़ने पर उसका कोई पता नहीं लग सका। वह जनाकीर्ण कलकत्ते में आ पहुँचा।

कलकत्ते में पहुँचते ही उसकी इच्छा हुई कि वह कांग्रेस के निर्दिष्ट कामों में अपने को उत्सर्ग कर दे। वह मन-ही-मन हँसता हुआ यह भी सोच रहा था कि इस काम में पड़ जाने से कुछ न होगा तो

कम-से-कम छ महीने खाने-पहनने और रहने की चिन्ता तो मिट ही जायगी। सरकार बड़े आदर के साथ लिवा जाकर आश्रय देगी, नित्य नियमित समय पर विटामिन-मिश्रित भूसी मिली हुई पुष्टिकर दाल, मोटे लाल चावल का भात और जडसहित तरकारी खाने को मिलेगी। वहाँ दोनो वक्त नियमित परिश्रम और व्यायाम करना ही होगा; साथ ही पहरे पर अर्दली रहेगा। जेलखाने का वह जीवन परम सम्मानपूर्ण, निश्चिन्त और निरापद होगा। परन्तु दूसरे ही क्षण उसे डर लगा कि यदि पुत्र के अपराध के लिए सरकार उसके पिता को किसी प्रकार का दण्ड दे अथवा उन्हे लाञ्छित करे तो जिस सङ्कोच से वह घर छोडकर चला आया है और जो बात वह नही चाहता, अन्त में वही घटित होगी। आजकल अखवारो मे प्राय पढने को मिलता है कि लडके का जुर्माना पिता से वसूल करने की आज्ञा निकाली जाती है और यदि पिता अपने लडके की यह जिम्मेदारी स्वीकार नही करता तो उसे जेल भुगतना पडता है। ईसप की कथामाला मे एक कहानी है, जिसमे किसी शेर ने अपनी युक्ति से यह साबित कर दिखाया है कि चाहे पिता कोई अपराध करे, चाहे उसका लडका, दोनो बाते एक ही मतलव रखती है। आज भी ब्रिटिश सिंह के अनुचरो के द्वारा उसी शेर की युक्ति का पालन होता हुआ दिखाई पड रहा है।

इन्ही बातो को सोचकर उसने कांग्रेस का काम करने की इच्छा त्याग दी। परन्तु खाने-पहनने के लिए तो अर्थोपार्जन का कोई रास्ता निकालना ही पडेगा। इसलिए बहुत सोच-विचार के वाद वह अपने एटर्नी सत्यनिधन मे मिलकर अनुरोध कर आया कि मुझे कोई काम दिलवा दीजिए, साथ ही यह भी कह आया कि आप पिता जी को मेरा पता-ठिकाना कदापि न लिखें। सत्यनिधन ने भास्कर की ये दोनो बाते स्वीकार कर ली। उन्होने सोचा कि भास्कर के पिता तो बूढे हो आये अव वे ज्यादा दिन तो जियेंगे नही। उनके मरने पर भास्कर ही अपनी जमीदारी का मालिक होगा। अतएव उसका अनुरोध न

मानकर उसे नाराज़ कर देने पर हानि के अतिरिक्त कोई लाभ ही न होगा। इसलिए उन्होने भास्कर के पिता को उसकी कोई खबर नही दी और सुयोग पाते ही गङ्गानगर के राजाबहादुर से नौकरी के लिए उसकी सिफारिश कर दी।

भास्कर को देखते ही राजाबहादुर ने उसके मुखमण्डल की भव्यता पर मुग्ध होकर उसे नियुक्त कर लिया। उस दिन से भास्कर एक प्रकार से राजाबहादुर के मकान में ही रहने लगा। मकान के सदर दरवाज़े मे लाल मुर्खी पडा हुआ रास्ता आकर सगमरमर की ऊँची सीढी से मिलकर जहाँ समाप्त हुआ है, उसके ही ऊपर सगमरमर के पत्थरो से छाया हुआ एक लम्बा-चौडा बडा भारी दोहरा दालान है। उस दालान के एक ओर एक दरवान कमर मे चपरास और पगडी में तमगा लगाये अपनी दाढी को दो भागो में बाँटकर ऊपर को उठाये स्टूल पर बैठा ऊँघता रहता है और बीच-बीच मे ज्यो ही राजाबहादुर की घण्टी बजती है, ऊँघते-ऊँघते चौंक पडता है, और 'हाज़िर हुज़ूर' कहकर तुरन्त उनके कमरे में जा पहुँचता है। उस दालान के दूसरे बगल में ही राजाबहादुर के प्राइवेट सेक्रेटरी भास्कर का दफ्तर है। उसके दफ्तर के सामने भी एक चपरासी चपकन पहने सदैव प्रस्तुत रहता है। उसे ऊँघने का अवसर नही मिलता। क्योकि सेक्रेटरी की घण्टी एक-एक क्षण मे बज उठती है। वह सवेरे से शाम तक इतना कठिन परिश्रम करता है, मानो किसी सौदागरी दफ्तर का बाबू हो। उसने एक महीना काम करके ही यह जान लिया कि राजाबहादुर नाम के ही इतने बडे आदमी हैं। ऐसी राजाबहादुरी किस काम की कि पास मे एक पैसे तक का भी बल नही है और सारी ज़मीदारी और मकान आज नही तो कल बिकने ही वाला है। इसी लिए वह कठिन परिश्रम करके उनके सारे कागज़-पत्र और दस्तावेज आदि बहुत सतर्कता-पूर्वक देख रहा था कि किसी प्रकार किसी मद के खर्च में कमी तो नही की जा सकती। एक दिन उसने राजाबहादुर से कहा—मै देखता हूँ कि आपके

यहाँ बडा अपव्यय होता है। यदि वह सब बन्द कर दिया जाय तो बहुत-सा कर्ज़ चुकाने का उपाय निकल सकता है।

राजाबहादुर ने कुछ हँसकर जवाब दिया—किस प्रकार, बताओ।

भास्कर ने कहा—जैसे आपके मकान में आवश्यकता से अधिक दास-दासियाँ ही है, वे निकाल दी जायँ तो बहुत-सा रुपया बच सकता है।

राजाबहादुर हो-हो करके हँस पडे और बोले—तुम अभी बच्चे हो बेटा भास्कर। कहाँ से इतनी बुद्धि पाओगे? यह तो सरकार का अथवा ढाका-यूनिवर्सिटी का खर्च कम करने की-सी कोशिश हुई कि दरबान, बेयरा, मेहतर, भिश्ती आदि जितने गरीब आदमी है उन सबकी नौकरियाँ छीनकर बचत का उपाय सोच निकाला। वे बेचारे पाते ही कितना है! जिन लोगो का वेतन दो-चार हज़ार रुपये मासिक है उनमें से एक के ही वेतन से यदि मुट्ठी भर रुपया निकाल लिया जाय तो इतने गरीबो का पेट मारने की आवश्यकता न पडे। साथ ही समुद्र से एक घडा पानी निकाल लेने पर समुद्र का कोई खास नुकसान हो जायगा, ऐसा नही जान पडता। मुझे एक मज़ेदार कहानी याद आ रही है—चार नशेबाज़ एक मुर्दा लिये जा रहे थे। उन लोगो मे से एक ने कुछ दूर जाकर कहा—भाई, यह मुर्दा तो बहुत वजनी मालूम पडता है। क्या करना चाहिए? उसी रास्ते से एक नाई चला आ रहा था। उसे देखकर दूसरा बोला—इस नाई को बुलाकर मुर्दे के बाल कटवा दो। इससे उसका बहुत-सा भार कम हो जायगा। उसकी बात सुनकर सब लोग समस्वर से कह उठे—हाँ-हाँ, यह तो पते की बात कही। तुम बडे बुद्धिमान् हो दादा। तुरन्त ही नाई को बुलाकर उसके बाल कटवा दिये गये। तब उन लोगो ने मुर्दे को कन्धे पर उठाकर कहा—लो अब तो यह बहुत हलका हो गया है! सो तुम भी मुर्दे के बाल कटवाकर उसका भार कम करने की-सी बात कह रहे हो।

यह कहकर राजाबहादुर फिर हा-हा करके हँस पडे और हुक्के की

नली में मुँह लगाकर दो-एक कश खीचकर कहने लगे—देखो बेटा, वे सब मेरे आश्रय में पडे हैं। उन्हें मैं कैसे त्याग सकता हूँ ? मै जानता हूँ कि मेरे मकान में इतने नौकर-चाकरो की जरूरत नही है, तो भी क्या तुम नही जानते कि जब ये लोग आकर कहते हैं कि हुजूर, आप हमारी परवरिश कीजिए, तब तो उन्हें रक्खे बिना मन ही नही मानता।

भास्कर ने हँसकर उत्तर दिया—पृथ्वी में असख्य आदमी हैं। उनमें से जो कोई भी आकर आपके मकान में रहना चाहे, आप उसे ही आश्रय दे दे, क्या यह भी सम्भव है ? आपके मकान में इतनी जगह ही कहाँ है और कोई आदमी चाहे जितना बडा क्यो न हो, इतना भार कैसे सहन कर सकेगा ? कही तो उसे ठहरना पडेगा, कहीं तो कहना पड़ेगा कि 'भाई, अब बस।'

राजाबहादुर फिर हँस पडे और बोले—तुम ठीक कहते हो, परन्तु यह काम मेरे द्वारा तो होगा नही। मैने कभी किसी को नही लौटाया, और न आगे ही लौटा सकूँगा।

भास्कर ने उद्विग्न होकर उत्तर दिया—आप कुछ न करें। मुझे आज्ञा भर दे दें, मै आपको सूचित किये बिना ही जहाँ तक बन सकेगा, करूँगा।

राजाबहादुर घबराकर कह उठे—न बाबा, तुम यह सब कुछ मत करो। मै यदि किसी नौकर को पुकारने पर यह सुनूँगा कि वह निकाल दिया गया है तो मुझे बडा दु ख होगा। जैसा चल रहा है, वैसा ही बना रहने देकर तुम कोई उपाय निकाल सको तो निकालो।

भास्कर को दुखी और निरुपाय हो जाना पडा। परन्तु उस दिन उसने मन ही मन सकल्प किया कि आज से मै खुद दो सौ रुपये मासिक वेतन न लूँगा। राजाबहादुर के घर में खाता-पीता और रहता ही हूँ। केवल कपडे-लत्तो के लिए पचास रुपये ले लिया करूँगा। मेरे लिए इतने ही बहुत हैं।

उस दिन से भास्कर ने अपने चपरासी को हुक्म दे दिया कि कोई

भी आदमी मुझसे मिले बिना राजाबहादुर के पास न जा सकेगा। भिक्षुक, प्रार्थी, विक्रेता, नौकरी का उम्मीदवार, जो भी आवे उसे पहले मुझसे मिलना पडेगा। उसके बाद यदि मैं आवश्यक समझूँगा तो वह राजाबहादुर के पास जाने दिया जायगा, नही तो मेरे ही पास से उस लौटना पडेगा।

भास्कर भी सम्पन्न और ख़ानदानी घराने का लडका था। उसका मन भी उदार और दयालु था। जब कोई आकर उससे प्रार्थना करता तब उसकी भी इच्छा होती कि वह उसके अभावो को अपनी सहायता से पूरा कर दे, परन्तु वह अपने को कठोर और सयत बनाये रखने की चेष्टा करने लगा, साथ ही राजाबहादुर की वदान्यता की जो ख्याति फैली थी वह एकदम नष्ट न हो जाय, इसलिए जो कोई भी प्रार्थना करता उसे वह कुछ न कुछ दे अवश्य देता। किसी को वञ्चित भी न करता। उसने नये नौकर रखना एकदम बन्द कर दिया। कोई नौकर छुट्टी माँगकर गाँव जाना चाहता तो उसे तुरन्त छुट्टी दे देता और दूसरे नौकरो से कह देता कि उसका काम तुम सबको करना पडेगा। उसकी जगह नया नौकर नही रक्खा जायगा। कोई फेरीवाला आता तो बरामदे से ही विदा करवा दिया जाता। उससे कह दिया जाता कि अभी जरूरत नही है, ज़रूरत पडने पर तुम्हे खबर दी जायगी।

इन्ही सब कारणो से घर-बाहर के सभी लोग भास्कर से नाराज हो गये। वे लोग आपस मे काना-फूसी करने लगे कि राजाबहादुर ने न जाने कहाँ के कृपण को लाकर यहाँ बैठा दिया है। इसने तो राजमहल को बनिये की दूकान बना दिया है, हर बात मे नाप-जोख से काम लेता है। राजाबहादुर ख़ुद भी यह निश्चय नही कर सकते थे कि वे भास्कर पर नाराज़ हो अथवा प्रसन्न। जब दिन पर दिन बीतने लगे और एक भी आदमी कोई प्रार्थना लेकर उनके पास न आता तब उनका मन अस्थिर हो उठता। उनमे बिना कुछ काम किये रहा भी तो नही जाता था और इतने दिनो तक चीज़े ख़रीदना अथवा दान करना उनके पास

ये ही दो काम थे। अब जब उनमें से एक भी न रह गया तब वे एकदम बेकार हो गये। परन्तु भास्कर के अत्यन्त मधुर स्वभाव के कारण और उसके उद्देश की विवेचना करके उस पर नाराज होने का उन्हें कोई कारण नहीं मिलता था। और अपने सदैव के अभ्यास को पूरा न कर पाने के कारण भी वे ऊब गये। अब वे अपने दफ्तरवाले कमरे में विवशता से बैठे रहते और कान लगाकर आहट लेते रहते कि भास्कर के कमरे में कौन आया और वह उसे भगाये दे रहा है। उसके कमरे में किसी के आने की आहट पाते ही राजाबहादुर किसी किसी दिन अपने कमरे से बाहर निकल आते और बरामदे में खड़े होकर उसकी प्रतीक्षा करने लगते। तब वे लौटाये हुए व्यक्ति को गिरफ्तार करके अपने कमरे में ले जाते और उसकी प्रार्थना सुनकर भास्कर को बुलाकर उसे पूरी कर देने का आदेश देते। और तब भास्कर को अपने मालिक का आदेश पूरा करना ही पड़ता। परन्तु उसकी मुद्रा गम्भीर हो जाती और उसको गम्भीर होते देखकर ही राजाबहादुर सकुचित हो जाते, वे मन ही मन प्रतिज्ञा करते कि आगे से कभी भास्कर की अनिच्छा से कोई काम करके उसके मन को कष्ट न पहुँचाऊँगा। वह बड़ा सीधा लड़का है, वह जो कुछ करता है, हमारे ही भले के लिए तो करता है। परन्तु अपनी इस प्रतिज्ञा का पालन वे अधिक दिन नहीं कर पाते, उनका नित्य का अभ्यास उन्हें विवश कर देता।

एक दिन राजाबहादुर को पता लगा कि भास्कर ने किसी एक आदमी को भगा दिया है। पहले तो उनकी इच्छा हुई कि वे उसी क्षण बाहर निकलकर उस आदमी को अपने कमरे में बुला लायें। परन्तु इससे भास्कर व्यर्थ असन्तुष्ट हो जायगा, इस डर से वे चिन्तित मन से बैठे रहे। जब उन्हें पता लगा कि वह प्रार्थी विदा होकर चला गया है तब वे म्लानमुख से भास्कर के कमरे में जा पहुँचे। उन्हें अपने कमरे में आते देखकर भास्कर अपनी कुर्सी छोड़कर आदरपूर्वक खड़ा

हो गया। वह तुरन्त समझ गया कि वे इस समय क्यो आये है। इसी लिए मुँह पर हँसी लाकर उनकी ओर ताकता हुआ उनके मुँह मे कोई वात अथवा अपना तिरस्कार सुनने की प्रतीक्षा करने लगा।

राजावहादुर ने म्लान हँसी हँसकर कहा—देखो वेटा भास्कर, इन लोगो को तुम एकदम राक्षस न समझो, ऐसे एक-दो निरीह व्यक्तियो को मेरे पास आ जाने दिया करो। मै तो विना काम के रो पडा हूँ भाई।

भास्कर राजावहादुर की कातर प्रार्थना सुनकर अत्यन्त व्यथित हुआ। उसने गम्भीर होकर उत्तर दिया—जो आज्ञा।

परन्तु भास्कर को गम्भीर होते देखकर ही राजावहादुर डर के मारे तत्क्षण सतर्क हो गये। उन्होने तुरन्त ही कहा—नही-नही वेटा, तुम यदि नाराज होते हो तो उन लोगो से मेरा कोई मतलव नही है। तुम जो ठीक समझो, वही करो।

राजावहादुर के इस वात से भास्कर ने और अधिक व्यथित होकर कोमल स्वर मे उत्तर दिया—आप यह कैसी वात करते है। मैं आपका नौकर हूँ, आप मुझे जो आदेश देंगे उसका पालन करने के लिए वाध्य हूँ। उसमे मेरे सतोष-असतोष की कौन-सी वात है?

राजावहादुर ने व्यस्त होकर कहा—न-न वेटा, तुम हमारे नौकर नही हो, तुम तो हमारे लडके हो। तुम्हें जो उचित जान पडे वही करो। मै यदि कभी कुछ कहूँ तो मत सुनो और उससे अपने मन मे भी कोई वात मत लाओ।

राजावहादुर भास्कर के कमरे से निकलकर अपराधी की तरह भागे जा रहे थे। इतने मे ही एक कपडेवाला और एक जौहरी आ उपस्थित हुआ। राजावहादुर उन लोगो को देखकर वही खडे हो गये और उन्होने भय-चकित दृष्टि से एक वार भास्कर की ओर फिरकर देखा।

भास्कर राजावहादुर के पीछे-पीछे दालान तक चला आया था।

वह राजाबहादुर की भाँव-भगी देखकर मुस्कराकर वहाँ मे अपने कमरे की ओर लौट गया। राजाबहादुर ने भास्कर की मुस्कराहट और उसे जाता हुआ देखकर सतोष की साँस ली। उन्होने विक्रेताओ को अपने कमरे में लिवा ले जाकर दोनो लडकियो के लिए दो दर्जन साडियाँ और बहुत-से जडाऊ गहने खरीद लिये। परन्तु अब सारे खर्चों का रुपया भास्कर के पास ही रहने लगा था, अतएव उन्होने बड़े सकोच-विकोच के बाद उन लोगो को एक स्लिप लिख दी कि उनका जो पावना है, मैनेजर साहब से जाकर ले लें।

वे लोग भास्कर के समीप आये। भास्कर तो यह व्यापार देखते ही अवाक् रह गया। एक क्षण में ही लगभग तीन हज़ार का अपव्यय हो गया था। उसने विक्रेताओ से कहा—हम सब चीजो की जाँच करके परसो आप लोगो का रुपया दे आयेगे, आप लोग अपनी दूकानो का ठिकाना लिखा जाइए।

ये व्यापारी आज के पहले भी अनेक बार राजाबहादुर को ठगकर चीजें बेच गये थे, उन चीज़ो के जाँच करने की बात कभी नही उठी। आज की इस अप्रत्याशित बात से वे लोग अवाक् रह गये, उन लोगो का मुँह सूख गया। क्योकि बाज़ार में जिस चीज की कीमत दस रुपया है, उन्होने राजाबहादुर से उसके पचास रुपये लिये थे। फिर भी उन लोगो ने विवश होकर कहा—'आपकी जैसी आज्ञा हो।'

उन लोगो के चले जाने पर भास्कर गम्भीर चिन्ता में निमग्न हो गया। थोड़ी देर चिन्ता मे व्यस्त रहने के बाद वह कमरे से बाहर निकला और टहलता हुआ फाटक के समीप जा पहुँचा। उसे देखते ही फाटक का पहरेवाला सन्तरी सन्त्रस्तभाव से सीधा तनकर खडा हो गया और बायें कन्धे पर बन्दूक रखकर सैनिको के कायदे से उसने भास्कर को सलाम किया।

भास्कर ने फाटक के पहरेवाले सतरी को हुक्म दिया कि पहरे

के लोग उसकी आज्ञा लिये बिना किसी आदमी को अन्दर न जाने दें।

उसके बाद वह अन्यमनस्क होकर चिन्ता करता हुआ बगीचे में टहलने लगा। राजाबहादुर की परिस्थिति दिन पर दिन जैसी दरिद्र होती जा रही है, उससे एक दिन उन्हे अपनी लडकियो को लेकर राह पर खडा होना पडेगा, भास्कर को एक यही दुश्चिन्ता दुखी और गम्भीर बनाये रहती थी। एक तो वह स्वभाव से ही गम्भीर प्रकृति का युवक था, तिस पर देश की वर्तमान दुरवस्था देखकर कातर रहता था। दूसरे देश के इस दारुण दुर्दिन में वह उनकी कुछ भी सहायता नही कर सकता इसके लिए वह अपने मन में निरन्तर दुःख और ग्लानि का अनुभव करता रहता था और तिस पर वह अपने पिता और गाँव को त्यागकर चला आया था, इस वेदना से भी वह सदा उन्मना बना रहता था। पहले उसकी यह इच्छा हुई कि वह राजाबहादुर का मकान छोडकर और कही चला जाय, व्यर्थ में यहाँ रहकर उनके अधिक खर्च का कारण न बने। परन्तु दूसरे ही क्षण उसने यह सोचा कि मेरे चले जाने पर इस असहाय व्यक्ति को देखनेवाला कोई न रह जायगा और जब मैंने अल्प वेतन लेकर रहने का निश्चय कर लिया है तब मेरे चले जाने से उनका नुकसान छोडकर कोई लाभ न होगा। इसके अतिरिक्त राजाबहादुर मुझे अपने नौकर की तरह तो समझते नही है। वे मेरे साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, मानो मैं उनका कोई आत्मीय होऊँ। मेरे चले जाने पर उनके मन को कष्ट होगा।

वास्तव में राजाबहादुर भास्कर को अपने पुत्र के समान ही स्नेह करते थे और उसके गुण और गम्भीरता के लिए उसका आदर भी करते थे। उसकी विद्या-बुद्धि और सच्चरित्रता का परिचय उन्हें जितना अधिक मिलता जाता था, वे उसका उतना ही अधिक स्नेह और आदर करते थे। बीच-बीच में उनके मन में यह बात भी

उठती थी कि ऐसा ही एक भले, ऊँचे और धनी परिवार का लडका मिलता तो उसके साथ एना का विवाह कर दिया जाता। भास्कर ऊँचे खानदान का लडका है, यह बात उन्होंने सत्यनिवन एटर्नी से सुन रक्खी थी। लेकिन वह गरीब है, उसके साथ तो राजाबहादुर की कन्या का विवाह हो नही सकता था। यद्यपि उनकी कन्याये अपने पिता की जायदाद पायेंगी, वे ही उसकी उत्तराधिकारिणी है, तो भी सम्पत्तिमान् घर न होने से तो राजा राजेन्द्रनारायण रायचौधरी बहादुर के समान जमीदार की कन्या का विवाह उसके साथ कैसे हो सकता था। इसके अतिरिक्त भास्कर कौन-से ऊँचे वश का है, यह बात वह बताता ही नही था, बताना भी नही चाहता। उसका वश-परिचय पूछने पर उसके मुंह में केवल मृदुल हँसी दिखाई पडने लगती है, इसके अतिरिक्त वह कुछ बोलता ही नही था। ऐसी अवस्था में एक अज्ञात कुल के लडके से कन्या का विवाह कैसे कर दिया जा सकता है? परन्तु राजाबहादुर भास्कर को इतना पसन्द करने लगे थे और उसके प्रति मन में इतनी अधिक ममता बढ गई थी कि वे प्राय उसके साथ एना के विवाह की बात सोचने लगते, और दूसरे ही क्षण यह असम्भव समझकर अपने मन से यह बात निकाल देने की चेष्टा करते। परन्तु वे अपने मन से यह बात निकाल देने की जितनी अधिक चेष्टा करते, उनके मन में वह उतनी ही अधिक दृढ होकर जमने लगी।

भास्कर युवक और सुन्दर पुरुष था। स्त्रियाँ अपने स्वामी में जो सब गुण पाना चाहती है वे भास्कर में पूरी मात्रा में विद्यमान थे। परन्तु वह अत्यन्त सावधान और अल्पभाषी था, बिना प्रयोजन के कभी मेना अथवा एना के सामने नही पडता था, बातचीत तो कभी करता ही नही था। एक मकान में रहते हुए भी वह इतना सावधान रहता था, इस बात को राजाबहादुर, मेना और एना ने लक्ष्य कर लिया था। इसके लिए वे लोग मन-ही-मन भास्कर की बडी प्रशसा करते थे।

परन्तु बीच-बीच मे राजाबहादुर बातों ही बातो मे भास्कर से कहते---तुम तो भैया , हमारे लडके की तरह हो। तुम हमारे मकान मे इतने सकोच के साथ पराये आदमी की तरह क्यो रहते हो ? इतना परवश होकर कही एक साथ रहा जाता है ? मेना और एना तो तुम्हारी छोटी बहनो की तरह हैं। तिस पर वे लोग पढ-लिख रही है। उन्हें मैने घर के एक कोने मे छिपकर बैठनेवाली परदानशीन लडकियाँ नही बना रक्खा है। तुम दोनो से जब चाहो, स्वच्छन्दतापूर्वक बोला-चाला करो। इस अनुमति के उत्तर मे भास्कर केवल थोडा-सा हँस देता। यह अधिकार पाकर वह किसी दिन भी मेना और एना से वार्तालाप करने को अग्रसर नही हुआ। मकान की उन दोनो सुन्दरी युवतियो से बातचीत करने के लिए एक दिन भी उसने अपना आग्रह नही प्रकट किया। साथ ही वह अपने व्यवहार मे इतना सरल था कि वह निर्बोध अथवा सकोची भी नही समझा जा सकता था। बल्कि वह काफी प्रतिभावान् दिखाई पडता था। भास्कर के इस आत्मसयम से मेना और एना के मन मे विस्मय और विद्रोह की भावना उत्पन्न हो गई। बाहर से स्वीकार न करने पर भी उन दोनो के अन्तर मे यह भाव छिपा हुआ था कि वे सुन्दर, सभ्य, बुद्धिमती, युवती और सम्पत्तिशाली की कन्याये होते हुए भी इस युवक को नही लुभा सकी। इसके सम्मुख उनकी आकर्षण-शक्ति को हार स्वीकार करनी पडी। इस हार की शर्म उनके मन मे गड गई थी। इसलिए उन लोगो ने मन-ही-मन सोचकर स्थिर कर लिया कि यदि यह हम लोगो की उपेक्षा कर सकता है तो हम भी इसकी अवहेलना कर सकती हैं। न जाने क्यो इतना गुमान लिये फिरता है ? मन मे सदैव इस भाव के बने रहने के कारण वे लोग मानो भास्कर को देखती ही न हो, उनके मकान मे एक देखने योग्य व्यक्ति रहता है, मानो वे लोग यह बात जानती ही न हो, इस विषय की उन्हे कोई खबर ही न हो। परन्तु वे लोग भास्कर के सम्बन्ध मे जितनी ही उदासीनता और उपेक्षा का

भाव दिखाने का बहाना करती, उनका मन उसके सम्बन्ध मे उतना ही सचेष्ट होता जाता। इस प्रकार दोनो पक्ष के लोग मन का भाव मन मे ही छिपाकर अपने चारो ओर कृत्रिम अवहेलना का पर्दा डालकर एक दूसरे से पृथक् और दूर रहने की जितनी चेष्टा करते, दोनो ही पक्षो के मन मे एक-दूसरे का परिचय प्राप्त करने का आग्रह उतना ही बढता जाता। परन्तु किसी ने भी हार मानकर अपना व्यवहार नही बदला।

आज भास्कर ने वाग में टहलते-टहलते देखा कि वाग के दूसरी ओर एक सगमरमर की वेदी पर मेना अकेली बैठी हुई विशेष मनोयोग-पूर्वक कोई पुस्तक पढ रही है। उसे देखते ही अपने नित्य के अभ्यास के अनुसार वह वहाँ से चला आया और चिन्ता-निमग्न-भाव से बगीचे के दूसरे भाग मे चला गया। भास्कर को जाता देखकर मेना ने एक बार मुँह फिराकर पीठ की ओर से उसे देख लिया और दूसरे ही क्षण एक दीर्घ नि श्वास लेकर अपनी आँखे पुस्तक की ओर फेर ली।

थोडी ही देर के बाद एक दरबान ने आकर मेना से कहा—बड़ी दीदी, मैनेजर साहब आपसे मिलना चाहते हैं।

मेना दरबान की वात सुनकर आश्चर्य में पड गई, उसका मुँह अकस्मात् लाल हो उठा। ऐसा लगा मानो वह नौकर की वात ठीक तरह समझ नही सकी, यह सवाद उसे असम्भव-सा प्रतीत हुआ। अपनी श्रवणशक्ति पर पूरा-पूरा विश्वास न कर सकने के कारण दुबारा स्पष्टरूप से सुनने के लिए उसने दरबान से पूछा—कौन मिलना चाहता है?

दरवान ने स्पष्ट करके उत्तर दिया—मैनेजर साहब।

इतने पर भी मेना कुछ समझ न सकी। उसने फिर पूछा—मैनेजर साहब, कौन-से मैनेजर साहब?

दरवान ने कहा—सेक्रेटरी साहब, भास्कर बाबू।

अब मेना के मन मे कोई सदेह न रह गया। परन्तु विस्मय, लज्जा और एक प्रकार के अस्वीकृत आनन्द से उसका मन भर गया। इस मकान मे सब कही भास्कर अबाध रूप से आता-जाता है। इच्छा करते ही किसी से कुछ कहे बिना वह उसके पास तक जा सकता था, इसमे आश्चर्य उत्पन्न होने की कोई बात न थी, तिस पर भी उसने दरबान भेजकर मेना से आज्ञा क्यो माँगी है, यह निश्चित न कर पाने के कारण मेना उद्विग्न हो गई। इतने दिनो तक अपेक्षा करते रहने के बाद यदि आज उसे मेना से भेट करने की इच्छा अथवा आवश्यकता जान पडी है तो मेना से उसके आदेश की प्रार्थना क्यो की गई है? क्या यह भी उसकी सावधानता और सच्चरित्रता का ढग है? नही तो फिर आज्ञा क्यो माँगी गई है? मेना विस्मय और कौतूहल से उद्विग्न होकर भास्कर के मिलने का कारण सोचने की चेष्टा करती हुई दरबान से बोली—अच्छा, उन्हे यही बुला लाओ।

यदि भास्कर इतनी सावधानता से दरबान के द्वारा सूचना देकर सबकी जानकारी मे उससे मिलने आता है तो वही उससे अकेले में छिपकर क्यो मिले? इससे अच्छा है कि दरबान उसे लिवा लाये और सब लोग जान ले कि उन दोनो की भेट-मुलाकात मे काम-काज की रूखी बातो के अतिरिक्त रस-बस कुछ भी नही है।

भास्कर ने वहाँ पहुँचकर मेना को आदरपूर्वक नमस्कार किया। परन्तु उसके मुँह की गम्भीरता जरा भी नष्ट नही हुई। वह मेना के समीप जाकर धीमे स्वर में बोला—मैं आपके पिता के सम्बन्ध मे आपसे कुछ बाते करना चाहता हूँ। क्या आप अपना पाँच-सात मिनट का समय दे सकेगी?

मेना ने भी गम्भीर स्वर से नमस्कार करके उत्तर दिया—कहिए, इस समय मुझे कोई काम नही है।

भास्कर ने कहा—राजाबहादुर ने बहुत-सा कर्ज चढ़ा लिया है, यह शायद आप जानती है?

मेना का मुँह अव तक गम्भीर था, तो भी उस गम्भीरता के भीतर से छद्म और गुप्त आनन्द की एक आभा उसके मुँह मे लावण्य का विस्तार कर रही थी। पिता के ऋण की वात सुनकर उसकी गम्भीरता और वढ गई और मुँह मलिन हो गया। उसने मृदु-स्वर से कहा—हाँ, सुना था, कुछ ऋण हो गया है।

भास्कर वोला—साधारण ऋण नही है। लगभग तीन लाख रुपये होगे। सारी सम्पत्ति और यह मकान तक गिरवी में रख दिया गया है। इतना अधिक ऋण हो गया है कि इस वार का गवर्नमेंट रेवेन्यु सम्भवत चर गोविन्दपुर ताल्लुका वेचकर देना पडेगा। हाथ मे नक़द रुपये विलकुल नही है, वन्धक रखकर और ऋण लेने योग्य और कोई सम्पत्ति भी वाकी नही रही है।

मेना का सुन्दर गुलावी मुँह एकदम पीला पड गया, वह सूखे और मलिन मुँह से वोली—तो मुझे क्या करना होगा ?

भास्कर ने कहा—आपको मेरी थोडी सहायता करनी होगी। राजावहादुर का यह ऋण आवश्यकता से अधिक दान और अनावश्यक खर्च के कारण हो गया है। मै कोशिश में हूँ कि उनका अधिक दान करना और अनावश्यक वस्तुएँ खरीदना कुछ कम कर सकूँ। परन्तु पहरेवालो की आँखें वचाकर भी जव-तव फेरीवाले अथवा अन्य व्यावसायिक राजावहादुर तक पहुँच ही जाते है और दूने-चौगुने मूल्य में उन्हें तमाम अनावश्यक वस्तुएँ दे जाते हैं। आज ही उन्होने आप लोगो के लिए दो दर्जन साडियाँ और अनेक जडाऊ गहने खरीद डाले। इन वस्तुओ का प्राय तीन हजार रुपयो का विल हुआ है। इस समय इतना रुपया खर्च करना उनके लिए किसी प्रकार युक्तिसगत नही है। मना करने पर वे दुखी होते है। इसी लिए मै आपकी सहायता चाहता हूँ। वे जो वस्तुएँ आप लोगो की आवश्यकता से अधिक खरीद ले, उन सवको यदि आप उन्हे सूचित किये विना चुपचाप मेरे पास लौटा दें, तो मैं उन्हें लौटाकर वहुत-सा रुपया वचा लूँ। इससे

राजाबहादुर के खर्च करने के व्यसन की भी परितृप्ति होगी और उससे उनका नुकसान भी न होगा। और आप लोगो को जब जिस चीज़ की ज़रूरत पडे, यदि आप लोग राजाबहादुर से न कहकर अनुग्रहपूर्वक मुझे आज्ञा दे दिया करे तो मैं बहुत सस्ते दामो में उन्हे खरीदकर ला दे सकता हूँ। बहुतेरे दूकानदार अपनी चीज़े लेकर राजाबहादुर को दिखाने आते है, और जो कोई भी आगया, आवश्यकता न होने पर भी उसकी वे सब चीजे अधिक से अधिक तादाद में खरीद लेते है। इस सम्बन्ध मे कुछ कहने पर वे कहते हैं—वे बेचारे मेरा नाम सुनकर ही तो मेरे पास आते है। यदि मै न खरीदूँ तो उन लोगो के सम्मुख बदनाम हो जाऊँ। वे जितना बढावा देते हैं, दूकानदारो का साहस उतना ही अधिक बढ जाता है, और एक दूकानदार से सुनकर सौ दूकानदार उन्हे ठगने को जमा हो जाते है। मेना ने गम्भीरता से भास्कर की बातें सुनी। भास्कर इतनी बात कर गया, परन्तु उसके मन मे ज़रा भी सङ्कोच नही उत्पन्न हुआ, न उसमें सयम का अभाव ही जान पडा। मन-ही-मन यह बात सोचती हुई मेना धीमे स्वर में बोली—हमे तो इन सब बातो का पता नही था। आपने हमें सावधान करके सच्चे आत्मीय का काम किया है। आज से हम लोग बहुत सावधान होकर चलेगी।

मेना की बात समाप्त होने के बाद भास्कर वहाँ एक क्षण भी नही ठहरा। उसने मेना को नमस्कार किया और पीछे की ओर मुँह करके चल दिया।

मेना स्थिर-भाव से खडी हुई भास्कर जिस राह मे जा रहा था, उस पर अपनी दृष्टि फैलाकर सोचने लगी—यह व्यक्ति इतना अधिक गम्भीर क्यो है ? इतने दिनो के बाद यह पहले-पहल मुझसे बात करने के लिए अपनी ओर से याचना करके आया, परन्तु ससार में क्या केवल काम-काज की ही बाते है, और कोई बात है ही नही ? हम लोग मानो उससे बाते करने के योग्य भी नही है। वह

हमारे मकान मे मितव्यय करने आया है, शायद इसी लिए अपनी वातो का भी वह इतना मितव्ययी है, उसकी सभी वातें कृपणता से पूर्ण हैं। आज इस ज्येष्ठ मास की सान्ध्य-कालीन वर्षा के वाद जुही, वेला और गन्धराज की सुगन्ध चहुँओर परिव्याप्त है, सूर्यमुखी के फूल अपनी सोने की पँखुडियाँ फैलाये वगीचे को आलोकित कर रहे हैं। ऐसे सुन्दर समय मे काम-काज के अतिरिक्त अन्य प्रकार की वातें भी हो सकती थीं। मन मे यह वात आते ही मेना ने अपने पिता के अपव्यय और उनके ऋण की वात सोचकर उसे भुला दिया और उसने अपनी भावना भास्कर की ओर से फिराकर दूसरी ओर प्रवाहित कर दी।

मेना स्तब्ध होकर खडी हुई अपने पिता के ऋण और भविष्यत् की दशा पर सोच-विचार कर रही थी, इतने में ही एना न जाने कहाँ से दौडकर आ पहुँची और अपनी वहन को कसकर पकडकर वोली---दीदी, दीदी, भास्कर से तुम्हारी क्या वाते हुईं ? वे सव मुझसे वतानी पडेगी। भास्कर वावू तुमसे क्या कहने आये थे ?

मेना अपनी चिन्ता भूलकर कुछ हँस पडी और एना के गाल में एक हलकी-सी चपत जडकर वोली---भास्कर वावू मुझसे यह कहने आये थे कि वे एणाक्षी एना की काली आँखो के कटाक्ष-वाण से घायल हो गये है, और उससे करुणा की भीख माँगने आये हैं।

एना हँसकर अपनी दीदी की देह से एकदम चिपटकर वोली---समझ गई, भास्कर वावू क्या कहने आये थे। लेकिन दीदी, तूमने इस प्रकार के वैनामे का कारवार कव से शुरू कर दिया ? किस पर तुम्हारे प्राणो का ऋण एकत्र हो गया है---जो वैनामा करके तुम्हें अपनी सम्पत्ति छिपानी पड रही है ? फिर हमारे उस भोले वावू की क्या दशा होगी ?

मेना स्वभाव से ही गम्भीर थी। ऋण की वात उठते ही वह वहन से अधिक राग-रङ्ग न मना सकी और पिता के ऋण की वात स्मरण करके पुन गम्भीर हो गई।

मेना के मुंह की हँसी अकस्मात् विलुप्त होते देखकर और उसे चुप होते देखकर एना ने फिर हँसी मे कहा—कोई डर नही है दीदी, मैं किसी से नही कहूँगी कि तुमने बैनामे का कारबार प्रारम्भ कर दिया है। तुम स्वच्छन्दता-पूर्वक मेरा नाम लगाकर भास्कर बाबू से प्रेम कर सकती हो।

मेना इस बार भी नही हँस सकी। उसने थोटी देर एना के मुंह की ओर गम्भीरतापूर्वक ताककर उससे कहा—एना, पिता जी बहुत ऋणी हो गये है, उनकी सारी ज़मीदारी और यह मकान तक बधक रख दिया गया है, अब चर गोविन्दपुर परगने के बिकने की ही बारी आगई है। पिता जी का मन राजाओ की तरह उदार और पृथ्वी की तरह विशाल है। अतएव उनसे जो कोई भी आकर प्रार्थना करता है उसे वे निराश नही लौटा पाते, चाहे वह भिखारी हो, चाहे चीज़-वस्तु बेचनेवाला फेरीवाला हो। आज उन्होने हम लोगो के लिए दो दर्जन साडियाँ और तमाम जड़ाऊ गहने खरीद डाले, परन्तु इन वस्तुओ का मूल्य कहाँ से चुकाया जायगा, इसका कोई निश्चय नही है।

जिसके मुँह मे सदा हँसी और आँखो मे अजस्र प्रसन्नता विराजमान रहती थी, जिसका प्रत्येक अङ्ग-विक्षेप चचलता और प्रत्येक वाक्य रसिकता मे परिपूर्ण रहता था, वह एना भी अपनी दीदी के मुँह से यह भय की बात सुनकर गम्भीर हो गई। मेना के मुँह के विषाद की छाया एना के मन और मुँह पर दिखाई पडने लगी। उसने अपनी दीदी को दोनो हाथो से कसकर चिपटाकर भयार्त स्वर से कहा—फिर अब क्या होगा दीदी?

मेना ने बहन का भय देखकर उसे प्रफुल्ल करने के लिए ज़ोर लगाकर अपने मुँह मे हँसी लाकर आश्वासनपूर्ण स्वर मे उत्तर दिया—उँह, होने को क्या रक्खा है। हम लोगो के लिए ही तो पिता जी इतनी अधिक वस्तुएँ खरीदते हैं। हमे अपनी विलासिता छोड़नी पड़ेगी। नही छोड सकोगी क्या एना?

एना बड उत्साह से कह उठी—क्यो नही छोड सकूँगी दीदी, ज़रूर छोड सकूँगी। मै तो खद्दर के ही कपड़े पहनना चाहती हूँ, पिता जी ढेरो रेशमी साडियाँ खरीद लाते है, इसी लिए पहननी पडती है। परन्तु पिता जी को तो मोटे कपडे पहनने मे बडा कष्ट होगा दीदी ? यदि उनके हाथ में रुपये न रहेगे तो वे बडे दुखी होगे।

मेना ने लम्बी साँस छोडकर उत्तर दिया—तो हम लोग पिता जी को कष्ट ही क्यो सहन करने देगी ? उन्होने हम लोगो को पढा-लिखा दिया है, शिल्प-कार्य सिखला दिया है। हम लोग लडकियाँ है, इसलिए क्या पिता जी के किसी काम नही आयँगी ? हम दोनो लडके होते तो क्या करते ? अब भी हम वही चेष्टा करेगी।

एक प्रकार के नये जीवन के आस्वाद और आनन्द से उत्साहित होकर एना कह उठी—यह तो बडी सुन्दर बात होगी दीदी।

इतने में राजाबहादुर वहाँ आ पहुँचे। उनके पीछे-पीछे दो नौकर बहुत-से कपडो और गहने रखने के चमडे के सूटकेस लादकर पहुँचे।

पिता को आते देखकर ही मेना ने गम्भीर होकर एना से कहा—देख एना, पिता जी के ऋण और कष्ट की जो बातें हमे ज्ञात हो गई हैं उन्हें उनसे कह मत बैठना। वे जान जायँगे तो मन में बडे दुखी होगे।

राजाबहादुर ने कन्याओं को देखकर हँसते हुए कहा—बेटियो, तुम दोनो यहाँ बैठी हो। देखो, तुम लोगो के लिए क्या लाया हूँ!

सङ्गमरमर की जिस वेदी पर पहले मेना बैठी थी, राजाबहादुर हर्ष-गद्गद होकर उस पर बैठ गये और नौकरों के हाथ से कपडे और गहने लेकर उन सबको खोल-खोलकर दिखलाने लगे।

उन सब चीज़ो को देखकर एना की दोनो आँखे प्रसन्नता से चमक उठी, परन्तु दूसरे ही क्षण मेना के गम्भीर मुँह की ओर ताककर वह भी म्लान हो गई।

मेना ने कहा—पिता जी हम लोगो के पास तो इतने अधिक कपड़े

है कि वे आलमारियो और ट्रङ्को तक में तो समाते नहीं, अब और अधिक कपडो का क्या होगा ? और हम लोग तुम्हारी बाबाआदम के जमाने की लडकियाँ तो है नहीं, जो ढेरो गहने लादकर अपने को गुडियो की तरह सजाकर घूमेगी।

राजाबहादुर ने कहा—यह कोई न कह सके कि राजा राजेन्द्रनारायण की कन्यायें पुराने और उतारे हुए कपडे पहनती है। यह भी तो हमे देखना होगा। तुम लोग मेरी कन्यायें होकर पुराने और उतरे कपडे पहनोगी ? ससार क्या कहेगा ? उससे मेरी मान-इज्जत नष्ट न हो जायगी ?

मेना दु ख की म्लान हँसी हँसकर बोली—आपने हम लोगो को जो कपडे खरीद दिये है, उन्हे रोज बदल-बदलकर ब्रह्मा का वर्ष भी बिताया जा सकता है मनुष्यो के ३६५ दिन का वर्ष तो अत्यन्त सक्षिप्त है।

मेना की बात सुनकर राजाबहादुर हो-हो करके हँस पडे और बोले—तुम लोग लिख-पढ गई हो। तुमसे बाते करके कौन पार पा सकता है ? खूब कहा बेटी ! खूब कहा। हा-हा-हा ! ब्रह्मा का वर्ष !

मेना ने पिता को साधारण बात पर भी बच्चो की तरह हँसते देखकर आनन्दित और व्यथित होकर कहा—हम लोगो के पास तो ढेरो गहने हैं। इतने अधिक गहने लेकर हम लोग करेगी क्या ? इन सबको नित्य बदल-बदलकर पहनने पर लोग हम पर थू-थू करके हँसेगे, अभिमानी बताकर हमारी निन्दा करेगे। सब लोग सोचेगे कि हम लोग अपने पिता के ऐश्वर्य का विज्ञापन कर रही हैं। जिस प्रकार व्यावसायिक लोगो को किराये मे बुलाकर उनके पेट मे, पीठ मे, अगल-बगल मे सब कही विज्ञापन की तख्तियाँ टाँगकर सडको पर घुमाते हैं, उस प्रकार हमे देखकर भी लोग समझेगे कि हमारे पिता ने लोगो को अपना ऐश्वर्य दिखाने के लिए हम लोगो को उसी प्रकार की सेण्डूविच गर्ल अथवा मेनिकिन बना दिया है।

राजाबहादुर ठहाका मारकर हँस पडे और हँसते-हँसते बोले—बी० ए० पास करके कानून पढ ले। तू तो बडी अच्छी वकील बन सकती है। तुझमे बातें करने की बडी सुन्दर क्षमता है। खूब कहा बेटी! परन्तु ये सब गहने केवल तेरे पिता का ऐश्वर्य दिखाने के लिए नही हैं। तुम लोगो की सुन्दरता बढाने के लिए भी थोड़े-बहुत अलङ्कारो की आवश्यकता है!

एना ने फिर हँसकर उत्तर दिया—हिश! आवश्यकता नहीं है! क्या हम लोग काली-कलूटी हैं, जो गहनो से सज-धजकर सुन्दर दिखाई पडेंगी। हम गहनो के बिना ही बहुत सुन्दर हैं—"किमिव हि मधुरता मण्डन नाकृतीनाम्"।

मेना ने बहन की वाचालता से प्रसन्न होकर कहा—छि: एना, पिता जी के सामने जो जी में आता है वही बक रही है! तू क्या हमेशा अबोध ही बनी रहेगी? अपने ही मुँह अपने रूप का इतना गर्व न करना चाहिए।

एना ने हँसते-हँसते उत्तर दिया—अपने रूप का गर्व क्यो न करे? हम लोगो को जो देखता है वही कहता है 'सुन्दरी क्यो न हो, राजपुत्री ही ठहरी! हम लोग कैसे सुन्दर व्यक्ति की कन्याये हैं?

राजाबहादुर ने हँसते हुए कहा—तुम लोगो का पिता सुन्दर है अथवा नही सो मैं नही जानता। परन्तु तुम्हारी मा अवश्य सुन्दरी थी। ऐसा अलौकिक रूप मनुष्यो मे दिखाई नहीं पडता।

राजाबहादुर जोर से हँस पडे, परन्तु परलोकगत पत्नी की स्मृति से वह हँसी करुण हो उठी। एना की वाचालता से पिता-पुत्री का जो कथोपकथन आनन्द से परिपूर्ण हो गया था वह भी इस समय विषादाच्छन्न हो गया। मेना और एना भी मा का स्मरण करके गम्भीर हो गई। और राजाबहादुर की हँसी भी अधिक देर तक नही ठहर सकी। उन्होंने हँसना बन्द करके कहा—देखो बेटी, चाहे अभी तुम्हे गहनो

की ज़रूरत न हो, परन्तु जब विवाह होगा तब तो ज़रूरत पड़ेगी ही। इसी लिए मैं थोड़ा-थोड़ा करके खरीदकर रक्खे दे रहा हूँ।

एना के मुँह से फिर बात निकल पड़ी, उसने कहा—अपने विवाह के समय हम लोग ये सब पुराने गहने पहन चुकीं। उस समय हम लोग नये गहने लेंगी।

राजाबहादुर ने हँसते-हँसते उत्तर दिया—अच्छा बेटी, अच्छा, ऐसा ही होगा, तेरे लिए नये गहने ही बनवा दूँगा।

मेना ने कहा—तो उस समय हम लोग इन सब गहनों को क्या करेंगी? अभी इन सबको वापस कर दीजिए, हमें जब जरूरत पड़ेगी तब आपसे बतायेंगी।

राजाबहादुर ने व्यस्त होकर उत्तर दिया—न न, अब कैसे वापस किया जा सकता है? जब मैं खरीद चुका तब अब वापस करने से दूकानदार समझेंगे कि राजाबहादुर दिवालिये हो गये हैं। इसके अतिरिक्त जौहरी कह रहा था कि उसने यह हार नैपाल के महाराज के लिए बनवाया था। एक ही हार बनवाने से कहीं उसमें कोई त्रुटि न रह जाय, इस विचार से उसने एक साथ दो बनवाये। उसमें से एक हार नैपाल के महाराज ने ले लिया और दूसरा वह मेरे लिए ले आया। कूचबिहार के महाराज के लिए भी उसने गत वर्ष ठीक ऐसा ही हार बनवा दिया था।

मेना ने दुखी होकर कहा—दुनिया भर के दगाबाज़ आकर इसी प्रकार की झूठी बातें बनाकर आपको ठग ले जाते हैं, आप क्या यह बात नहीं जान पाते? यों ही कह दिया, नैपाल के महाराज और कूचबिहार के महाराज के लिए बनवाया था। ज़रूर बनवाया होगा—उसकी सब बातें भी तो बनाई हुई हैं। भास्कर बाबू के द्वारा आप इन्हें लौटा दीजिए।

राजाबहादुर आश्चर्य में पड़ गये—उन्होंने सोचा, क्या यहाँ भी वह भास्कर विद्यमान है। परन्तु उन्होंने अपने मन का भय छिपाकर

कहा—भास्कर गरीब ठहरा, वह इन सब हीरा-जवाहिरो का मर्म क्या जाने ? परन्तु लडका बडा अच्छा है। वह यदि गरीब न होता तो एना से उसका विवाह कर देने से बडा सुन्दर होता ! मेना का वर तो निश्चित ही हो गया है—कुमीरखाली का जमीदार कन्दर्पकुमार। अब एना के लिए भी पात्र पा जाऊँ तो निश्चिन्त होऊँ।

एना कह उठी—हाँ, मैं इस चुप्पा भास्कर बाबू से अपना विवाह कर चुकी ! उसके साथ मेरा विवाह कर दिया जाय तो मैं तो कुछ बोले बिना साँसे ले-लेकर ही मर जाऊँगी। अच्छा पिता जी, भास्कर बाबू बोलना जानते है ?

एना का प्रश्न सुनकर राजाबहादुर हो-हो करके हँस पडे, और मेना का भी गम्भीर मुँह हँसी से खिल उठा। राजाबहादुर ने कहा—भास्कर लडका बडा गम्भीर है। दुखी, गरीब ठहरा, शायद इसी लिए ऐसा विमर्ष रहता है। उसका परिचय पूछने पर कुछ उत्तर ही नही देता, केवल हँसने लगता है। तो भी सत्यनिधन ने मुझसे कहा था कि वह बडे ऊँचे वश का लडका है। इस समय गरीब हो गया है, इसी लिए अपना परिचय देने मे लज्जित होता है। तुम लोग अब अपने कमरे मे चलो, कपडे और गहने रखवा दूँ।

मेना ने उत्तर दिया—आप जाइए पिता जी, हम लोग थोडी देर ये सब चीजे देख ले।

मेना की बात सुनकर राजाबहादुर मन-ही-मन बडे खुश हुए। वे उठकर जाते हुए सोचने लगे—स्त्रियो को भी कभी गहने-कपडो से अरुचि उत्पन्न होती है। गङ्गा जी जिस प्रकार शव की उपेक्षा नही करती, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी गहने-कपडे की उपेक्षा नही करती। अभी तो मुँह से इन्हे लेने से इनकार कर रही थी और अब बैठकर गहन-कपडे देखेगी !

राजाबहादुर के चले जाने पर मेना ने नौकर को बुलाकर कहा—रतन, भास्कर बाबू को तो बुला दे।

कुछ ही क्षणो के वाद भास्कर ने वहाँ आकर पूछा—आपने मुझे वुलाया था ?

भास्कर को देखते ही एना को स्मरण हो आया कि उसके पिता इस व्यक्ति से उसका विवाह करने के सम्वन्ध मे सोच-विचार कर रहे थे। वह तुरन्त खी-खी करके हँसने लगी। मेना ने उसे डाटकर दवे हुए स्वर से कहा—छि एना! यह क्या कर रही हैं ?

एना मुँह मे कपडा दवाकर हँसती हुई वहाँ से भाग गई और वगीचे के एक किनारे जाकर एक वेदी पर हँसती हुई लोट गई।

मेना ने भास्कर को सव गहने-कपडे देकर कहा—आप ये सव वस्तुएँ वापस कर दीजिएगा। और हम लोगो के पास जो और नये गहने-कपडे है, यदि हो सके तो उन्हे भी लौटा दीजिएगा, मैं आपको दूँगी। और उस दिन पिता जी ने दो सौ रुपये का इत्र और गुलावजल खरीद लिया था वह तो मकान मे ही सडेगा अथवा उसे नौकर-चाकर लगायँगे, गन्धी को वुलाकर यदि वह भी लौटा दे सके तो वडा सुन्दर हो।

भास्कर केवल 'अच्छा' कहकर चला गया।

आज से मेना से भास्कर की लुका-छिपी का कारवार शुरु हो गया। मेना पिता से छिपाकर भास्कर से मिलने-जुलने और चीज-वस्तु लौटाने लगी।

चौथा परिच्छेद

पुण्डरीकाक्ष का पासपोर्ट

पुण्डरीकाक्ष जेल मे पडा था और उसकी वुआ घर मे उपवास कर रही । वह हर महीने कमाता था और उसी से अपना खर्च चलाता था। उसके पास कोई पूँजी नही थी। इसी लिए पुण्डरीकाक्ष के एक महीने जेल में रहने के बाद ही उसकी वुआ को अन्न-कप्ट रहने लगा। कुछ दिन उसने वडी कठिनाई से व्यतीत किये, परन्तु उसके बाद उसे ऐसा कोई मार्ग नही दिखाई पडा जिससे उसके छ. महीने के लम्बे दिन बीत जाते। उसने राजाबहादुर को अपनी कष्ट-कथा सुनाकर उनसे कुछ याचना करने की चेष्टा की, परन्तु फाटक के पहरेदार सतरी ने उसे किसी प्रकार भीतर नही जाने दिया। उसने राजमहल के नौकरो और दासियो से अनुनय-विनय करके प्रवेशाधिकार पाना चाहा। उन सबने उसके दु ख से सहानुभूति प्रकट करते हुए विषण्ण मन से उत्तर दिया—अब वह समय नही रह गया माई, जाने कहाँ से एक कजूस छोकडा आ पहुँचा है। वह राजाबहादुर को नजरबन्द रखता है। उनके समीप किसी को जाने तक नही देता। कहता है, राजावहादुर दान करते-करते दिवालिया हो गये हैं।

पुण्डरीकाक्ष की बुआ के अभाग्य से देश में दुर्भिक्ष भी फैल गया और दाता भी दिवालिया हो गया। क्या करे और क्या न करे, यह निश्चित न कर पाने के कारण उसे आँखो के सामने अँधेरा दिखाई देने लगा। एक दिन एक दासी ने पुण्डरीकाक्ष की वुआ को युक्ति वताई कि दीदियाँ प्रतिदिन स्कूल जाती है, यदि किसी दिन उनकी मोटर रोककर उनसे कह सको और उन्हे दया आ जाय तो कोई न कोई रास्ता

निकल आये। और कोई उपाय नही है। मैनेजर वावू का हुक्म है कि कोई किसी व्यक्ति की प्रार्थना के सम्बन्ध मे राजावहादुर से अथवा उनके मकान के किसी व्यक्ति से चर्चा न करे। यदि कोई ऐसा करेगा तो नौकरी से निकाल दिया जायगा। दीदियो से तुम्हारी दशा वताकर आखिर अपनी चाकरी थोडे ही खोऊँगी माई?

पुण्डरीकाक्ष की वुआ राजकन्याओ से मिलकर उनसे कुछ सहायता पाने की नित्यप्रति चेष्टा करती। परन्तु उनकी मोटर-गाडी सरसराती हुई आकर दरवाज़े के भीतर घुस जाती और उसे उन लोगो का मन अपनी ओर आकृष्ट करने का अवसर ही न मिलता।

पन्द्रह-सोलह दिन की चेष्टा के पश्चात् एक दिन उस वुढिया के और उसके साथ पुण्डरीकाक्ष के भाग्य जाग गये। उस दिन मेना और एना कालेज से लौट रही थी। उनकी मोटर-गाडी फाटक के भीतर घुसना ही चाहती थी कि इतने में ही उसके सामने एक वड़ा भारी साँड आकर खडा हो गया। शोफर जितना हार्न वजाता, साँड अपने सीगो को सामने करके उतना ही अधिक भँकरता। यह देखकर पहरे का सन्तरी अपनी सङ्गीन उठाकर दौडा, परन्तु साँड वहाँ से तिल भर भी नही हटा। जिस समय उस साँड के हटाने का प्रयत्न हो रहा था, उसी समय पुण्डरीकाक्ष की वुआ मोटर के समीप आ पहुँची और उसका दरवाज़ा पकडकर मेना से वोली—मै एक महीने से तुम्हें अपनी विपत्ति-कथा वताने की कोशिश मे हूँ वेटी, परन्तु सन्तरी मुझे भीतर जाने नही देता और तुम्हारी मोटरगाड़ी भी कभी फाटक के वाहर एक क्षण के लिए खडी नही होती, जो तुमसे कुछ कह पाती।

इतनी देर में साँड कुछ ढेले खाकर मन्थर गति से चलता हुआ थोडा आगे वढ गया। शोफर ने मोटर का हार्न वजाकर गाडी चलाने का सकेत किया। मेन ने उससे कहा—ज़रा ठहरो, अमर। तव वह पुण्डरीक की वुआ मे वोली—कहिए, आप क्या चाहती है?

पुण्डरीक की वुआ ने कहा—मैं भिखारिनी नही हूँ वेटी। मेरा

भतीजा नौकरी करता था। एक दिन किसी कालेज के सामने पुलिस लडकियो को गिरफ्तार कर रही थी। मेरा भतीजा पुण्डरीकाक्ष सम्भवत पुलिस के इस काम में बाधा पहुँचाकर पुलिसवालो को मारने को तत्पर हो गया। अतएव उसे छ महीने की सजा हो गई है। इस समय मै बडे अर्थ-कष्ट मे पड गई हूँ। वह महीने मे जो पैदा करता था उसी से घर का खर्च चलता था। हम लोगो के पास कोई पूँजी इकट्ठी ही नही होती थी। अब मै किससे भीख माँगने जाऊँ? आप लोग हमारे मकान के सामने ही रहती है, सदा दान-धर्म करती रहती है, इसलिए मैं सोच रही थी कि यदि आपसे अपनी स्थिति बता दूँ तो मुझे और किसी के सामने हाथ फैलाने की आवश्यकता न पडेगी।

एना ने तुरन्त पुण्डरीकाक्ष के मकान की ओर एक वार ताककर बुढिया से पूछा—आप लोग क्या इसी सामने के मकान में रहती है ?

बुढिया ने उत्तर दिया—हाँ बेटी, मेरे भतीजे के पास यही एक मकान है। उसके और कोई नही है, मेरे भी कोई नही है। इसी लिए मै उसके साथ रहती हूँ और उसके लिए दो रोटियाँ बना देती हूँ।

रास्ते में खडे होकर अधिक देर तक बात करना उचित न समझ-कर मेना ने कहा—आप हमारे साथ मकान में चलिए। वही हम आपकी सारी बातें सुनेंगी।

मेना ने मोटर का दरवाजा खोल दिया। बुढिया उस प्रकाण्ड रोल्स-रायस कार में जा बैठी। जिस समय बुढिया परम सम्मान के साथ इन राजकन्याओ की कार में बैठी उनके महल को जा रही थी उस समय तीस रुपये महीने पर क्लर्की करनेवाला उसका भतीजा जेल में बन्द था। इसी को भाग्य कहते है।

बुढिया के मोटर में बैठ जाने पर वह फाटक के भीतर जा

पहुँची। बुढिया को अपने साथ लेकर ऊपर के कमरे मे चढते-चढते एना ने उससे पूछा——आपने अपने भतीजे का क्या नाम बताया? पुण्डरीकाक्ष? पुण्डरीकाक्ष का क्या मतलब है?

बुढिया बोली——पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड।

यह नाम सुनते ही एना खिलखिलाकर हँस पडी।

मेना ने उसे आँखे दिखाकर सावधान करती हुई कहा—एना, तू जा कपडे बदल ले।

एना नही गई, तो भी उसने अपनी हँसी दबाकर अपनी आँखों और मुँह को लाल कर लिया और पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड की कथा सुनने की उत्सुकता में मेना और बुढिया के समीप मौजूद रही।

बुढिया ने अपने प्रति थोडी सहानुभूति की भावना देखकर अपने ही आप पुण्डरीक का और अपना जीवन-वृत्तान्त विस्तार के साथ सुनाना प्रारम्भ कर दिया।

बुढिया बकते-बकते थककर ज्यो ही साँस लेने को क्षण भर को रुकी, त्यो ही मेना वहाँ से उठ गई और बगल के कमरे से दस रुपये का एक नोट लाकर उसके हाथ मे देती हुई बोली——ऐसा लगता है आपके भतीजे पुण्डरीक बाबू हम लोगो को बचाने जाकर ही जेल गये है। आप प्रति महीने हमारे पास आकर ये रुपये ले जाया करें।

पुण्डरीकाक्ष की बुआ नोट को हाथ में लेकर इस आशातीत लाभ की प्रसन्नता मे गद्गद स्वर से बोली——तुम लोग राजकन्या हो बेटी, तुम्हारे रोम-रोम मे दया है। मैंने साक्षात् लक्ष्मी के द्वार पर हाथ फैलाया है। मुझे और किसी के सामने हाथ फैलाने की जरूरत नही पडी। तुम लोगो को क्या कहकर आशीर्वाद दूँ बेटी। तुम लोग राजरानी तो बनोगी ही, तो भी स्वामी-पुत्र लेकर सुखी होओ, मेरी तरह के बुढापे की उम्र में सौभाग्य-सिन्दूर लगाओ, मेरी तरह की सैकडो दुखी-दरिद्रो को मुक्तहस्त होकर दान-दक्षिणा देती रहो। तुमने मुझे ये दस रुपये नही दिये है, दस लाख रुपये दिये है, मुझे प्राण-दान दिया है, मेरी

मान-रक्षा की है, नही तो मै न जाने किस राह-घाट की भिखारिन बनी फिरती बेटी।

एना को प्रत्येक बात मे अकारण ही हँसी आ रही थी। वह अपने मुंह मे कपडा दबाकर हँसी से फूलती हुई समीप के कमरे में जाकर लोट गई। जब मेना बुढिया को बिदा करके उस कमरे में पहुँची तब एना ने उससे हँसते-हँसते कहा—दीदी, इतने दिनो के बाद तुम्हारे उस भोदूराम का नाम मालूम हुआ। कैसा बढिया दाँतफोड नाम है—पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड। शायद माता-पिता को और कोई नाम ढूंढ़े नही मिला।

मेना ने भी हँसकर उत्तर दिया—खैर, इतने दिनो के बाद अब तो तेरी चिन्ता मिट गई। जप करने योग्य एक नाम मिल गया। अब तक तो यो ही मरी जा रही थी।

एना ने हँसते-हँसते कहा—हिश! मुझे उस भोदू का नाम जप करने की परवा नही है। मै तो तुम्हारे ही लिए यह नाम ढूंढ रही थी। अच्छा दीदी, तुम्हें तो अब तीन-तीन नाम जप करने को मिल गये—कन्दर्प, पुण्डरीकाक्ष और भास्कर, एकदम ट्रिनिटी। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव।

मेना हँसकर बोली—तुझे यदि ईर्ष्या होती है तो तू इनमें से दो स्वच्छन्द होकर ले सकती है। मै नि.स्वत्व होकर दान किये दे रही हूँ।

एना ने कहा—तो दीदी, यह तो बताओ कि तुमने कौन-से दो को दान में दे दिया और किसे अपने लिए रख लिया।

मेना ने हँसकर उत्तर दिया—अपनी यह 'गुप्त बात' तुम्हें कैसे बताऊँ?

एना ने हँसकर कहा—यह तो मै बता सकती हूँ। कन्दर्प तो है नही, क्योकि वह पिता जी का पसन्द किया हुआ वर है। पुण्डरीकाक्ष भोदूराम है, वे भी नही है। स्वयवर हुआ है भास्कर बाबू के साथ। क्यो, है न यही ठीक?

मेना का सुन्दर मुख लज्जा मे लाल हो उठा, परन्तु उसने प्रतिवाद में कहा—क्या व्यर्थ बकती है ! छि !

परन्तु उसका प्रतिवाद जोर न पकड सका। उसका स्वर अत्यन्त क्षीण सुनाई पडा।

पुण्डरीकाक्ष की बुआ को रुपये लेकर जाते हुए फाटक के समीप भास्कर ने देख लिया और आश्चर्यान्वित होकर पूछा—आप भीतर कैसे पहुँच गई ?

बुढिया भय और लज्जा से सकपकाकर बोली—मैं अपने आप नही आई हूँ बेटा। राजकन्याये मुझे अपनी गाडी मे बिठाकर ले आई थी। उन्होने ये दस रुपये दिये है और प्रतिमहीने आकर ये रुपये ले जाने की बात कही है।

भास्कर और कुछ कहे बिना वहाँ से चला गया। बुढिया ने भी वहाँ से भागकर अपने प्राण बचाये।

शाम को जब मेना और एना बगीचे मे टहल रही थी, तब एक दरबान ने आकर मेना से कहा—मैनेजर साहब एक बार आपसे मिलना चाहते है।

मेना का मुँह विवर्ण हो उठा, वह एना की ओर देख तक न सकी। वह दरबान से बोली—यही बुला ला।

दरबान के जाते ही एना खिलखिलाकर हँस पडी और बोली—दीदी, यह तो नित्य का अभिसार प्रारम्भ हो गया।

मेना ने मुँह मे हँसी दबाकर लाल आँखे दिखाती हुई बहन से शासन के स्वर में कहा—चुप पगली, जो मुँह मे आता है वही बकने लगती है, जानती नही, मै तुझसे बडी हूँ ?

भास्कर को दूर पर आता देखकर एना वहाँ से जाती हुई मेना से कह गई—मै भागूँ भाई, टू इज़ कम्पनी, थ्री इज़ नन, और मैं हँसी रोककर चुपचाप ठहर भी न सकूँगी।

भास्कर ने आकर नमस्कार करके कहा—आज राजाबहादुर ने

इकट्ठी छ मृगनाभियाँ खरीद ली है। खुद ही एक भूटानी को कही से मोटर में बैठाकर ले आये थे। उसके पास जितनी मृगनाभियाँ थी, उन्होने सबकी सब खरीद ली। इतनी मृगनाभियाँ तो सारे कलकत्ता शहर के मुमूर्षु प्राणियो को बचा लेने के लिए भी यथेष्ट है। अतएव इनमें से कम से कम पाँच मुझे वापस कर दीजिएगा। मैंने उस भूटानी को बुलाया है, उसे लौटा दूँगा।

मेना ने अपनी स्वाभाविक गम्भीरता से उत्तर दिया—अच्छा, मैं उन्हे चुराने का प्रयत्न करूँगी।

मेना अपनी गम्भीरता की रक्षा न कर सकी। चोरी करने की बात कहते हुए उसके मुँह में हँसी की आभा विकीर्ण हो गई।

उसकी बात सुनकर और हँसी देखकर भास्कर ने भी हँसते हुए कहा—सुना है, आज तो आप भी एक बुढिया को अपने मोटर में बैठा-कर ले आई और मकान के भीतर ले जाकर उसे दस रुपये दान में दिये। पहरेवाले ही जब चोर हो तब तो किसी प्रकार रक्षा नही हो सकती।

मेना कुछ मुस्कराकर रह गई। उसने कोई उत्तर नही दिया। और कोई बात कहने को न होन के कारण भास्कर नमस्कार करके वहाँ से चला गया।

भास्कर के जाते ही एना तुरन्त आ पहुँची और मेना से बोली—भास्कर बाबू से तुम्हारी क्या-क्या बातें हुई दीदी ? मै ऊपर की खिडकी से सब देख रही थी। खूब हँस-हँसकर कौन-सी बातें हो रही थी ? उस मूक आदमी के मुँह मे तुमने हँसी ला दी, तुम सीधी स्त्री नही हो दीदी।

मेना ने हँसकर कहा—इतनी ईर्ष्या है तो तू भी तो ठहर सकती है। भागकर आड से देखने की कौन-सी आवश्यकता है ? मेरी अपेक्षा हँसने मे तो तू ही अधिक पटु है। तेरे ठहरने पर तो दोनो की बातें हँसते ही हँसते होती।

एना कृत्रिम गम्भीरता दिखाती हुई ओठ बिचकाकर बोली—न बाबा, अन्त में तुम दोनो ही मन-ही-मन मुझे कोसोगी। जो स्थिति

देख रही हूँ उससे तो ऐसा लग रहा है कि कन्दर्प बाबू के भाग्य में तुम खटाई घोल रही हो।

मेना ने हँसकर कहा—कन्दर्प बाबू के लिए यदि तेरे में इतना दर्द है तो तू तो उसकी मन की व्यथा मिटाने को मौजूद है।

एना गम्भीरता दिखाती हुई ही बोली—नही भाई, मुझे तुम्हारे कन्दर्प की जरूरत नही है। मै तो ये सब युक्ताक्षर-सयुक्त उलटे-टेढे नाम स्मरण तक न रख सकूँगी, और न इन नामो का उच्चारण ही कर सकूँगी। पुण्डरीकाक्ष ! कन्दर्प-कान्ति ! भास्कराचार्य ! एक से एक बढिया नाम है।

मेना ने कहा—अच्छा, इनमे से जो तुझे पसन्द हो उसे छाँट ले। उसका नाम बदलकर ललित अथवा अधर-सधर कुछ भी रख दिया जायगा। नाम बदलते कितनी देर लगती है।

दोनो बहनो की यह रग-रसिकता कितनी देर तक चलती, यह बताना कठिन है। वे दोनो बहने होने पर भी सगिनी के अभाव में परस्पर सहेली बन गई थी। परन्तु इतने ही में एक नौकर ने आकर कहा—गाना सिखानेवाले उस्ताद जी आये हैं।

दोनो बहने गाना-बजाना सीखने चली गई।

उसके दूसरे दिन मेना कालेज से लौटते समय एक कपडे की दूकान से दो जोडे सादी धोतियाँ खरीद लाई।

एना ने कार मे पूछा—इन सादी धोतियो का क्या होगा दीदी ?

मेना ने कहा—पुण्डरीकाक्ष बाबू की बुआ के पास भेज दूँगी। कल जो रुपये दिय है उनसे वह धोतियाँ खरीदेगी तो खायगी क्या ?

एना हँसकर अपनी बहन की गोद में लिपट गई और बोली—तब तो उस भोले बाबू पर ही तुम्हारा अधिक आकर्षण दिखाई पड रहा है। उसका नाम क्या है दीदी, पुण्डरीकाक्ष अथवा पिण्डखजूर। काक्ष अथवा राक्षस। यरलवक्ष।

एना इसी प्रकार की ऊलजलूल बातें बकती हुई अपनी वहन की गोद मे हँसती हुई लोट-पोट हो गई।

मेना उसके मस्तक पर हाथ फेरती हुई बोली—एना, तुझमें चिर-काल तक ऐसा ही लडकपन बना रहे, तेरी अजस्र हँसी का कभी ह्रास न हो, तेरा प्रफुल्ल मन कभी म्लान न हो।

एना हँसी रोककर उठ बैठी और गम्भीर होकर बोली—तुमने इतनी गम्भीर होकर ब्राह्मसमाज के आचार्य की भाँति सर्मन देना प्रारम्भ कर दिया, पुरातन काल के ऋषि-मुनियो की तरह आशीर्वाद और वरदानो की झडी लगाने लगी। दीदी, तुम्हारे कारण तो एक क्षण के लिए जी खोलकर हँसने का भी मौका नही मिलता। बात-बात में तुम्हारे इतने गम्भीर हो जाने पर मेरे प्राण तो ऊबने लगते हैं भाई!

इसी प्रकार के आनन्द और आमोद-विनोद में दोनो बहनो के दिन बीतते। वे दोनो प्रत्येक महीने मे एक दिन पुण्डरीकाक्ष के द्वार पर मोटर रोककर उसकी बुढिया बुआ को बिठा लाती और रुपये और आश्वासन देकर उसके दुखो की कहानी सुनती तब उसे बिदा करती।

इसी प्रकार उन लोगो ने पुण्डरीकाक्ष की बुआ से बातें कर-करके उसके विषय की सारी बाते जान ली।

पुण्डरीकाक्ष के विषय की बातें जानने के लिए एना के मन में भी कम आग्रह नही था। वह एकान्त मन से बुढिया की बातें सुनती और उस समय उसे हँसी भी न आती।

एक दिन पुण्डरीकाक्ष की बुआ के चले जाने पर एना ने मेना से कहा—दीदी, रवि बाबू ने कहा है कि साधारण मनुष्यो के बीच भी भीष्म और द्रोण जैसे वीर विद्यमान है। यह बात मिथ्या नही है। ये बम्भोलानाथ देखने मे पागलो के-से है तो क्या हुआ, परन्तु इनमें भी त्याग और स्वेच्छा से कष्ट को अपनाने का वीरत्व मौजूद है!

मेना ने भी मुग्धभाव से कहा—प्रत्येक मनुष्य में महत्त्व निहित

है, उसके प्रकाशित होने का अवसर आने पर ही लोगो को उस महत्त्व का परिचय मिलता है। पुण्डरीकाक्ष बाबू केवल हम लोगो के लिए ही तो जेल भोग रहे है।

एना की चचलता फिर जाग्रत् हो उठी। उसने हँसते-हँसते कहा—तुम्हारे लिए वह अपने प्राण दे सकता है दीदी, छ महीने जेल में रहना कौन-सी बडी बात है? देखती नही थी नित्य मुँह बाये ताकता हुआ खडा रहता था। ऐसा लगता था मानो राहु चन्द्रमा के समीप पहुँचकर उसे निगल लेना चाहता है।

मेना ने हँसकर कहा—वह मुझे देखा करता था अथवा तुझे, यह तूने कैसे जाना?

एना ने कहा—उसकी आँखो की दृष्टि-रेखा देखकर जान गई थी, ठीक तुम्हारे मुँह पर आकर पडती थी।

मेना बोली—अच्छा वह लौट आये, उससे बात-चीत करके उसकी दृष्टि-रेखा को तेरी ओर ही बदलवा दूँगी। क्यो, तब तो तू सन्तुष्ट हो जायगी?

एना तुरन्त कह उठी—न न दीदी, तुम्हारे हाथ जोडती हूँ। मैं उस भोलानाथ से बात-चीत न कर सकूँगी, मेरा तो हँसते-हँसते इतना पेट फूल जायगा कि मै मर ही जाऊँगी।

दोनो बहने एक-दूसरे की ओर देखकर हँसने लगी।

चौथे महीने एक दिन उनकी मोटर पुण्डरीकाक्ष के मकान के सामने मेना के आदेश से खडी हुई और शोफर भोपू बजाने लगा।

आवाज़ सुनकर उसकी बुढिया बुआ तत्क्षण बाहर निकल आई और हँसमुख होकर मेना से बोली—बेटी, तुम लोगो की कृपा से आज मेरा पुण्डरीकाक्ष छोड दिया गया है, शायद जेलखाने मे अधिक स्थान नही है, इसी लिए पुराने कैदियो को छोडकर नये कैदियो के लिए जगह बनाई जा रही है। अब तुमसे मुझे कुछ लेने की आवश्यकता न पड़ेगी। तुम लोग राजराजेश्वरी बनो बेटी, तुम्हारा सौभाग्य-

सिन्दूर अटल रहे, स्वामी और बाल-बच्चो के साथ सुख-स्वच्छन्दता-पूर्वक गृहस्थी का आनन्द प्राप्त करो। तुम्हारी कृपा-करुणा की प्रत्येक बात मैने पुण्डरीकाक्ष से बताई है। वह सुनकर बडा खुश हुआ, बोला—उनमे दया क्यो न हो, वे देवी ही जो ठहरी! वे साक्षात् लक्ष्मी, मूर्त्तिमती श्री और शरीरिणी वाणी हैं। पुण्डरीक इस समय मकान में नही है, नही तो वह स्वय आकर तुमसे ये बातें कहता। जाने कितनी बार उसने मुझसे ये सब बाते कही है। सुनते-सुनते ये मुझे मुखाग्र हो गई है। परन्तु मैं मूर्ख उन सबका अर्थ क्या जानूँ? उच्चारण तक तो कर नही पाती।

पुण्डरीकाक्ष आकर कही देवीसूक्त का पाठ न शुरू कर दे इस डर के मारे मेना ने तुरन्त कहा—अच्छा, तो अब हम लोग चले। कोई असुविधा अथवा आवश्यकता आ पडे तो हमे बताइएगा।

एना-मेना की मोटर उनके मकान के फाटक के भीतर जा पहुँची। बुढिया के मुँह मे वे तमाम सस्कृत के शब्द सुनकर मेना को भी हँसी आ रही थी। एना तो हँसती हुई बहन की गोद में लोट-पोट होकर बोली—दीदी, दीदी, तुमने देवी-वन्दना सुनी न। स्वय लक्ष्मी, मूर्त्तिमती श्री, शरीरिणी वाणी! वाह रे भोलानाथ! तुममे कवित्त्व भी है, सस्कृत-स्तोत्र-पाठ भी कर लेते हो। तुम्हारा ऐसा गम्भीर स्वभाव है कि यह प्रशसा सुनकर तुम्हारा अहकार और अधिक बढ जायगा।

मेना हँसकर बोली—तेरी सभी बातो में प्रतिहिंसा है। यह वन्दना और स्तव क्या केवल मेरे लिए है, तेरा भी तो उसमें आधा भाग है।

एना ने ज़ोर से सिर हिलाकर कहा—बिलकुल नही, ज़रा भी नही। यदि सजीव हँसी का फव्वारा कहता तो मैं अवश्य समझती कि यह केवल मेरे लिए कहा गया है। उन विशेषणो का प्रयोग मेरे लिए तो किसी प्रकार किया ही नही जा सकता।

मेना गाडी से उतरकर मकान में घुसती हुई बोली—जब भावों

का आतिशय्य होता है तब इस प्रकार के न जाने कितने निरर्थक प्रयोग हो जाते है री पगली। और शरीरिणी वाणी से तेरे अतिरिक्त मेरा परिचय तो मिलता ही नही। तेरी नाक से, मुंह से, सब कही से वाणी फूटी पडती है।

एना ने कहा—यह कैसा प्रयोग है, जानती हो, इसे फिगरेटिव स्पीच—रूपक कहते हैं। तुम विदुषी, विद्यावती हो न, इसी लिए तुम्हें शरीरिणी वाणी कहा है उसने।

मेना ने हँसकर कहा—बातो में तो मै तुझसे जीत नही सकती। एक दिन पुण्डरीकाक्ष बाबू को बुलाकर इस बात की मीमासा करके सदेह निवृत्त कर लिया जाय।

एना बोली—नही दीदी, मैं उस भोलानाथ के सामने निकल भी न सकूँगी। बडी-बडी आँखो से एकटक ताकता रह जाता है, मानो पूरा राक्षस है! नाम भी तो राक्षसो से मिलता-जुलता हुआ ही है—पुण्डरीकाक्ष, पिण्डभोजी राक्षस!

मेना ने कृत्रिम भर्त्सना के स्वर में कहा—छि: एना, भले आदमी के नाम को इस प्रकार विद्रूप करना उचित नही है।

एना वैसे ही विस्मय के स्वर में बोल उठी—ओहो, इतना दर्द है, नाम बिगाडना तक आप से सहा नही जाता! अच्छा, तब आज से अत्यन्त आदरपूर्वक कहूँगी—परम सम्मान्य श्रीमान् पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड महोदय।

मेना ने कृत्रिम क्रोध दिखाकर कहा—चल हट, तुझसे कोई नही जीत सकता!

उसके दूसरे ही दिन कालेज जाते समय मेना और एना ने देखा कि पुण्डरीकाक्ष अपने मकान के दरवाजे पर वही धूसर वर्ण का छाता हाथ मे लिये आफिस की पोशाक पहने हुए खडा राह देख रहा है। इस बार उसकी दृष्टि पहले की तरह अर्थहीन और भाव-शून्य नही थी, आज उसमे कुछ हँसी की झलक दिखाई पड रही थी और कृतज्ञता-पूर्ण आनन्द का भाव प्रकट हो रहा था।

पुण्डरीकाक्ष जेल से छूटते ही अपने जीवन के एकमात्र अवलम्ब नौकरी की ममता से दफ्तर भागा गया था। यह जानने के लिए उसके मन में अदम्य आग्रह था कि उसकी नौकरी छूट गई अथवा अभी है। इसी लिए कल जिस समय मेना और एना का मोटर उसके मकान के सामने खड़ा हुआ था, उस समय वह मकान में नहीं था और इस प्रकार वह अपने जीवन का परम सुयोग शायद चिरकाल के लिए खो बैठा। कल यदि वह उस समय मकान मे होता तो वह अपने मुँह से मेना के प्रति धन्यवाद और कृतज्ञता का भाव व्यक्त करता और उससे वार्तालाप करके अपने जीवन को धन्य और सार्थक बना लेता। पागल पुण्डरीक पारस पत्थर ढूँढता फिरता था, परन्तु जिस समय वह पारस पत्थर उसके जीवन और मन को सुवर्णमय बना दे सकता था, उस परम मुहूर्त्त में वह अपने दफ्तर के बड़े बाबू दैत्यनाथ की गाली-गलौज सुनकर साहब के श्रीमुख से सुन रहा था कि उसकी नौकरी का अन्त हो गया है। जो लोग कांग्रेस के दल के आदमी हैं, उन विद्रोहियो के लिए इस दफ्तर में स्थान नहीं है। पुण्डरीक ने बहुत अनुनय-विनय करके अपने को निर्दोष प्रमाणित करने की चेष्टा की। उसका यह फल हुआ कि वह तुरन्त नौकरी से बरखास्त नही किया गया, बल्कि उसे एक महीने की नोटिस दे दी गई और जितने दिन वह काम करके जेल गया था, दयापूर्वक उसे उतने दिनो का वेतन भी दे दिया गया।

पुण्डरीकाक्ष सोच रहा था कि एक दिन वह राजाबहादुर से मिल-कर उनसे उनकी कन्याओ की कृपा-करुणा की बात बता आये और यदि सुयोग से स्वय मेनादेवी के दर्शन का सौभाग्य उसे मिल जाय तो उन्हें भी वह अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करके उनसे वार्तालाप करके अपने जीवन की साध पूरी कर आये। परन्तु दफ्तर मे जाकर जब उसने मालूम किया कि एक महीने के बाद उसकी नौकरी नही रह जायगी तब उसके मन से मेना से मिलने का सकल्प विलीन हो गया। उसने

सोचा कि यदि मैं ऐसे समय में राजाबहादुर अथवा मेनादेवी से मिलने जाऊँगा तो वे लोग सोचेंगे कि मै अपनी दरिद्रता व्यक्त करने के लिए याचक के रूप में उनके द्वार पर उपस्थित हुआ हूँ। शायद मेनादेवी सोचेगी कि बेचारा हम लोगो को बचाते हुए जेल चला गया और नौकरी खो बैठा, अतएव उसे प्रतिमास कुछ सहायता दे दिया करूँ। यह बात मैं किसी प्रकार स्वीकार नही कर सकूँगा। मैं अपने प्राणोपम स्नेह को अन्त मे भला कही इस प्रकार वेच सकता हूँ? कदापि नही। यह सब सोच-समझकर उसने मेना के दर्शन अथवा उससे वार्तालाप करने की आशा और चेष्टा को बिलकुल त्याग दिया और पहले जिस प्रकार दूर से मेना को एक निमेष के लिए देखकर सुखी हो लेता था, उसी प्रकार अपने अभ्यास के अनुसार यथासमय अपने मकान के सामने खडा रहने लगा। किसी दिन वह मेना को देख पाता और किसी दिन न देख पाकर अपने हृदय में एक दीर्घ निश्वास दबाये हुए निरुत्साहित गति से दफ्तर चला जाता। अब उसके जीवन मे कोई उत्साह नही रह गया था। परन्तु तिस पर भी उसके मन के निभृत कोण में एक क्षीण आशा बनी हुई थी कि यदि डर्बी की घुड-दौड के रुपये मिल जायँ तो मेरे सारे अभाव क्षण भर मे ही न जाने कहाँ विलीन हो जायँगे।

पाँचवाँ परिच्छेद

दरिद्र का मनोरथ

पुण्डरीकाक्ष की नौकरी के केवल दस दिन बाकी थे। उस दिन सवेरे से ही आषाढ की झडी लगी थी। पुण्डरीकाक्ष उस वर्षा में अपना छाता लगाये अपने निश्चित स्थान पर खडा भीग रहा था। पडोस के एक व्यक्ति ने दफ्तर जाते जाते उसे इस प्रकार खडा भीगता हुआ देखकर पूछा—क्यो पुण्डरीक बाबू, ऐसी वर्षा में क्यो खडे हो ?

पुण्डरीकाक्ष ने दाँत निकालकर अप्रतिभ हँसी से हँसते हुए कहा—यो ही एक आदमी की प्रतीक्षा में खडा हूँ।

वर्षा खूब जोरो से होने लगी। उसके सारे कपडे भीग गये, तो भी वह पहरेदार सैनिक की तरह अपने पहरे के स्थान से हट नही सकता था। थोडी देर के बाद मेना का मोटर निकलकर चारो तरफ कीचड उछालता और भो भो करता हुआ चला गया। बाद को वह भी उस मोटर के पीछे-पीछे चलने लगा।

मोटर के पीछे की ओर की काँच की छोटी खिडकी से देखकर एना मेना से बोली—आहा, दीदी, तुम्हें एक बार देखने के लिए बेचारा इतने पानी और कीचड में खडा भीग रहा था, अब मोटर के पीछे-पीछे धीरे-धीरे चला आ रहा है। उसे देखकर हँसूँ अथवा रोऊँ, कुछ ठीक नहीं कर पा रही हूँ। सचमुच उसे देखकर मुझे बडी दया आती है। दीदी, या तो उससे अपना विवाह कर लो, और नही तो एक दिन उसे बुलाकर साफ-साफ कह दो कि इस प्रकार की बक-वृत्ति त्याग दो।

मेना ने गम्भीर होकर कहा—तुझे यदि इतनी पीडा होती है तो तू ही एक दिन बुला भेज।

पुण्डरीकाक्ष पानी से सराबोर होकर दफ़्तर पहुँचा। वह अपने भीगे जूतो से पानी बहाकर और कोट के कोने निचोडकर कुर्सी पर बैठना ही चाहता था, इतने मे उसने देखा कि बडे बाबू वैद्यनाथ उसकी तरफ आ रहे है। उसने तत्क्षण घडी की ओर दृष्टि फेरकर देखा कि उसे दफ्तर पहुँचने मे पन्द्रह मिनट का विलम्ब हो गया है। वह मन ही मन कहने लगा—दैत्यनाथ आकर बक-झक करना ही चाहता है। आने दो। अब किसे उसकी परवा है? नौकरी के कुल दस ही दिन तो बाकी रह गये है। आज मै उसका मुँह बिगाडना नही सह सकूँगा। मै भी अच्छी तरह सुनाऊँगा। दस दिन के पश्चात् तो उपवास करना ही पडेगा, कुछ दिन पहले से ही शुरू कर दूँगा। और क्या होगा?

वैद्यनाथ विश्वास की एक आँख अधिक भेंगी थी। वह ताकता दूसरी तरफ था और देखता दूसरी तरफ था। उसके शरीर का रङ्ग आबनूस के कुदे को भी मात करता था। उसकी काले अलपाके की चपकन उसके शरीर के रग की समता मे हलके और फीके रङ्ग की जान पडती थी। उसके अधीनस्थ बाबू लोग कहते—दूर से यह जाना नही जा सकता कि वे महाशय आ रहे है अथवा जा रहे है, और कोई कपडा पहने है अथवा नङ्गे बदन आ रहे है, यह जानना तो एकदम सामर्थ्य से परे है। एकदम काला-कलूटा रूप देखकर ऐसा जान पडता था मानो उसके शरीर में अलकतरा पोत दिया गया हो। इतना सब होते हुए भी उसका शरीर अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण था, ऐसा लगता था कि किसी ने उसका सारा रस निचोड लिया है, केवल ढाँचा बच रहा है। वह कभी किसी बाबू से हँसकर बात नही करता था, मुँह बनाये बिना वह किसी से एक शब्द तक नही कह सकता था। कडवी बातो को कर्कश बनाकर कहने की उसमे ईश्वरदत्त असाधारण

क्षमता थी। सब लोग शनि-दृष्टि की अपेक्षा भी उसकी दृष्टि से अधिक डरते थे।

ऐसी ओछी प्रकृति के बड़े बाबू को अपनी ही ओर आते देखकर पुण्डरीकाक्ष की बुद्धि जाती रही। जिस समय वैद्यनाथ कुछ दूर था, उस समय यद्यपि उसने अपने मन मे यह साहस कर लिया था कि वह आज वैद्यनाथ की उपेक्षा कर जायगा। मरा हुआ व्यक्ति किसी से क्यो डरे ? परन्तु अभ्यास ऐसी बुरी वस्तु है कि साधारणरूप से उससे पिण्ड नही छूट सकता। पुण्डरीकाक्ष अपने अब तक के अभ्यास के अनुसार ही वैद्यनाथ के भय से सत्रस्त होकर तुरन्त लेजर का कोई पन्ना उलटकर किसी विषय पर अपनी दृष्टि गडाकर इस प्रकार झुक गया, मानो वह हिसाब जाँचने में इतना ~ त है कि वैद्यनाथ के शुभागमन तक का उसे पता नही लग सका। परन्तु वह मन ही मन सोच रहा था—'अद्य प्रातरेव अनिष्टदर्शन जातम्, न जाने किमनभिमत दर्शयिष्यति।' भाग्य की रेखा भला कौन मेट सकता है, मेरे अदृष्ट में विधाता ने यह कष्ट भी लिखा था कि मरणकाल में भी उस व्यक्ति की बातें सुनकर मुझे जाना पडेगा। मधुसूदन, मधुसूदन ! 'दैत्यनाथ को दूसरी ओर खीच ले जाओ भगवन् !

वैद्यनाथ धीरे-धीरे पुण्डरीकाक्ष के पीछे आकर खडा हो गया और बोला—कहो पुण्डरीक बाबू, नमस्कार।

पुण्डरीक चौक पडा। आज उसे वैद्यनाथ की बातें दैत्यनाथ की बातों की तरह कर्कश नही सुनाई पडी। पुण्डरीकाक्ष चकित होकर दोनों आँखें फैलाकर पीछे फिरकर वैद्यनाथ की ओर ताककर अवाक् रह गया। वैद्यनाथ खडा हँस रहा था। यह कैसा अद्भुत व्यापार है ! ऐसा तो न कभी भूतो न भविष्यति। बडे बाबू साधारण क्लर्क से, हँसकर बातें कर रहे है, वह भी ऐसे मृदुल स्वर मे !

पुण्डरीकाक्ष विस्मय और भय से अभिभूत होकर तुरन्त कुर्सी छोड़कर आदरपूर्वक खडा होगया।

वैद्यनाथ ने कहा—बैठिए, बैठिए पुण्डरीक बाबू, मैं आपके पास ही बैठता हूँ।

आज तो आप बडी जल्दी दफ्तर आ गये। पुण्डरीकाक्ष ने तिरछी निगाह करके तुरन्त ही घडी की ओर देखा, उस समय सवा दस बज चुके थे। आज के पहले यदि कोई इतने विलम्ब से दफ्तर पहुँचता तो उसकी नौकरी के लेने के देने पड जाते! और आज तो ये महाशय कह रहे है कि आप बडी जल्दी दफ्तर आ गये! पुण्डरीक का मुँह सूखकर एकदम पीला पड गया। उसे ऐसा जान पडा कि वैद्यनाथ उसके विलम्ब से आने के कारण व्यङ्गच करके उसका तिरस्कार कर रहा है। वह कुछ स्थिर न कर पाने के कारण किंकर्तव्य-विमूढ की तरह वैद्यनाथ के मुंह की ओर भयार्त दृष्टि से देखकर सिमटा हुआ खडा रहा।

वैद्यनाथ ने पुण्डरीकाक्ष के बैठने की कुर्सी के समीप और एक कुर्सी खीचकर उस पर बैठते हुए कहा—बैठिए, आप भी बैठिए, पुण्डरीक बाबू, आप खडे क्यो है ?

पुण्डरीकाक्ष वैसा ही सिमटा हुआ खडा रहा। वह समझ नही पा रहा था कि मामला क्या है ? दैत्यनाथ कभी अपने सामने किसी साधारण क्लर्क से मृदुल स्वर से बैठने का अनुरोध कर सकता है, इस बात की वह कल्पना तक नही कर पा रहा था। इस दफ़्तर में आने के दिन से आज तक पुण्डरीकाक्ष ने उसके सामने कभी किसी बाबू को बैठा हुआ नही देखा था। सब कोई एक किनारे खडे होकर उसकी आज्ञाये और बाते सुनते थे। वैद्यनाथ को कभी किसी बाबू की मेज़ पर आकर बैठते हुए भी उसने नही देखा था। वह किसी भले आदमी से बैठने को नही कहता था और न किसी भले आदमी के अपने समीप आने पर वह उठकर खडा ही होता था।

वैद्यनाथ ने कहा—'पुण्डरीक बाबू, देख रहा हूँ, आपके कपडे एकदम भीग गये है। वर्षा के ज़रा कुछ रुक जाने पर आप आ सकते थे।

पुण्डरीकाक्ष को अब अपनी इन्द्रियो पर भी विश्वास नही हो रहा था। वे सब अपना काम ठीक-ठीक कर रही है अथवा नही, इस विषय में उसे सन्देह होने लगा। उसे ऐसा जान पडा कि वह सपना देख रहा है, उसका मस्तिष्क विकृत हो रहा है। दिमाग खराब होने में आश्चर्य की बात भी नही थी। रोटियो की चिन्ता बडी बुरी होती है। नौकरी छूटने की फिक्र में पिछले एक महीने से ही उसका दिमाग़ ठीक नही था। यदि ऐसी बात नही है तो उसे जान पडा, मानो यह सुनाई पड रहा है कि वैद्यनाथ कह रहा है---जब ज़रा ज़रा वर्षा होते देखा था तभी आप आ सकते थे। अन्त में क्या नौकरी की चिन्ता से उसे उन्माद हो गया ?

पुण्डरीकाक्ष को निर्वाक् खडा देखकर वैद्यनाथ ने पूछा---पुण्डरीक बाबू, आपकी डर्बी का क्या हाल है ?

पुण्डरीक अब प्रकृतिस्थ हुआ। उसने सोचा, नही इसका मतलब यह है कि वैद्यनाथ मुझसे मीठी बातें कदापि नही कर रहा है, बल्कि व्यङ्ग्य करने के ही लिए आया है।

पुण्डरीकाक्ष को इस समय भी चुपचाप खडा देखकर वैद्यनाथ ने दुबारा पूछा---आपको डर्बी का कोई सवाद मिला ?

पुण्डरीकाक्ष ने इस बार लज्जित होकर और सकुचाकर अपना माथा नीचा कर लिया और कुण्ठित स्वर से बोला---ये सब पागलपन की बातें छेडकर आप मुझे व्यर्थ क्यो लज्जित करते है ? वह मेरी निरी मूर्खता है यह क्या मै नही जानता ? तिस पर भी दरिद्रता के कष्ट को भुला देने के लिए यह मेरा एक आशा का नशा है। दुख भुलाने के लिए लोग शराब पीते है, गाँजा पीते है और न जाने कितने दुष्कर्म करते है। मै अपने इस डर्बी के नशे से ही दुख-दरिद्रता की विभीषिका को भूले रहने की चेष्टा करता हूँ।

पुण्डरीकाक्ष की बात सुनकर वैद्यनाथ के मन में भी कुछ करुणा उत्पन्न हुई। उसने अपना कण्ठस्वर यथासम्भव कोमल करने की

चेष्टा करते हुए कहा—अच्छा, यही बताइए कि यदि आपको ऐसा एक टिकट मिल जाय जिससे आपको एक लाख रुपये मिलना निश्चित हो जाय तो आप उनका क्या करेंगे? यह बात जानने की मेरी बडी इच्छा है, इसी लिए पूछ रहा हूँ।

जो वैद्यनाथ किसी बाबू को बाते करते अथवा बाहर जाते देख लेता तो बडे ज़ोरो से बिगडता हुआ पहुँचता था, वही आज अपने मन से आकर गप लडा रहा है और दफ्तर के काम का कितना नुकसान हो रहा है इसकी उसे रत्ती भर भी परवा नही है, यह देखकर पुण्डरीकाक्ष को बडा आश्चर्य हो रहा था। वैद्यनाथ के अनुरोध से अत्यन्त लज्जित और अप्रतिभ होकर उसने कहा—देखिए बडे बाबू, जो पक्के नशेबाज़ होते है उनके सामने भी उनके नशे की बात उठाने पर उन्हे लज्जा आती है। आप दयापूर्वक मुझे अधिक शर्मिन्दा न कीजिए।

वैद्यनाथ ने कहा—नही, मै आपसे तमाशा अथवा हँसी नही कर रहा हूँ। आज हम सब लोगो के टिकट के नम्बर साहब के पास आये है। यह सुनते ही मै साहब के पास सबके टिकटो के नम्बर देखने की इच्छा से पहुँचा था। आपके टिकट का क्या नम्बर है, जानते है? कितना सुन्दर राउण्ड नम्बर है—दस हज़ार! दस हज़ार! यह एक बढिया 'लकी' नम्बर है! क्यो, आप क्या यह समझ नही पा रहे है? मेरा मन तो पुकार-पुकार कर कह रहा है कि आप इस बार एक प्राइज़ फर्स्ट अथवा सेकेण्ड, अवश्य पायेगे। इतनी ही बात नही है कि यह नम्बर लकी है। मै यह बात बिलकुल नही जानता था कि आज हम लोगो के नम्बर आयेगे। तिस पर भी कल रात को मैने सपने मे क्या देखा, आप जानते है? मैने देखा कि आपके नाम के टिकटवाले घोडे ने ही बाज़ी जीती है और आप कई लाख रुपये पा गये है। आपने अपने मकान के स्थान पर सङ्गमरमर का महल बनवा लिया है और उसमे हम सबको बड़े समारोह के साथ भोज दे

रहे है। दफ्तर मे आते ही मैंने सुना कि टिकटो के नम्बर आ गये है। इन सब योगो को क्या आप निरर्थक समझते है? मै तो इनमें एक गम्भीर अर्थपूर्ण इङ्गित देख रहा हूँ। आपके भाग्यविधाता आपको भविष्य का स्पष्ट आभास करा रहे है। आपके टिकट का नम्बर दस हज़ार है—समूचे मुक्ता के समान एक राउण्ड फीगर। न एक नम्बर कम है, न अधिक—पूरे दस हजार। यह नम्बर देखते ही मुझे अपने सपने की बात याद आ गई और ऐसा जान पडा कि इस बार भाग्य खुल गये। सपना, टिकट, दस हज़ार नम्बर, इन तीनो मे क्या आपको कार्य-कारण का एक सम्बन्ध और एक शुभ इङ्गित नही जान पडता? इस बार आपके भाग्य और दैव आप पर अत्यन्त प्रसन्न हो गये है। इसी लिए मै पूछ रहा हूँ कि यदि आप सचमुच कई लाख रुपये पा जायँ तो उन रुपयो का आप क्या करेंगे?

वैद्यनाथ की बात सुनकर पुण्डरीकाक्ष अत्यन्त प्रसन्न हो उठा था। फिर भी उसने अप्रतिभ भाव और कुण्ठित स्वर से कहा—मैं अपनी उन सब पागलपन की बातो और हवा मे पुल बाँधने की कल्पना को स्पष्ट रूप से समझ कर स्वय लज्जित हूँ। आप मुझे और अधिक लज्जित क्यो करते है? मुझे क्षमा कीजिए, मै इस सम्बन्ध मे कभी कोई बात नही सोचता। क्योकि न नौ मन तेल इकट्ठा होगा, न राधा नाचेंगी। न मै रुपये पाऊँगा, न उनके उपयोग की बात ही सोचता हूँ।

वैद्यनाथ पुण्डरीक के पीछे पड गया, उसने दुबारा उससे कहा—आप मुझे पराया क्यो समझते है? मैं सदैव आपका मित्र रहा हूँ। किस बात से आपका हित होगा, किस बात से आपकी उन्नति होगी, किस बात से आप पर साहब प्रसन्न होगे, मैं बराबर यही चेष्टा करता रहा हूँ। तिस पर भी मेरा स्वभाव ऐसा नही है कि मेरे द्वारा किसी का भला होता हो तो मैं यह बात उसे अपनी बातो अथवा व्यवहार से व्यक्त करता फिरूँ। मै किसी का कोई हित करता हूँ तो उस सम्बन्ध मे उसे कुछ बताते हुए मुझे खुद ही शर्म लगती है। आपकी नौकरी

तो जा ही चुकी थी। साहब का कहना है कि जो व्यक्ति ला और आर्डर को डिफाई करके जेल गया हो उसे तुरन्त डिसमिस कर दो। मैंने उससे बहुत कहा-सुना तब वह आपको एक महीने की नोटिस पर रखने को राजी हुआ। उसके बाद जब आज आपके टिकट के नम्बर की बात उठी तब सुयोग पाकर उसी प्रसङ्ग मे मैंने साहब से कहा कि आपके समान आनेस्ट और एफिशिएण्ट क्लर्क दफ्तर मे बहुत कम है। तब साहब ने आपका काम देखना चाहा। मैंने आपके हाथ का सब काम ले जाकर उसे दिखाया और उसकी खूबी समझाई, इससे साहब ने आप पर सन्तुष्ट होकर मुझसे कहा है कि मै आपके प्रोमोशन और वेतन-वृद्धि की ओर दृष्टि रक्खूँ। आप केवल एक अण्डर्टेकिग दे दे कि भविष्य मे कभी आप विद्रोहियो के दल मे योग न देगे। इसके बाद पहला अवसर आते ही मै आपके प्रोमोशन और वेतन-वृद्धि की व्यवस्था कर दूँगा। यह आप निश्चित समझिए।

पुण्डरीकाक्ष अवाक् रह गया। यह हो क्या गया? दस दिन के बाद तो नौकरी छूटने की बात थी और आज अकस्मात् उसके प्रोमोशन और वेतन-वृद्धि की बात सुनाई पड रही है और उसे आशा दी जा रही है। और यह बात सुनाकर आशा बँधा रहा है स्वय वैद्यनाथ विश्वास, जिसका नाम दफ्तर के सब लोगो ने दैत्यनाथ अविश्वास रख दिया है। उसी दैत्यनाथ ने आकर अपनी ओर से यह आशा दिलाई है। और साहब की भी यही सम्मति है। पुण्डरीकाक्ष यह स्थिर नही कर पा रहा था कि किस पुण्यफल से उसका यह भाग्योदय हुआ है। वह मन-ही-मन सोचने लगा—यह भी शायद मेनादेवी की कृपा और करुणा का ही फल है।

पुण्डरीकाक्ष को निरुत्तर देखकर वैद्यनाथ ने उससे फिर कहना प्रारम्भ किया—देखिए, हमारे राजेन्द्र बाबू इसी जुलाई के महीने में रिटायर हो रहे है। यदि उनका स्थान आप पसन्द करे तो आज ही उस स्थान के लिए मै आपको नियुक्तिपत्र दे दूँ। इस प्रकार

आपका वेतन प्राय दूना हो जायगा। इतने पर यदि आप डर्बी की लाटरी जीतकर बहुत-सा रुपया पा जायँ तो उन रुपयो का क्या करेंगे, यही मै जानना चाहता हूँ। क्यो? आप मुझे बता दीजिएगा न?

पुण्डरीकाक्ष अकस्मात् आशातीत लाभ की सम्भावना से आनन्द के मारे फूला न समाया। कहाँ तो उसकी नौकरी जाने की बात थी और कहाँ वह अपने से दूने वेतन की नौकरी पा रहा है। यदि यह बात सच्ची हो तो फिर डर्बी के टिकट के रुपये मिले चाहे न मिलें। परन्तु वैद्यनाथ ऐसे मृदुल स्वर से उसके पा जाने की आशा के सम्बन्ध में बातें कर रहा था कि पुण्डरीकाक्ष को इस बात के सत्य होने में किसी प्रकार के सन्देह की गुजाइश ही नही दिखाई पड रही थी। इसी लिए उसने बार-बार वैद्यनाथ का अनुरोध सुनकर थोडी देर चुप रहने के बाद सङ्कोच के साथ कहना प्रारम्भ किया—देखिए बडे बाबू, आपकी आज्ञा है, अतएव मै उसे अस्वीकार नही कर सकता। परन्तु मेरे पागलपन की बातें सुनकर दयापूर्वक हँसिएगा नही। मेरे इस पागलपन में एक विषम दु ख छिपा हुआ है।

वैद्यनाथ ने व्यस्त होकर कहा—नही, नही, आप मुझे अपना अभिन्न मित्र ही समझे। आपके सुख-दु ख की बातो की मै हँसी थोडे ही उडा सकता हूँ? आप स्वच्छन्द होकर मुझसे अपने मन की बात खोलकर कह दे। मै आपके लाभ के लिए ही आपके मन की कल्पनाओ को जानना चाहता हूँ।

वैद्यनाथ की बाते सुनकर पुण्डरीकाक्ष का आश्चर्य उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। उसने मस्तक नीचा करके थोडी लज्जा और सङ्कोच के साथ 'अपनी दरिद्रता की दुराशाओ को कहना प्रारम्भ किया.—मै यदि आपके अनुग्रह से अच्छी नौकरी पा जाऊँ तो सबसे पहले अपने इन फटे कपडो, जूतो और छाते को बदल दूँ और हो सके तो एक बरसाती वाटरप्रूफ कोट खरीद लूँ।

बेचारा आज अभी-अभी भीगता हुआ दफ्तर पहुँचा था,

इसी लिए उसका मन एक नया छाता और वरसाती खरीदने को चल पडा।

वैद्यनाथ ने उसे उत्साहित करके कहा—यह तो आपकी अत्यन्त सङ्गत अभिलाषा है, इसे तो आप सरलतापूर्वक ही पूरी कर सकेंगे। परन्तु यदि हठात् नौकरी की अपेक्षा भी वहुत वडा लाभ हो जाय तो आप क्या कीजिएगा, यही सुनने के लिए मै इतना आग्रह कर रहा हूँ।

अपनी आकाक्षाओ को वताना प्रारम्भ करने के लिए पुण्डरीकाक्ष के मन में कुछ साहस उत्पन्न हो आया था। वह कहने लगा.—यदि मै लाख-दो लाख रुपये पा जाऊँ तो अपने पिता के वनवाये मकान को रेहन से छुडा लूँ और उसकी मरम्मत करवाऊँ। एक चहारदीवारी से उसे घिरवा लूँ। और ...... और..... एक मोटरकार खरीदूँ...... ।

प्रतिदिन मेना के मोटर को अपने सामने से जाते हुए देखकर पुण्डरीकाक्ष के मन में आता था कि मेरे पास एक मोटर होता तो मैं भी मेना के मोटर के पीछे-पीछे अथवा बगल मे उसके साथ-साथ ही चल सकता। मेना का अनुसरण करने के लोभ के कारण ही मोटर खरीदने की इच्छा प्रबल होकर उसके मन मे छिपी थी। इस समय पहले-पहल उस इच्छा के मुँह से निकल पडने के कारण वह लज्जित होकर वाक्य समाप्त करने के पहले ही चुप हो गया।

पुण्डरीकाक्ष को चुप होते देखकर वैद्यनाथ ने कहा—वस इतना ही! यह तो अत्यन्त साधारण इच्छा है। इसे तो आप चाहे तो कल ही पूरी कर सकते हैं। आपकी इच्छा भर होनी चाहिए।

पुण्डरीकाक्ष अवाक् रह गया! वैद्यनाथ यह कह क्या रहा है? इच्छा होते ही मेरे इस पागलपन की दुराशा का स्वप्न पूरा हो सकता है!

पुण्डरीकाक्ष को अवाक् होकर अपनी ओर ताकते हुए देखकर

वैद्यनाथ ने कहा—आपको मेरी बात पर विश्वास नही हो रहा है ! आप समझते है कि मैं आपकी हँसी कर रहा हूँ। लेकिन यह बात नही है। वास्तव में आपके नाम डर्बी का जो टिकट निकला है उसे यदि आप अभी बेंच डालें तो आपको इसी क्षण चार लाख रुपये मिल सकते है। सोच लीजिए, यदि आप टिकट बेंच डालने को प्रस्तुत हो तो मैं अभी आपको चार लाख रुपये का चेक लाकर दे सकता हूँ ...।

वैद्यनाथ ने कुछ देर रुककर फिर कहना प्रारम्भ किया—वह चेक ऐसे-तैसे आदमी का दस्तखत किया हुआ न होगा, खुद मेसर्स वेग वरो एण्ड स्टील कपनी के वडे साहब का दस्तखती चेक ... .।

पुण्डरीकाक्ष एकदम निर्वाक् होकर विस्फारित नेत्रो से वैद्यनाथ के मुँह की ओर ताक कर रह गया, मानो उसकी चेतना नष्ट होती जा रही थी।

पुण्डरीकाक्ष अभी तक खडा ही था। बडे बाबू के सामने वह कुर्सी पर कैसे बैठ सकता था ? वैद्यनाथ की बातें सुनते-सुनते उसे ऐसा लगने लगा मानो उसके शरीर के निम्न भाग से उसके दोनो पैर लुप्त कर दिये गये हो, उसके पैरो के नीचे से किसी ने पृथ्वी को एकदम हटा दिया हो। वह धीरे-धीरे झुककर ज़मीन पर गिर पडा और मूच्छित हो गया।

उसे गिरते देखकर वैद्यनाथ तुरन्त उठ खडा हुआ और नज़दीक के दूसरे बाबुओ को बुलाकर उसे पकडवाकर एक टेबुल पर लिटा दिया और चपरासियो से तुरन्त पानी और बर्फ मँगवाया। पानी, पङ्खा और बर्फ आ गया। कुछ देर शुश्रूषा करने पर पुण्डरीकाक्ष सचेत हो उठा और आँखें खोलकर ताकने लगा। परन्तु उसकी चेष्टा-विहीन आँखें उस समय बडी भयावह और रक्तिम दिखाई पडने लगी।

वैद्यनाथ पुण्डरीकाक्ष से बोला—और थोडा-सा विश्राम कर लीजिए, इस समय उठने की चेष्टा न कीजिएगा। मैं आपके समीप ही बैठा हूँ।

दफ्तर के सभी बाबुओं को बड़ा कौतूहल हो रहा था कि वैद्यनाथ पुण्डरीकाक्ष से फुस-फुस करता हुआ कौन-सी बातें कर रहा है और वह मूर्च्छित क्यों हो गया ? वे सब लोग अनुमान कर रहे थे कि वैद्यनाथ ने अवश्य पुण्डरीकाक्ष से कुछ कहकर उसके हृदय में आघात पहुँचाया है। नहीं तो उसे मूर्च्छा कैसे आजाती ? शायद उसे आज ही नौकरी से बर्खास्त कर दिया है ! दस दिन के बाद तो उसकी नौकरी खत्म होने को थी ही। परन्तु शायद आज ही सरकार से कड़ी आज्ञा मिली है कि सिविल डिसओबीडिएन्स के अपराध में सज़ा पाये हुए व्यक्ति नौकरी पर एक क्षण भी न रक्खे जायँ। कोई सन्देह कर रहा था कि पुण्डरीकाक्ष शायद दुबारा जेल भेजा जायगा अथवा आर्डिनेन्स के अनुसार उसकी गिरफ्तारी का वारण्ट आया है। ऐसा ही कोई संवाद पाकर बेचारे का मस्तिष्क चकरा गया होगा। नौकरी खोकर बेकार बैठे रहने की अपेक्षा आर्डिनेन्स का कैदी होना हज़ारगुना अच्छा है। एलाउन्स कम हो जाने पर भी अभी एक रुपया रोज़ मिलता है, उसमें जेलखाने के लोगों के कुछ ले-लिवा लेने पर भी आठ-दस आने रोज़ मिल ही जाते हैं। हम लोगों के खून-पसीना एक करके क्लर्की-द्वारा उपार्जित आय से यह कौन बुरा है ? बाबुओं का कौतूहल बहुत बढ़ गया था, परन्तु दैत्यनाथ के वहाँ उपस्थित होने के कारण उन लोगों को अपने मन की उत्सुकता मन में ही छिपाकर रह जाना पड़ा।

थोड़ी देर के बाद ही पुण्डरीकाक्ष टेबुल पर उठकर बैठ गया।

वैद्यनाथ ने पूछा—अब कैसा लग रहा है ?

पुण्डरीकाक्ष बोला—अब अच्छा हूँ। आप दयापूर्वक मुझे सब बातें समझाकर बताइए। मेरा मस्तिष्क चेतना-विहीन क्यों हो गया था ?

वैद्यनाथ ने कहना प्रारम्भ किया—सो तो हो ही जाना चाहिए था, हठात् मन पर हर्ष अथवा विषाद का धक्का लगने से सारी चेतना नष्ट हो जाती है। इसी लिए मैंने धीरे-धीरे इतना घुमा-फिराकर आपके आकस्मिक लाभ की चर्चा चलाई थी। मैंने पहले आपकी नौकरी

वहाल करने की सम्भावना वताकर आपका मन प्रफुल्लित कर लिया, उसके वाद अधिक वेतन की नौकरी पाने की वात वताकर आपको कुछ और अधिक प्रसन्न कर लिया, और तव डर्वी के टिकट मे आपका जो नम्वर आया है वह आपके भाग्योदय की सूचना देता है, यह वताकर आपको आशान्वित कर लिया, उसके वाद अन्त में उस टिकट के वेच डालने पर आपको हाथो ही हाथ चार लाख रुपये पा जाने की वात वताई। क्यो, मैंने यह अच्छा किया न? पहले ही सहसा लाभ की वात वता देने पर या तो आप पागल हो जाते, या हार्ट फेल हो जाने के कारण शायद आपकी मृत्यु हो जाती। ऐसा अनेक व्यक्तियो को हो चुका है।

पुण्डरीकाक्ष अत्यन्त क्षीण स्वर से वोला—आप सदा मुझ पर ऐसी ही कृपा करते आये है। वडे साहव मेरा टिकट क्यो खरीदना चाहते है? वे भी तो प्रतिवर्ष वहुतेरे टिकट खरीदा करते है?

वैद्यनाथ कहने लगा—आज साहव के पास खवर आई है कि आपके टिकट के नम्वर में एक वडा अच्छा घोडा आया है। उसका नाम सिलवर वुलेट है। अधिक सम्भव है कि वह फर्स्ट अथवा सेकेण्ड आयेगा। यह भी सम्भव है कि वह न भी जीते। यह सव तो चान्स की वात है। कुछ ठीक कहा नही जा सकता। यह भी हो सकता है कि वह घोडा दौड ही न सके अथवा कोई प्लेस न पा सके। परन्तु यदि वह जीत गया तो आप दस-वारह लाख रुपये पा सकते है और यदि न जीता अथवा न दौडा तो सव मृग-मरीचिका हो जायगा। अतएव आप मेरी सलाह मानें तो मैं कहूँगा कि यह दाँव किसी प्रकार न चूकिए। चार लाख रुपये! चार ही लाख सही। ये चार लाख रुपये भी तो आप मुफ्त ही पाये जा रहे है। लोग कहते है—शस्यञ्च गहमागतम्—पडे मिल जायँ तो चौदह आने ही भले है!

वैद्यनाथ ने अव जाने का उपक्रम करते हुए कहा—आज तो आप दफ्तर का कोई काम कर नही सकेंगे। आज आपको छुट्टी है,

आप घर जाइए। घर जाकर अपने बन्धु-बान्धवों से अच्छी तरह सलाह-मशविरा करके कल आकर मुझे अपने निश्चय की सूचना दीजिएगा। आप खूब सोच-विचार कर अपना मत स्थिर कर लीजिए। फिर भी यदि आप मेरा परामर्श मानें तो मेरा कहना है कि उस टिकट को बेच डालना ही उत्तम है। आप समझे न?

यह कहकर वैद्यनाथ चला गया।

पुण्डरीकाक्ष के आस-पास के बाबू अधीर हो उठे थे। वे वैद्यनाथ के चले जाने की प्रतीक्षा में छटपटा रहे थे। उसे जाता देखकर वे लोग चञ्चल हो उठे और उसके आँख की ओट होते ही सब लोगों ने आकर पुण्डरीकाक्ष को घेर लिया और प्रश्नों की झड़ी लगाना प्रारम्भ कर दिया।

पुण्डरीकाक्ष शून्य दृष्टि से एक ओर ताकता हुआ जिस प्रकार बैठा था, वैसा ही बैठा रहा। वह किसी की किसी बात का उत्तर न दे सका।

सब लोगों ने अपने मन में समझा कि पुण्डरीकाक्ष पर कोई दारुण विपत्ति आ गई है, इसी लिए वह हतप्रभ हो गया है, उसका मस्तिष्क विकृत हो गया है।

पुण्डरीकाक्ष उस समय बैठा हुआ सोच रहा था। उसके मन में नाना प्रकार की चिन्ताओं की उत्ताल तरङ्गें उठ रही थीं। ऐसे समय में उसे उन सब लोगों की बातों पर ध्यान देने का अवकाश अथवा क्षमता नहीं थी।

वह सोच रहा था—मेरे भाग्य में क्या यह भी कभी सम्भव है कि अकस्मात् इच्छा होते ही चार लाख रुपये हाथ में आ जायँ। वैद्यनाथ शायद मेरा उपहास कर रहा था। परन्तु वह तो बार-बार कह रहा था कि मैं हँसी नहीं कर रहा हूँ। तो फिर मैं अपनी जिह्वा से एक शब्द निकालते ही इसी क्षण अपनी मुट्ठी में चार लाख रुपये का चेक पा जाऊँगा! और मैं इसी क्षण इम्पीरियल बैंक जाकर उस चेक

को कैश करके नकद चार लाख रुपये सन्दूकों में भर कर अथवा मोटर-लारी में लादकर अपने घर ले जा सकूँगा या मार्ग में उन्हे लुटाता हुआ जा सकता हूँ। और यदि मै अपना टिकट अभी न वेचूँ तो या तो दस-वारह लाख पा सकता हूँ अथवा यह आशा मिट्टी में भी मिल जा सकती है। तव तो समूलेन विनश्यति का प्रश्न उपस्थित हो जायगा! और यदि मै अधिक रुपये ही पा जाऊँ तो भी उसके लिए मुझे दो-तीन महीने आशा लगाये वैठा रहना पडेगा। इतने दिनो राह देखते-देखते यदि मेना का और कही विवाह हो गया तो मै उन रुपयो को लेकर क्या भाड में झोकूंगा अथवा उनसे अपनी चिता का स्मारक वनवाऊँगा? इस समय हाथ में रुपये आ जाने पर विवाह आदि की चेष्टा करके देख सकता हूँ।

यह वात मन में आते ही पुण्डरीकाक्ष का सङ्कल्प दृढ हो गया। वह कुर्सी छोडकर सीधा वडे वावू के कमरे में जा पहुँचा।

दफ्तर के सभी लोग आश्चर्य से उसका यह तमाशा देखने लगे और उसके सम्वन्ध में सैकडो किस्म की वातें सोचने लगे।

पुण्डरीकाक्ष को देखते ही वैद्यनाथ वावू आदरपूर्वक कुर्सी छोडकर उठ खडे हुए और नमस्कार करके वोले—आइए आइए, कहिए, क्या आज्ञा है पुण्डरीक वावू? आपका प्रफुल्ल और दृढ मुखमण्डल देखकर मै समझ रहा हूँ कि आपने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। क्यो, है न यही वात?

पुण्डरीकाक्ष ने रात की नीद मे परेशान व्यक्ति की तरह अचेत अवस्था में कहा—क्या कहा आपने—जी हाँ।

वह अधिक देर तक खडा न रह सका, एक कुर्सी-पर धम्म से वैठ गया। वैद्यनाथ के कमरे में आज ही पहले-पहल वह कुर्सी पर वैठा था।

वैद्यनाथ ने उल्लसित होकर कहा—यही तो वुद्धिमानो की-सी वात है। अँगरेजी मे एक कहावत है—वन वर्ड इन हैण्ड इज़ वर्थ टू

इन दि वुश ! अर्थात् हाथ में आया हुआ एक पैसा उन दो पैसो की अपेक्षा कही अधिक उपयोगी है, जिनके लिए आशा लगाये वैठा रहना पडे।

पुण्डरीकाक्ष पागलो की तरह स्तम्भित होकर चुपचाप कुर्सी पर वैठा रहा, उसके मुँह से कोई वात न निकल सकी।

वैद्यनाथ ने पुण्डरीकाक्ष के मुँह की ओर एक क्षण ताककर कहा—तो आइए पुण्डरीक वावू, साहव के समीप चलिए और चेक ले आइये। चलिए—

वैद्यनाथ के अग्रसर होते ही पुण्डरीकाक्ष भी उसके पीछे-पीछे मशीन के द्वारा ढकेली जानेवाली किसी जड वस्तु के समान चला। वैद्यनाथ ने आगे वढते हुए कहा—आइए। पुण्डरीकाक्ष हिपनोटाइज्ड (सम्मोहित) व्यक्ति की तरह वैद्यनाथ के पीछे-पीछे चलता गया। वह कहाँ और क्यो जा रहा है, इस सम्वन्ध में मानो उसे कोई ज्ञान नही था।

वैद्यनाथ के पीछे-पीछे पुण्डरीकाक्ष को कमरे मे प्रवेश करते देखकर साहव तुरन्त कुर्सी छोडकर उठ खडा हुआ और उसकी ओर हाथ वढाता हुआ वोला—हलो मिस्टर पूटिटुण्डा, माई हार्टिएस्ट काग्रेचुलेशन्स टु इयू ! वेरी गुड लक !

उस समय पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड का सिर चकरा रहा था, उसे अपनी आँखो के सामने अँधेरा दिखाई पड रहा था। अभी तक उसे रुपये मिले नही थे, मिलेगे अथवा नही यह भी निश्चित नही था। रुपये पाने की सम्भावना भर हुई थी। इसी लिए मेसर्स वेगवरो एण्ड स्टील कपनी के वडे साहव ने खुद उठकर उससे हाथ मिलाकर नमस्कार किया ! तव रुपये मिल जाने पर क्या मेना का हाथ अपने हाथ मे पा लेना उसके लिए एकदम दुर्लभ होगा ?

पुण्डरीकाक्ष साहव से कोई वात न कह सका। उसकी ओर से सव वाते वैद्यनाथ ने की।

वैद्यनाथ से जव साहब ने सुना कि पुण्डरीकाक्ष अपना टिकट बेच डालने को प्रस्तुत हो गया है तव उसने कहा—मैं यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ मिस्टर पूटिटुण्डा! आप वडी वुद्धिमानी का काम कर रहे हैं। मैं सोच रहा हूँ कि जब आप इतने सहज मे अपना टिकट बेच डालने को तैयार हो गये है तव आपको कुछ और देना चाहिए। मैं समभ रहा था कि आपसे बहुत मोल-भाव करना पडेगा, इसी लिए मैंने मिस्टर विश्वास से कुछ कम करके टिकट का मूल्य वताने के लिए कहा था। मैं आपको पूरे पाँच लाख रुपये दे सकता हूँ।

पुण्डरीकाक्ष आनन्द से और अधिक विह्वल हो उठा। उसे गिरता देखकर वैद्यनाथ ने तुरन्त उसे सँभालकर एक कुर्सी पर विठा दिया।

थोडी देर के वाद पुण्डरीकाक्ष ने धीमी आवाज़ से कहा—आप म८ अन्नदाता है। मुझ पर यदि आप न कृपा कीजिएगा तो और कौन करेगा?

साहव वोला—ऐसी स्थिति में टिकट वेचने की लिखा-पढी करने के लिए हम लोगो को एक वार अपने एटर्नी के मकान मे जाना होगा। चलिए मिस्टर विश्वास, आपको मेरी ओर से अपनी गवाही देनी होगी और मिस्टर पूटिटुण्डा, आप यदि किसी को गवाह वनाना चाहे तो उसे भी ले चल सकते है।

पुण्डरीकाक्ष ने अत्यन्त दीन-कातर भाव से कहा—मेरे गवाह आदि सव कुछ हुज़ूर ही हैं। आपकी कृपा से ही मेरा यह भाग्य-परिवर्तन हो रहा है। हुज़ूर के ऊपर ही मेरा सव कुछ निर्भर है।

थोडी देर के वाद दफ्तर के सभी वाबुओ ने आश्चर्य के साथ देखा कि पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड वडे साहव के मोटर मे उनके शरीर से शरीर भिडाये वैठा हुआ कही जा रहा है।

लिखा-पढी सव ठीक हो गई। साहब ने पुण्डरीकाक्ष को पाँच लाख रुपये का चेक काट दिया। तव पुण्डरीकाक्ष ने साहव से अनु-रोध किया कि आप ही इन रुपयो को मेरे नाम से इम्पीरियल बैंक

में जमा करा दीजिए, क्योंकि बैंक मे किस प्रकार रुपये जमा किये जाते है, यह मै नही जानता। उसने बैंक में चार लाख निन्नानवे हज़ार रुपये जमा किये और एक हज़ार रुपये के फुटकर नोट भुनाकर ख़ुद ले लिया।

पुण्डरीकाक्ष साहब को धन्यवाद देकर घर जाने के लिए उनसे विदा हुआ।

पुण्डरीकाक्ष के विदा होते समय वैद्यनाथ विश्वास ने हँसकर कहा—पुण्डरीक बाबू, कब मुँह मीठा कराइएगा, बताये जाइए। तीन दिन भूरिभोजन चाहता हूँ, समझे। एक दिन इतने अधिक नकद रुपये पाने के लिए लक्ष्मीपूजन के उपलक्ष्य मे निमन्त्रण हो, दूसरे दिन नये गृह-प्रवेश के और तीसरे दिन इन सबकी अपेक्षा अधिक आनन्द के आयोजन—आपके विवाह के बाद—बहू आने के समारोह-उत्सव के उपलक्ष्य में। हाँ, यह तो बताइए, अब कब अपना विवाह कीजिएगा। अब तक तो क्या खिलायेंगे, यह सोचकर बहू को घर नही लाये। अब तो भगवान् की इच्छा से वह चिन्ता रह नही गई है। कहिए तो मै मध्यस्थ बनूँ। मेरे मध्यस्थ बनने की क्षमता देखकर आप चकित रह जायँगे। एक क्षण में आपके प्रति विमुख लक्ष्मी का केवल मन ही आपकी ओर नही आकृष्ट कर दिया, बल्कि सहसा आपका उनसे मिलन करा दिया। ऐसे समय मे एक गृहलक्ष्मी जुटा देना कौन-सी बडी बात है?

विवाह की बात उठते ही पुण्डरीकाक्ष के मन के सम्मुख मेना का विवाह के समय के वस्त्र पहने हुए नववधू के वेश मे अवगुण्ठित व्रीडावनत सुन्दर मुखमण्डल नाचने लगा। उसने एक लम्बी साँस लेकर कहा—बडे बाबू, आपको दो दिन का न्योता तो अभी दिये देता हूँ। परन्तु तीसरे न्योते के सम्बन्ध में बडा भारी सन्देह है। विवाह तो केवल वर की इच्छा से नही होता, उसके लिए कन्या की भी तो इच्छा होनी चाहिए, कन्या मुझे नही भी पसन्द कर सकती है।

वैद्यनाथ ने हँसकर कहा—बङ्गाल मे ऐसी कौन-सी कन्या है जो

पाँच लाख रुपये के मालिक को पसन्द न करे ! आपकी पसन्द के योग्य लाखो ऐसी कन्याये है जिन्हे मै खूब जानता हूँ। आपकी पसन्द के अनुसार कन्या चुनकर मध्यस्थ बनकर विवाह स्थिर कराने का भार मुझ पर रहा। फिर भी यदि किसी कन्या-विशेष के प्रति आपका पक्षपात चला आ रहा हो तो बात और है। इस प्रकार का कोई रोमान्स आदि तो नही है ? यदि हो, तो भी विश्वासपूर्वक आप मुझसे कह सकते है। मै एक बार उन लोगो से भी चेष्टा करके देख सकता हूँ। मेरा नाम वैद्यनाथ विश्वास है !

मेना के प्रति पुण्डरीकाक्ष का जो प्रणय और आकर्षण था वह उसकी दृष्टि में अत्यन्त पुनीत और गोपनीय साधना के धन के रूप में था। इसी लिए उसने कभी किसी के सामने इस बात को लेकर तर्क-वितर्क करना तो दूर रहा, स्वप्न मे भी इस सम्बन्ध मे एक शब्द तक निकालना नही चाहा। यह उसकी अत्यन्त छिपी हुई निधि थी। उसने वैद्यनाथ के प्रश्न से सकुचित होकर कहा---न, न, चटाई के लहँगे को परियो का शौक़ कहाँ से आयेगा ? तीस रुपये के क्लर्क के जीवन मे कैसा रोमान्स !

वैद्यनाथ ने कहा---परन्तु अब तो आप गरीब नही है।

पुण्डरीकाक्ष ने म्लान हँसी हँसकर कहा---अब गरीब नही हूँ, परन्तु आज साढे दस बजे तक तो गरीब था, नि स्व ही था।

वैद्यनाथ ने कहा---जो भी हो, आपको यदि विवाह स्थिर कराने के लिए मध्यस्थ की आवश्यकता पडे तो आप अपने इस मित्र को स्मरण कीजिएगा। मै शायद उसमें भी अपने हाथ का यश प्रमाणित करके दिखा सकूँ।

पुण्डरीकाक्ष ने म्लान मुँह से कुछ हँसकर अपना मस्तक अवनत करके वैद्यनाथ को नमस्कार किया, कहा कुछ नही। उसके बाद एक टैक्सी मँगवाकर उसमे वह बैठ गया। टैक्सी में बैठकर जाते जाते वह सोचने लगा---मेना के प्रति मेरा जो अनुराग है वह केवल मेरे गोपनीय मनोराज्य का व्यापार है। उसे मै किसी से कैसे बता सकता हूँ ? यदि मेनादेवी ही किसी दिन बताने का अधिकार मुझे देगी तो बताऊँगा, नही तो यह बात मेरे मन में ही छिपी रह कर मेरी चिता में विलुप्त हो जायगी।

छठा परिच्छेद

कायापलट

पुण्डरीकाक्ष बैङ्क से निकलकर सीधे चाँदनी चौक के बाज़ार मे गया। वहाँ जाकर उसने अनेक दूकानो से अनेक प्रकार की साज-सज्जा की वस्तुएँ पसन्द करके खरीदना प्रारम्भ किया। उसने एक मयूरकण्ठी रङ्ग की कमीज़ खरीदी, सिल्क का एक चमचमाता हुआ पजाबी कोट खरीदा। उस कोट से अनेक प्रकार के रङ्गो की चमक निकल रही थी। एक जोडा पेटेण्ट लेदर का पम्प शू खरीदा। वह भी काफी चमकदार था। एक छडी खरीदी। उसके बेंट में सुनहरी मूँठ लगी हुई थी और छड़ी मे अनेक प्रकार के रगो की लकीरें कटी हुई थी। एक छाता खरीदा। उसका बेट हाथीदाँत का था और उसमें अत्यन्त सूक्ष्म पच्चीकारी का काम था। बेंट में पुष्प-लता-पत्तियो के बीच में एक नङ्गी स्त्री अपना शरीर शिथिल किये पडी थी। इन वस्तुओ के अतिरिक्त उसने रङ्गीन मोज़े, रङ्गीन रूमाल, एसेन्स, साबुन, ब्रुश आइना, जीलिट का नये किस्म का सुनहरा सेफ़्टी रेज़र, क्रीम, वार्बासोल आदि बाबू साहबी के ठाठ की वस्तुएँ खरीद कर अपनी आज तक की आशाओ की परितृप्ति की। उसके बाद आभूषणो की दूकान मे जाकर एक अत्यन्त सुन्दर हीरे की अँगूठी, एक सोने की कलाई की घडी और सोने का पट्टा खरीदा।

इन सब वस्तुओ को खरीदकर पुण्डरीकाक्ष अपने घर पहुँचा और अपने कमरे के किवाड बन्द करके उन सब वस्तुओ से सुसज्जित होने में निमग्न हो गया। वह जब अपने कमरे के किवाड खोलकर बाहर निकला तब उसकी बुआ उसके चेहरे और पोशाक का यह परिवर्तन देखकर अवाक् रह गई।

पुण्डरीकाक्ष ने अपनी बुआ की विस्मय-विस्फारित आँखें देखकर हँसते हुए कहा—देखती क्या हो बुआ ? तुमने मेरी वर्षगाँठ के दिन नये कपड़े खरीदकर पहनने की बात कही थी। याद है न? उसी दिन मैं उपद्रव में पड जाने से पुलिस के द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया और जेल भेज दिया गया। उसके बाद के चार महीने तो जेल में ही बीत गये। वहाँ से लौट आने पर झण्झटो में फँसे रहने के कारण तुम्हारा अनुरोध स्मरण न रख सका। हठात् आज मुझे याद आया कि बुआ ने मेरी वर्षगाँठ के दिन नये वस्त्र पहनने को कहा था। तुम्हारी बात को याद करके ही कुछ बढिया कपडे खरीद कर मैंने पहन लिये हैं। देखो बुआ, मैं कैसा लगता हूँ। अब राजा के दामाद सरीखा दिखाई पडता हूँ न ? अब तुम्हारी साध को भी पूरी करने की चेष्टा करूँगा। जिसके साथ मैं अपना विवाह करना चाहता हूँ, यदि वह भी राजी हो गई तो मै अपना विवाह करूँगा। तुम नज़दीक की बस्ती मे एक बार पता लगाकर देखो। शायद वहाँ कहारी और नौकर आदि का काम करने को लोग मिल जायँ। तुम एक महरी, एक नौकर, एक रसोइया अथवा मिसरानी तो आज ही तय कर लो। तुम केवल घर-गृहस्थी की देख-भाल करना। तुम बूढी हो गई हो, दोनो समय भोजन बनाना और बर्तन मलना आदि सब तुमसे कैसे हो सकेगा ? और लोग भी मेरी बुआ को रसोई बनाते देखकर मुझसे क्या कहेंगे, और तुम्ही से क्या कहेगे ?

पुण्डरीकाक्ष की बुआ इतनी चकित और चिन्तित हो उठी कि वह कोई उत्तर न दे सकी। वह सोच रही थी कि अवश्य पुण्डरीकाक्ष का मस्तिष्क विकृत हो गया है। जिस आदमी की नौकरी कुल दस दिन में छूटनेवाली हो, अकस्मात् उसका यह नवाबी ठाट प्रकृतिस्थ अवस्था में कैसे बदल सकता है ? आह ! नौकरी की फिक्र में ही लड़के का दिमाग बिगड गया है।

पुण्डरीकाक्ष अपनी बुआ को विस्मय में डालकर उसे कुछ कहने

का अवसर दिये बिना ही तुरन्त घर के बाहर निकल पडा। मकान के बाहर टैक्सी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। वह उसमें बैठ गया और मार्टिन कम्पनी के दफ्तर में जा पहुँचा। मकान बनवाने के ठेकेदार मार्टिन कम्पनी के मैनेजर से मिल कर उसने कहा कि आपको मेरा वर्त्तमान मकान गिरवाकर उस स्थान पर एक नये फैशन का सुन्दर, परम रमणीय भवन बनवाने का ठीका लेना होगा और नये फैशन के अनुसार जितने प्रकार की सुविधाओ की व्यवस्था की जा सकती है, उस मकान मे उन सबका प्रबन्ध करना होगा। यदि सम्भव हो तो आप श्रीश चटर्जी से नवभारतीय पद्धति के स्थापत्य के अनुसार मकान का नक्शा तैयार करवा लीजिए। परन्तु यदि ऐसा करने में देर लगे तो उनसे नक्शा बनवाने की कोई आवश्यकता नही है। आप ही अपने आदमियो से देशी ढङ्ग का नक्शा बनवाकर तुरन्त मकान बनवाना प्रारम्भ कर दें। मेरा यह मकान जितनी जल्दी सम्भव हो, उतनी ही जल्दी तैयार हो जाना चाहिए। इस काम के लिए मै अधिक रुपये व्यय करने को प्रस्तुत हूँ। यदि सम्भव हो और रातोरात काम करके मकान बनाने का काम समाप्त कर दे सकें तो मैं बाजार की दर की अपेक्षा दुगुने रेट का कंट्राक्ट देने को भी प्रस्तुत हूँ। मार्टिन कम्पनी में अनेक इजीनियर, और न जाने कितना माल-मसाला सदा मौजूद रहता है, इसी लिए आपके पास मै सबसे पहले आया हूँ, जिससे हाथो ही हाथ आप मकान तैयार कर दे सके। यदि आपकी कम्पनी का इजीनियर अभी मेरे साथ चलकर जगह देखकर नाप-जोख कर ले और रातोरात प्लान तैयार करके कल सवेरे से ही पुराना मकान तोडकर नया बनाना प्रारम्भ करवा सके तो मै आपको किसी भी शर्त पर कट्राक्ट देने को प्रस्तुत हूँ। पुण्डरीकाक्ष मन-ही-मन सोच रहा था—हाय! हाय! यदि मेरे पास अलादीन का आश्चर्य-प्रदीप होता तो मै रातोरात अपनी इमारत तैयार करवा के मेना को दिखा देता।

पुण्डरीकाक्ष की बात सुनकर, तुरन्त मकान तैयार करवाने की

व्यग्रता देखकर और उसकी वेष-भूषा को लक्ष्यकर मार्टिन कम्पनी के मैनेजर को सन्देह हुआ कि शायद यह व्यक्ति पागल है। तो भी उसने स्वीकार कर लिया कि हमारी कम्पनी एक महीने में ही आपकी इमारत तैयार कर देगी। उसने उसी समय अपने एक इंजीनियर को बुलाकर उससे पुण्डरीकाक्ष के साथ जाकर जमीन देख लेने और इण्डियन स्टाइल की इमारत का बढ़िया नक्शा तैयार करके उसे पसन्द करवा लेने को कहा।

पुण्डरीकाक्ष इंजीनियर को टैक्सी मे बिठालकर अपने मकान की ओर चल दिया। इस व्यस्त और उदाराशय धनी आदमी के पास निज का एक मोटर भी नही है, यह देखकर इंजीनियर को आश्चर्य हुआ और उसे भी सन्देह होने लगा कि मै कही पागल के पल्ले तो नहीं पड़ गया हूँ।

पुण्डरीकाक्ष ने यह सन्देह निवृत्त करने का प्रबन्ध कर लिया। उसने अपनी धनशालिता प्रमाणित करने के लिए मार्टिन कम्पनी के नाम पाँच हजार रुपये का एक चेक पेशगी काट दिया। उसके बाद वह अपने उस महाजन के पास गया, जिसके यहाँ उसका मकान गिरवी रक्खा था। उसने उससे कहा—मै कर्ज का रुपया अदा करके अपना मकान छुड़ा लेना चाहता हूँ। मै चेक काटे दे रहा हूँ, दयापूर्वक मेरे गिरवीनामे की पीठ पर रुपये पाने के दस्तखत कर दीजिए और वह मुझे वापस कर दीजिए।

उसके महाजन ने पुण्डरीकाक्ष की वेष-भूषा देखकर और बातचीत सुनकर समझा कि वह पागल हो गया है। जो व्यक्ति क़र्ज़ के रुपयो का सूद तक नही दे सकता था, जो उसके कितने ही तकाजे और गालियाँ चुपचाप सुन लेता था, वह आकर कहता है कि कुल सूद और असल रुपये का चेक काटे दे रहा हूँ! पागलो के अतिरिक्त क्या और कोई ऐसी बात कह सकता है? परन्तु जब पुण्डरीकाक्ष ने अपनी जेब से चेकबुक बाहर निकाली तब तो वह अवाक् होकर देखने लगा। फिर भी उसका सन्देह निवृत्त नही हो सका। यद्यपि उसने देखा कि चेकबुक पर पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड का ठीक-ठीक नाम-ठिकाना लिखा हुआ है, तो भी उसने

सोचा कि शायद वह चुराकर अथवा विना वताये किमी की चेकवुक उठा लाया है। पागल और चोर-वदमाश क्या नही कर सकते ? इसलिए उस महाजन ने वडी सावधानी से उत्तर दिया—यह जानकर मै अत्यन्त प्रसन्न हुआ पुण्डरीक वावू कि आप मेरा सव रुपया अदा कर देगे। आपका गिरवीनामा यहाँ मेरे पास नही है। मेरी गद्दी मे रक्खा है। यदि आप कल सवेरे आने की कृपा करें तो मै उसे गद्दी से लाकर रख लूँ। अथवा यदि आप ग्यारह वजे के समय गद्दी पर आने की कृपा करें तो मै वही आपको दे सकता हूँ। एक वात है पुण्डरीक वावू, आप अपने मन में कोई वात न लाइएगा, मुझे कुछ रुपयो की कल ही वडी आवश्यकता है। ऐसे कुसमय में आपने रुपये देकर मेरी जो सहायता की है उसके लिए मै आपका उपकृत हूँ। यदि आप नकद रुपये दे दें तो मुझे वडी सुविधा हो, नही तो वैंक मे चेक भेजकर रुपये मँगाने में वडी देर हो जायगी, मुझे उससे कुछ असुविधा होगी

पुण्डरीकाक्ष महाजन का सन्देह ताड गया। उसने मुसकिराकर कहा—आपको सन्देह हो रहा है कि कल का दरिद्र पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड हठात् आज धनपति वनकर कैसे आ खडा हुआ। ऐसा सन्देह आपको होना ही चाहिए ...

महाजन ने लज्जित होकर कहा—न, न, ऐसी वात नही है, किन्तु

पुण्डरीकाक्ष गम्भीर होकर वोला—मैं कल नकद रुपये लेकर ही ग्यारह वजे के लगभग गद्दी पर आकर आपसे मिलूँगा। आप दयापूर्वक मेरा गिरवीनामा ले जाकर गद्दी में रख छोडे। क्योंकि कल से ही मैं अपना पुराना मकान तुडवाकर उसमें नई इमारत वनवाना प्रारम्भ कर दूँगा, मै मार्टिन कम्पनी को कट्राक्ट दे आया हूँ।

पुण्डरीकाक्ष को विश्वास नही हुआ कि महाजन की गद्दी में गिरवीनामा रक्खा है। अतएव उसने महाजन से उसे गद्दी में ले जाकर रखने को कहा। इसका प्रतिवाद करके अपनी मिथ्यावादिता को छिपाने की महाजन ने कोई चेष्टा नही की। पुण्डरीकाक्ष की लम्बी-चौडी वातें

सुनकर वह अवाक् हो गया था। वह केवल यही सोच रहा था कि पुण्डरी-काक्ष कह क्या रहा है? एकदम मार्टिन कम्पनी को मकान बनवाने का कण्ट्राक्ट!

पुण्डरीकाक्ष उठकर खडा हो गया। उसने महाजन को नमस्कार करके उसे फिर याद दिलाई कि मै कल ग्यारह बजे आपका कुल नकद रुपया लेकर आपकी गद्दी में आऊँगा और अपने गिरवीनामे में रुपयो की प्राप्ति की स्वीकृति लिखाकर उसे ले जाऊँगा। मुझे कल ही गिरवीनामा मिल जाना चाहिए और यदि वह कल न मिल सके तो आप इस आशय की एक पक्की रसीद लिख दीजिएगा कि आपको सूद-सहित कुल रुपये मिल गये है, क्योकि मेरे पास अधिक समय नही है। कल ही मार्टिन कम्पनी के आदमी मकान गिराना प्रारम्भ कर देगे।

पुण्डरीकाक्ष वापस आते ही अपने मकानवाली गली में ही किराये की जगह लेने की चेष्टा में निकला। उस सडक पर एक मकान के द्वार पर बहुत दिनो से एक नोटिस लटक रही थी—'यह मकान किराये को खाली है। न० ३६, बेचाराम पोद्दार की गली में पूछिए।' वह मकान पुण्डरीकाक्ष के मकान के उस ओर ही था, जिस ओर मेना का मोटरकार नित्यप्रति जाया करता था। यदि ऐसा न होता और वह मकान उसकी विपरीत दिशा में होता तो पुण्डरीकाक्ष उसे किराये पर लेने के लिए कदापि न तत्पर होता। यदि वह पक्का मकान न पाता तो खपरैल का मकान लेकर ही कुछ दिन बिता देता, परन्तु दूसरी सडक पर या उसी रास्ते के दूसरी ओर किसी मकान मे न रहता।

पुण्डरीकाक्ष उस मकान-मालिक की खोज मे निकल पडा और उससे भेंट करके उसे एक महीने का पेशगी किराया देकर उस मकान को तय कर आया।

मेना जिस रास्ते से नित्यप्रति आती-जाती थी, पुण्डरीकाक्ष सौभाग्यवश किराये पर उसी सडक के किनारे का मकान पा गया। मेना को नित्य देखने के सौभाग्य से वह वञ्चित नही हुआ। उसने जो

मकान किराये पर लिया वह उसके निज के मकान की अपेक्षा बहुत बडा और सुन्दर था, तो भी उसके मन में यह सङ्कोच बना ही रहा कि यह मकान उतना चमक-दमक-पूर्ण नही है जिससे लोग समझ सके कि उसकी अवस्था अब कितनी परिवर्तित हो गई है।

दूसरे दिन सवेरे ही उसने उस मकान मे अड्डा जमा लिया। उसके पास सामान ही ऐसा कितना अधिक था! थोडी ही देर मे वह स्थानान्तरित हो गया। जब उसके मकान से फटी चौकी, उखडे पाये और टूटी पीठ की कुर्सी, कितनी ही मैली और काली हाँडियाँ और सामान रखने के मोरचा लगे हुए टीन के ट्रङ्क और केम्बिस का सूटकेस बाहर निकलने लगा तब लज्जा से पुण्डरीकाक्ष का मस्तक अवनत हो गया। थोडी देर मे मेना को देखने के लिए उसे प्रतीक्षा करनी थी, इस समय बाज़ार जाकर नई वस्तुएँ खरीदने का उसे अवकाश नही था। आज के पहले वह अपने नियमित स्थान पर खडा हुआ मेना के दर्शन के लिए प्रतीक्षा किया करता था, परन्तु आज वह नये स्थान पर खडा रहेगा, मेना अपने अभ्यास के अनुसार उसी पुराने स्थान की ओर दृष्टिपात करेगी और उसे देख न पाकर हताश हो जायगी और सम्भव है, वह इस नये स्थान की ओर दृष्टिपात ही न करे। जाने कितने दिनो के बाद मेना इस स्थान से परिचित हो सकेगी? परन्तु इस स्थान में उसका परिचय घनिष्ट होते न होते ही वह अपने नये मकान में उठ जायगा। तब मेना इस स्थान में उसे न देख पायेगी और उस पुराने स्थान में ही हठात् एक दिन देखेगी। इस प्रकार कितने ही दिन वृथा जायँगे, मेना से उसका दृष्टि-विनिमय न हो सकेगा। इससे वह अत्यन्त दुखित हो उठा था। परन्तु सहसा उसके मन में यह बात आई कि इससे मेना का मन उसके प्रति सचेष्ट हो जायगा, उसके लिए मेना के मन में अनुसन्धान की इच्छा और चेष्टा जाग्रत् होगी, उसके प्रति मेना का अनुराग बढने और मन आकृष्ट होने का सुयोग

प्राप्त होगा। अतएव इन सब बातो को सोचकर वह मन-ही-मन अत्यन्त उत्साहित और प्रफुल्लित हो उठा।

दस बजे के पहले से ही पुण्डरीकाक्ष अपने नये वेश से सुशोभित होकर एना-मेना की मोटरगाडी की प्रतीक्षा मे सडक के किनारे आ खडा हुआ।

पुण्डरीकाक्ष जो आशा कर रहा था, भाग्यवश वही हुआ। एना-मेना की मोटरगाडी ज्यो ही उसके मकान के सामने पहुँची, त्यो ही मेना और एना ने उसके नित्य प्रतीक्षा करने के स्थान की ओर दृष्टिपात किया, और दोनो ने देखा कि आज उस स्थान पर पुण्डरीकाक्ष नही है। परन्तु किसी ने एक-दूसरे से इस सम्बन्ध में कोई बात न पूछी। एक अपरिचित आदमी नित्य अपने मकान के सामने खडा रहता है, आज वह नहीं है, न रहे, उससे उनका कोई मतलब तो है नही, यह भाव दिखाने के लिए उन लोगो ने कोई बात नही उठाई, परन्तु दोनो ने मन में सोचा कि आज पुण्डरीकाक्ष गैरहाजिर क्यो है, वह कहाँ चला गया ?

गाडी के थोडी दूर बढ़ते ही एना ने देखा कि पुण्डरीकाक्ष सडक के किनारे पर खड़ा है। उसे देखते ही एना उत्साहित होकर व्यग्र स्वर मे कह उठी—दीदी, दीदी, देखो तुम्हारे पूतितुण्ड महाशय आज किस प्रकार मयूरपुच्छ-भूषित कौवे की तरह खडे हैं! उसने आज अपनी नई साज-सज्जा बना ली है! परन्तु यह सब वह पा कहाँ गया ?

पुण्डरीकाक्ष पर निगाह पडते न पडते ही मोटर आगे निकल गया। एना चकित दृष्टि से ही उसका जो आभास पा सकी थी, उसी से वह हँसते-हँसते अपनी दीदी की गोद में लोट-पोट हो गई। मेना ने भी अपनी बहन की बात सुनकर गाडी की पिछली खिड़की से झाँककर पुण्डरीकाक्ष को देखा और कुछ हँस पडी।

पुण्डरीकाक्ष का आनन्द उसके हृदय में समा न सका। मेनादेवी मोटर से झाँककर उसे देखकर हँस पडी और वे उससे अपना परिचय

और प्रीति का सम्बन्ध स्वीकार कर गई, ऐसे परम सौभाग्य का आनन्द भला उसके हृदय में कैसे समा सकता है! उसकी इच्छा हो रही थी कि वह सारे विश्व से चिल्ला-चिल्लाकर कहे कि 'शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा, मेरे जीवन-मन को आज अमृत-लाभ हुआ है, मेरी देह मेना-देवी के पावन दृष्टिपात से पवित्र हो गई है!' उसकी इच्छा हो रही थी कि वह सडक की धूल में लोट जाय और मेनादेवी के मोटर के पहिये से चिह्नित स्थान को अपने हृदय से चिपटा ले। इस वार पुण्डरीकाक्ष भली-भाँति समझ सका कि भक्त लोग कीर्त्तन के समय भावावेश मे किस प्रकार मिट्टी में लोटपोट हो जाते है, उनकी दशा कैसी हो जाती है।

तीसरे पहर कालेज से मकान लौटते समय मेना और एना ने आश्चर्य से देखा कि वहुत-से मज़दूर मिलकर दम दम दुड दुड करते हुए पुण्डरीकाक्ष का पुराना मकान गिराये दे रहे है। उन दोनो के मन में वडा कौतूहल उत्पन्न हुआ। उनके मन मे यह जानने की इच्छा प्रवल हो उठी कि क्या अन्त में उसका मकान कर्ज के कारण विक ही गया? जिस महाजन ने खरीदा है, क्या वह इसे तुडवाकर नये सिरे मे वनवा रहा है? अथवा पुण्डरीकाक्ष की अवस्था मे ही ऐसा कोई परिवर्तन हो गया है जिससे वह स्वय अपना मकान नये रूप से तैयार करवा रहा है? परन्तु दूसरो के सम्वध में इस प्रकार का कोई कौतूहल उत्पन्न करना सगत नही है, यह विचारकर दोनो में से किसी ने कोई बात नही उठाई। एना मन-ही-मन सोचने लगी कि अव तो पुण्डरीकाक्ष की बुढिया बुआ कभी हमारे घर बैठने भी नही आती जो उससे कोई बात जान ली जाती। वह वुढिया भी अजीव औरत है। इतने दिनो दीदी ने उसे सहायता दी; परन्तु उसके वाद अव वह कभी सूरत तक नही दिखाती।

दूसरे दिन सवेरे कालेज जाते समय एना ने देखा कि पुण्डरीकाक्ष अपने नये मकान के सामने नई पोशाक पहने हुए खडा है। उसे

दूर से ही देखकर एना ने अपनी दीदी से कहा--दीदी, दीदी, पूति-तुण्ड बाबू अपनी पुरानी झोपडी छोडकर इस बडे और नये मकान मे आकर बस गये है। अब उन्होने नई पोशाक खरीद ली है। अहा! अपनी इतनी बढिया दफ्तर जाने की पोशाक का उसने क्या किया? उसे अवश्य ही उसने किसी एक्जिबीशन में भेज दिया होगा अथवा किसी म्यूज़ियम मे रख दिया होगा। वाञ्छाराम का चाव कितना सुन्दर और अनोखा है! बाजार से एक कोट खरीद लिया है! कमीज़ सिल्क की है! उसके इन कपडो से जल-तरङ्ग की-सी चमक झिलमिला रही है। हाथ मे अँगूठी और घडी पहनकर ये महाशय एक-दम नव-कार्तिकेय के रूप में सज्जित हो गये है। गँवार और किसे कहते है! गँवार कही वृक्षो मे थोडे ही फलते है, अथवा वे किसी देश-विशेष में थोडे ही निवास करते है? जिसको ज़रा भी शऊर नही है, जिसमें साधारण बुद्धि भी नही है, वही तो गँवार है।

पुण्डरीकाक्ष का मकान बनना शुरू हो गया। बहुत-से राज और मिस्त्री काम करने लगे। बात की बात में मकान ऊँचा उठने लगा। पुण्डरीकाक्ष अब सवेरे-शाम देख-भाल करने के लिए और मेना को यह दिखाने की आकाक्षा से कि यह उसका ही नया मकान बन रहा है, उसके सामने खडा रहने लगा। उसे नित्य उसी मकान के सामने खडा देखकर एना ने अपनी दीदी से कहा—दीदी, पुण्डरीकाक्ष अपना पुराना मकान तुडवाकर उस पर नया मकान बनवा रहा है। यह बढ कैसे गया? यह तो एक-दम उँगली के फूलकर केले के वृक्ष के रूप मे परिवर्तित हो जाने की-सी बात हुई! अब तो यह निश्चय अपना विवाह करेगा।

मेना अपनी बहन का मन्तव्य सुनकर कुछ व्यङ्ग से हँसी और परिहास से बोली—तुझे शायद इससे डर लग रहा है अथवा ईर्ष्या हो रही है? तू जिस प्रकार मनोनियोगपूर्वक नित्य-नित्य इसकी जीवन-यात्रा की ओर निगाह डालती चली आ रही है उससे मुझे

वडा सन्देह हो रहा है कि तू उसके प्रेम-पाग मे आवद्ध हो गई है। देख, यदि वह तुझे वहुत पसन्द आ गया हो तो चुपचाप मुझसे वता दे। मैं पिताजी से कहकर तेरे साथ ही उसके विवाह की वात चलाऊँ।

दीदी की वात सुन कर एना लज्जित हो गई और हँसकर वोली—हट, उसने मैं क्यो अपना विवाह करने लगी। उसकी दुलहिन आयेगी, शरीर मे देहाती ढग मे साडी, नाक मे वेसर और कान में झुमके पहने हुए। वह होगी नौ वर्ष की अवोध लडकी और पूतितुण्ड महाशय लोगो से अत्यन्त सम्भ्रमपूर्वक उसका परिचय देंगे—ये मेरी स्त्री हैं।

यह वात समाप्त करते ही एना हँसती हुई अपनी दीदी की गोद में लोट पडी। इस वार मेना ने भी चुपचाप अपनी वहन के विनोद में योग दिया।

पुण्डरीकाक्ष नित्यप्रति मेना को एक वार एक क्षण के लिए दूर से देख पाने की आशा मे सडक के किनारे पर आशा वाँधे खडा रहता था। परन्तु वह कभी स्वप्न मे भी नही सोच सका कि उसके विपय में इन दोनो वहनो मे कोई आलोचना होती है अथवा वह उनके कौतुक का विषय वनकर उनके लिए हास्यजनक हो गया है। उसे देखकर एना की आँखो और मुँह से वातें और हँसी निकलने के क्षण तक उनकी मोटर-गाडी उसकी दृष्टि से वाहर पहुँच जाती और उसके सम्वन्ध की उनकी आलोचनाये तथा हँसी-मजाक की वातें उसके परोक्ष में ही होती।

देखते-देखते पुण्डरीकाक्ष का मकान तैयार होगया। मकान की सामने की दीवार मे सफेद पत्थर के टाइल और प्रत्येक कमरे के फर्श पर सफेद पत्थर लगाये गये। कमरे की दीवारो मे वेल-वूटो का काम किया गया। छत के निचले भाग में अजन्ता की-सी चित्रकारी और पुष्प-लताओ, पत्तियो और पक्षिओ के विचित्र चित्र अकित किये गये। हर एक कमरा विजली के पखो और प्रकाश के अत्यन्त मनोहर झाडो से सुशोभित किया गया। जगह कम होने के कारण मकान चौतल्ला वनाया गया। हर एक तल्ले में दो वड़े कमरे और उन

कमरो के बगल में एक चौकोर ड्रेसिंग रूम और एक बाथरूम रक्खा गया। उनमें भी बिजली के पखो और प्रकाश की कृपणता नही की गई । मकान के एक किनारे जीना रक्खा गया और दूसरे किनारे एक लिफ़्ट (आरोहण-यत्र) लगाया गया। पाखाने और बाथरूम शख-शुभ्र पोर्सीलेन के टाइल से आच्छादित किये गये। दीवारो पर भी उसी प्रकार के टाइल और उन पर रगीन बेल-बूटो की पक्ति लगाई गई। मकान के उत्तर की ओर भी तितल्ला कमरा बनाया गया—उसका एकतल्ला नौकर-नौकरानियो के रहने के लिए रक्खा गया, दूसरे तल्ले में गैस और बिजली के चूल्हो का रसोईघर और भोजनालय बनाया गया और तीसरे तल्ले में भाण्डारगृह। दीवारो के काली हो जाने के भय से कोयले की आवश्यकता ही मिटा दी गई। मकान का विस्तार यद्यपि बहुत थोडा था तो भी यथासम्भव उसे सुन्दर बनाने और उसके लिए रुपयो के खर्च में कमी नही की गई। पुण्डरीक के मकान के बगल में एक खपरैल के घरो की बस्ती थी। उस जमीन को खरीदने की कोशिश करके जब वह विफल हो गया तब उसने दूनी कीमत देकर उसे खरीदा और उसमें मनोरम उद्यान और मोटर-गैरेज बनवाना प्रारम्भ कर दिया। इस तीन काठा जमीन में मकान बनवाने में पुण्डरीकाक्ष के पचास-साठ हज़ार रुपये खर्च हो गये।

पुण्डरीकाक्ष के मकान की नित्यप्रति उन्नति देखकर एना ने अपनी दीदी से विस्मयपूर्वक कहा—दीदी, इस बेशऊर पागल को हो क्या गया है ? इसने तो एकदम अभ्रलिह महल ही तैयार करवा लिया। देखो तो कितना सुन्दर मकान बनवा लिया। इसकी अभि-रुचि तो देखो ! अगला हिस्सा केवल सफेद पत्थर और पोर्सिलेन से बना है। इसने इस मकान पर जो रुपये खर्च किये है, मानो उन्हें गलवाकर उनके रूप से ही मकान को यह रूप दिया है। अपना सर्वस्व खोकर इसने यह मकान तो तैयार करवा लिया, परन्तु क्या खाकर इसमें रहेगा, मेरे मन में यह दुश्चिन्ता उत्पन्न हो गई है।

एना की वात सुनकर मेना ने हँसकर उत्तर दिया—बेचारे ने गृहलक्ष्मी का आवाहन कर सकने के लिए उसके चरण रखने को शतदल तो विकसित कर दिया। इसके बाद लक्ष्मी के उसमे पदार्पण करने पर जिससे भाण्डार रिक्त न हो, इस ओर लक्ष्मी ही अपनी पूर्ण दृष्टि रक्खेगी। पहले मकान मे तो पधारने की कृपा करो, फिर और सब सोच लेना।

एना ने भ्रूकुञ्चित करके कहा—हिश ! मेरी बला जाय उसके घर मे ! बलिहारी है उसके रूप और रुचि की।

मेना ने हँसकर उत्तर दिया—इसके लिए तुम न डरो। रुचि उसकी अब ऐसी भूल कदापि न करेगी और यदि वह ऐसा कर भी बैठी तो मै उसकी भूल सुधारकर ऐसी व्यवस्था करूँगी जिससे वह उपर्युक्त पात्री ही चुने।

एना ओठ बिचकाकर बोली—पहले तुम किसी के घर जाओगी तब तो मै कही जाऊँगी ! तब तुम्ही क्यो न उसके घर चली जाओ, लक्ष्मी का-सा तुम्हारा रूप भी है। कुमीरखाली मे रहने की अपेक्षा कलकत्ते मे रहना तुम्हारे लिए अत्यन्त सुविधाजनक और उत्तम होगा।

इस परिहास से मेना का मुँह सहसा लाल हो गया और उसकी आँखो की कोरो पर आँसू की बूँदे छलछला आई। वह एक क्षण ठहरकर आत्मसवरण करके विषण्ण स्वर से बोली—मै पिताजी को छोडकर कहाँ जाऊँगी ! कही चली गई तो इस बूढे शिशु की देख-भाल कौन करेगा ? मै इनके समीप रहकर भी तो कुछ नही कर पाती हूँ, तो भी .

मेना के शब्द मानो आँसुओ के सरोवर से स्नान करके भीग उठे। उसकी बातो से आँसू विगलित हो पडे। इस विषण्णता के आघात से एना के मुँह की हँसी भी विलुप्त हो गई। उसने अपनी दीदी के मुँह की ओर म्लान दृष्टि से ताक कर एक लम्बी साँस ली।

सातवाँ परिच्छेद

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण

पुण्डरीकाक्ष अपने दफ्तर की नौकरी से इस्तीफा देकर मकान में ही रहने लगा। उसे अपने नये मकान के लिए अनेक आयोजन करने थे, फर्नीचर खरीदकर मकान सजाना था, दफ्तर जाकर दूसरे की नौकरी में अपना समय गँवाने से भला उसका काम कैसे चल सकता था!

पुण्डरीकाक्ष अपना शर्ट और सिल्क का कोट पहन कर अपने नये मकान के सामने इस प्रकार छडी घुमाता हुआ खडा रहता कि लोग उसकी उँगली की बहुमूल्य अँगूठी और घडी देख सकें। वह मेना के मोटर के निकलने पर सतृष्ण दृष्टि से उसकी ओर देखने लगता। वह सोचता, मोटरगैरेज के तैयार होते ही वह अपना निज का मोटर खरीद लेगा और मेना की गाडी के पीछे-पीछे उसे भी दौडाया करेगा। वह राजाबहादुर के समान रोलसरायस कार नही खरीद सकेगा, डेम्मलर अथवा मिनर्वा कार में से कोई एक खरीद लेगा।

जब पुण्डरीकाक्ष का प्रासाद बनकर नित्य नये ऐश्वर्य-सज्जा से विभूषित हो रहा था तब गङ्गानगर के प्रतिष्ठित जमीदार राजाबहादुर राजेन्द्रनारायण रायचौधरी के कलकत्ते के मकान, उनका सब असबाब और रोलसरायस कार के बेचने के उपक्रम में दलाल लगा हुआ था।

एक ओर एक दरिद्र का अभ्युदय और उसके समीप ही दूसरी ओर एक वैभवशाली का नि स्व होना देखकर ही कदाचित् कवि कालिदास ने लिखा था—

जात्येकतोऽस्तशिखर पतिरोपधीनाम्
आविष्कृतोऽरुणपुर सर एकतोऽर्क ।

तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु ।।

अर्थात्--एक ओर ओषधिपति चन्द्रमा अस्ताचलगामी हो रहे है और दूसरी ओर अरुणसारथि सूर्य उदय हो रहे है, पूर्णिमा के प्रभात-काल में दोनो तेजोमय ज्योतिष्को का एक साथ ही पतन और अभ्युदय देखकर लोग अपने दशा-विपर्यय के सम्बन्ध में शिक्षा-लाभ करते है।

एक दिन राजाबहादुर ने अपने कागज़-पत्र का निरीक्षण करते करते देखा कि भास्कर ने कई महीने से अपने वेतन के रुपये लिया ही नही है। यह देखकर उन्होने भास्कर को बुला भेजा और उससे पूछा—बेटा भास्कर, मै देख रहा हूँ कि तुम कई महीने से अपना वेतन नही ले रहे हो। क्या बात है ?

भास्कर ने लज्जित और दु.खित भाव से कहा—आवश्यकता ही नही पडती। आपके मकान मे ही रहता हूँ, खाता हूँ, धुलाई आदि के लिए भी मुझे कुछ खर्च नही करना पडता। ऐसी दशा में रुपयो की मुझे क्या आवश्यकता है ?

राजाबहादुर बोले--तुम्हें अपने कपडो आदि के लिए भी तो रुपयो की ज़रूरत पडती ही होगी।

भास्कर ने अप्रतिभ भाव से उत्तर दिया—मै मासिक पत्रो में लेख लिखता हूँ, उससे प्रतिमास कुछ आय हो जाती है, उसी से मेरा जेब-खर्च चल जाता है।

राजाबहादुर ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा--तुम मासिक पत्रो में लेख लिखते हो ? परन्तु तुम्हारा नाम तो किसी पत्रिका मे शायद मैंने कभी देखा नही।

भास्कर ने लज्जित भाव से उत्तर दिया--अपने निज के नाम से नही लिखता मै। एक छद्मनाम से लिखता हूँ।

राजाबहादुर ने कौतूहल में पड़कर पूछा--तुम्हारा छद्मनाम क्या है ?

भास्कर ने मस्तक अवनत करके उत्तर दिया—शकर शर्मा।

राजाबहादुर प्रसन्न होकर उच्छ्वसित स्वर से कह उठे—ओहो! शकर शर्मा तुम हो! मुझमें और मेना में कई बार बातें हुई है कि यह शकर शर्मा है, बडा सुन्दर लेखक और विद्वान् व्यक्ति है। मै क्या जानता था कि तुम इस प्रकार के छिपे रुस्तम हो! मै मेना से कहूँगा, वह सुनकर बहुत प्रसन्न होगी। वह शकर शर्मा के लेखो की बडी प्रशसा करती है।

भास्कर का मुँह गम्भीर होगया। उसने कोई बात नही कही।

उसे चुप देखकर राजाबहादुर ने कहना प्रारम्भ किया—तब तो तुम अँगरेजी और बँगला के कई पत्रों में लिखते हो। तुम्हारे लेख विलायती नेशन-एथिनियम और स्पेक्टेटर आदि में भी मैंने देखे है। इस प्रकार तो तुम्हें बडी आय होती होगी। परन्तु तुम्हारी आमदनी चाहे जितनी हो, हमारा काम करके तुम उसका पारिश्रमिक क्यो नही लेते बेटा?

भास्कर का मुँह उज्ज्वल हो उठा। उत्तर में उसने कहा—राजा-बहादुर, मनुष्य क्या केवल रुपयो के ही लोभ से काम करता है? रुपया ही क्या सबसे ऊँचा पारिश्रमिक है? मै आप लोगो से जो स्नेह-यत्न और आदर-सम्मान पाता हूँ, वह क्या मेरे लिए अमूल्य उपहार नही है? क्या उसकी कोई तुलना हो सकती है? मुझे तो कभी नही जान पडता कि मै दूसरे के घर में काम कर रहा हूँ। मै यदि अपने पिता की जमीदारी....

भास्कर के मुँह से उसकी असावधानी के कारण अपने पिता की जमीदारी की बात निकली जा रही थी, हठात् स्मरण आ जाने पर वह आधी बात पर ही रुक गया।

परन्तु राजाबहादुर उसकी बात का मतलब भले प्रकार नही समझ सके। उन्होने समझा कि भास्कर यह कहना चाहता था कि यदि

यह जमीदारी उसके पिता की होती और वह उसकी देख-भाल करता होता तो क्या वह अपन काम का पारिश्रमिक ले सकता अथवा उसके पिता ही उसे यह पारिश्रमिक दे सकते अथवा देना चाहते? वह मुझे पिता के तुल्य ही समझता है। ऐसी स्थिति में वह मुझसे पारिश्रमिक कैसे लेगा? इसी लिए उन्होने भास्कर की बात के उपसहार के रूप मे कहा—मै तो तुम्हे अपने पुत्र के समान ही समझता हूँ। यह ठीक है कि तुम्हारा खर्च चला जा रहा है, परन्तु तुम्हारे जो आत्मीय-स्वजन है, उनकी तो तुम्हे कुछ सहायता करनी ही पडती होगी।

भास्कर लज्जित-सा हो उठा। उसके आत्मीय-स्वजनो में तो उसके पिता ही है और वे राजाबहादुर की अपेक्षा न जाने कितने अधिक धनशाली जमीदार है। उनकी जमीदारी ऋणमुक्त और स्वतत्र है। उसने मृदु स्वर और कुण्ठित भाव से उत्तर दिया—नही, मेरा कोई आत्मीय मुझसे किसी प्रकार की आशा नही करता। वे जानते है कि मै अत्यन्त अभाजन और अकर्मण्य हूँ।

राजाबहादुर ने हर्ष और दुःख के उद्रेक मे कहा—तब तो बेटा, उनमे से कोई नही तुम्हे पहचानता, उनकी अपेक्षा मै तुमसे अधिक परिचित हूँ। तुम कितने कर्मण्य और अशेष कल्याणभाजन हो, यह मै अच्छी तरह जान गया हूँ!

भास्कर के मुँह से कोई बात न निकल सकी। वह राजाबहादुर की प्रशसा और उनका स्नेहभाषण सुनकर इतना अभिभूत हुआ कि उसके बाद क्या कहे, यह स्थिर नही कर सका।

ठीक उसी समय उस कमरे में मेना आ पहुँची, जिससे भास्कर को छुट्टी मिल गई। मेना नही जानती थी कि उसके पिता के कमरे में इस समय भास्कर है। वह कमरे मे आते ही भास्कर को देखकर लज्जित होगई और उसी समय अपना स्मित मुँह नीचा करके कमरे से बाहर निकल जाने का यत्न करने लगी।

उसे जाने को उद्यत देखकर राजाबहादुर ने कहा—मेना, आ

बेटी, आ। मै सोच ही रहा था कि तुझे बुला भेजूँ। तू शकर शर्मा के लेखो की वडी प्रशसा करती है न ? मै भी उसे अच्छा लेखक मानता हूँ। परन्तु इस समय भास्कर से मेरा मतभेद उपस्थित होगया है। ये कहते है कि वह अत्यन्त नगण्य लेखक है, वह अत्यन्त अभाजन और अकर्मण्य है। सो मै तो इस डवल एम० ए० से वाद-विवाद में जीत नही सकूँगा बेटी ! तू आगई, यह अच्छा ही हुआ।

मेना कठिनाई मे पड गई। वह किंकर्त्तव्य-विमूढ होकर वही अधलौटी खडी रही। अपने प्रिय लेखक की निन्दा उसके लिए असह्य थी, साथ ही उसके पिता उसे द्वन्द्वयुद्ध में योग देने को विवश कर रहे थे। परन्तु वह किस प्रकार इस अल्पपरिचित भास्कर से वाद-विवाद करने में प्रवृत्त हो सके ? इसी द्विधा-सकट मे पडकर वह लज्जित होगई और सिर नीचा किये चुपचाप खडी रही।

पिता-पुत्री का यह रहस्य देखकर भास्कर मन-ही-मन वडा प्रसन्न हो रहा था, उसका मुँह हँसी की प्रतिभा से उद्भासित हो उठा था, फिर भी वह हँस नही रहा था।

कन्या की लज्जित अवस्था देखकर राजावहादुर वोले—और जानती है मेना, भास्कर वावू इस प्रकार शकर शर्मा की निन्दा क्यो कर सके ? ये ही उस छद्मनाम से पत्रो में लिख रहे है, इसी लिए ये आत्मनिन्दा कर रहे है। भास्कर ऐसा व्यक्ति नही है जो पर-निन्दा करे।

भास्कर ने अपना मुँह उठाकर एक वार मेना के मुँह की ओर दृष्टि-निक्षेप किया। मेना भी उसी समय उसकी ओर देख रही थी। दोनो की आँखें एक दूसरे से मिल गई, दूसरे ही क्षण दोनो ने हँसकर अपनी निगाहें नीची कर ली।

शकर शर्मा भास्कर ही है, उसका प्रिय लेखक उसी का परिचित एक व्यक्ति है, यह जानकर मेना का मन हर्ष से पूर्ण हो उठा। वह अपने इस आनन्द का भाव छिपाने के लिए धीरे-धीरे कमरे से वाहर चली गई।

मेना ने अपने कमरे में जाकर एना से उत्फुल्ल होकर कहा—जानती हो एना, लेखक शकर शर्मा हमारे भास्कर बाबू ही है। ये ही अपना नाम बदलकर इस छद्मनाम से लिखा करते है।

एना ने आश्चर्य से पूछा—ऐ! यह बात है? तुमको कैसे मालूम हुआ दीदी? मालूम होता है कि भास्कर बाबू ने अपना यह छिपा रहस्य चुपचाप तुमसे बतला दिया है।

एना की आँखो में एक प्रकार की परिहास की आभा चमक गई, उसकी आँखें उद्दीप्त हो उठी।

मेना ने उसका ढग देखकर हँसकर कहा—नही भाई, तुझे एकदम हताश करना पड रहा है, तू जिस कवित्व की कल्पना कर रही है वह मेरे भाग्य मे बिलकुल नही लिखा है। मै अभी पिताजी से सुनकर चली आ रही हूँ।

एना ने हँसकर उत्तर दिया—आहा दीदी, तुम्हें तो बडा अफसोस हुआ। ऐसा उत्तम सवाद तुम भास्कर के मुँह से नही सुन सकी? जान पडता है, तुमने पहले ही कही से यह ख़बर पा ली थी, नही तो बताओ कि शङ्कर शर्मा के लेखो के प्रति तुम्हारा इतना पक्षपात होने का कारण क्या है?

जिस समय इस कमरे में मेना और एना मे भास्कर को लेकर यह हँसी-मजाक चल रहा था, उस समय दूसरे कमरे में राजाबहादुर ने एक बात कहकर भास्कर का मन म्लान कर दिया। मेना के जाते ही वे भास्कर से बोले—तुम मुझसे वेतन क्यो नही लेते, यह क्या मैं जानता नही बेटा? तुम सोचते हो कि इस दिवालिये व्यक्ति से वेतन लेकर उसे और अधिक क्यो डुबाऊँ? लेकिन जो व्यक्ति ऋण से बाल-बाल बँध चुका है, उसकी तुम कितनी सहायता कर सकोगे बेटा?

भास्कर ने मलिन मुँह से उत्तर दिया—गिलहरियो ने भी तो सेतुबन्ध में रामचन्द्र की सहायता करने का यत्न किया था, और उनके उस यत्न की रामचन्द्र ने उपेक्षा नही की।

राजाबहादुर ने भी मलिन मुँह से कहा—न बेटा, मैं तुम्हारे स्नेह-दान की उपेक्षा अथवा अवहेलना नही कर रहा हूँ। तुम गिलहरियो की अपेक्षा बहुत अधिक श्रेष्ठ हो और मैं रामचन्द्र की तुलना में कितना निकृष्ट, क्षुद्र हूँ। मैं भला कभी तुम्हारी सहायता का अनादर कर सकता हूँ? परन्तु तुम्हारी यह सहायता किस प्रकार की है, जानते हो बेटा? एक बार भार से लदी हुई एक नाव डूब रही थी, यह देखकर एक स्त्री ने अपनी गठरी उस नाव से उठाकर सिर पर रख ली और उसने नाव का भार कम करना चाहा। तुम्हारा प्रयत्न भी उसी प्रकार वृथा है, यद्यपि उद्देश महत्त्वपूर्ण है। आज मेरी ज़मीदारी के मैनेजर का पत्र आया है। उसने लिखा है कि लगान बिलकुल नही वसूल हो रहा है। पाट की दर बिलकुल घट गई है, रैयत के पास अपने ही खाने-पहनने को नही है, ऐसी हालत में वह ज़मीदार को लागन कहाँ से अदा करे? इस बार सारी ज़मीदारी को विक्रय किये बिना सरकारी मालगुज़ारी देने अथवा ऋणमुक्त होने का कोई उपाय नही है। इस मकान के बन्धक के रुपयो के लिए कल वह मारवाड़ी महाजन आकर कैसा कड़ा तकाज़ा कर गया है, यह तो तुम जानते ही हो।

भास्कर अपना म्लान और विषण्ण मुँह अवनत किये बैठा रहा, कोई उत्तर अथवा आशा-आश्वासन देने योग्य बात उसे ढूँढ़े नही मिली।

इसी समय राजाबहादुर के कमरे के द्वार पर किसी के पैरो की आहट मालूम पड़ी। राजाबहादुर और भास्कर दोनो ने उस ओर देखा। भास्कर किवाड़ की ओर पीठ किये बैठा था। उसने मुँह फिराते ही देखा, मेना उस कमरे की ओर ही आने को थी; परन्तु कमरे में उसे देखकर वह लौटी जा रही थी। भास्कर उसी क्षण जल्दी से उठकर कमरे से बाहर चला गया।

भास्कर को चला गया देखकर मेना ने फिर लौटकर अपने पिता के कमरे में प्रवेश किया। उसने कमरे में आते ही देखा कि उसके पिता का मुँह अत्यन्त म्लान हो गया है, उनकी आँखो में दुश्चिन्ता की घनी

छाया दिखाई पड रही है। वह धीरे-धीरे अपने पिता के पास गई और उनके सिर पर हाथ फेरती हुई स्निग्ध स्वर से बोली—तुम्हारा मुँह इतना विषाद-युक्त क्यो हो गया है बाबू जी ? तुम्हें क्या हो गया है ?

राजाबहादुर ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—कुछ तो नही हुआ है बेटी ! बूढा हुआ, सदा प्रसन्न कैसे रह सकता हूँ ? न जाने कितनी व्यर्थ की दुर्भावनाओ से मन भारी हो जाता है।

जिस प्रकार मा अपने छोटे-से बच्चे को सान्त्वना देने के लिए अपनी कोमल बातो से भुलाकर वास्तविक बात जान लेना चाहती है, उसी प्रकार के भाव से मेना बोली—हम लोग तुम्हारे लडके होते तब तो तुम अपनी चिन्ताओ का भार हमें अवश्य देते पिता ! हम लडकी होकर जन्मी है, इसी लिए क्या तुम हमे दूर ठेलकर रखना चाहते हो ? लडकियाँ एक दिन पराये घर में चली जाती है, इसी लिए क्या लड़कियाँ इतनी पराई है ? मै तो तुम्हे छोडकर कही नही जा सकूँगी। फिर तुम मुझे इतनी पराई क्यो समझ रहे हो ?

मेना की बात सुनकर राजाबहादुर की दोनो आँखें सजल हो उठी। वे विषादमग्न स्वर से कहने लगे—नही बेटी, भला तुम लोगो को मै कभी पराई समझ सकता हूँ ? तुम दोनो ही तो मेरी सर्वस्व हो ! तुम लोग लडकियाँ ठहरी, तुम्हें अपनी चिन्ताओ मे सयुक्त करके अनावश्यक कष्ट नही देना चाहता।

मेना ने कातर भाव से कहा—हम लोग क्या तुम्हारी किसी प्रकार की सहायता नही कर सकती पिता ?

राजाबहादुर अल्पक्षण चुप रहकर, सोचकर बोले—बेटी, जो बात तुम लोग आज नही तो कल दूसरो से सुन लोगी वह चाहे जितनी कठोर हो उसे तुम लोगो से छिपा रखने मे कोई लाभ नही है। अपनी सारी ज़मीदारी और यह मकान बिकने ही को है। मुझ पर जो ऋण लद गया है उससे उन्मुक्त होने का और कोई उपाय नही है। महाजन लोग बडा कडा तकाज़ा कर रहे है।

मेना बोली—यह मैं पहले से ही जानती हूँ; परन्तु तुम्हारे मन को कष्ट होगा, यह सोचकर इस सम्बन्ध में तुमसे, कहते-कहते रुक जाती हूँ।

राजाबहादुर ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा—तू यह बात पहले से ही जानती है? तुझे कैसे मालूम हुई यह?

मेना का मलिन मुँह मेघपूर्ण सन्ध्या में मेघ को फाडकर निकले हुए अस्ताचल पर विराजमान सूर्य की आभा से युक्त आकाश की तरह लज्जा से लाल हो उठा। वह मृदु तथा लज्जित स्वर से बोली—मुझे भास्कर बाबू ने बताया था। आपने हम दोनो बहनो को जो जेवर दिये है और हमारे नाम कम्पनी के जो कागज़ और कैश सार्टिफिकेट खरीदे है तथा हम दोनो के नाम बैङ्क में जो रुपये जमा है, उन सबको एकत्र करने पर प्राय. एक लाख रुपया मिल जायगा। इन रुपयो से कुछ ऋण चुकाकर आप अपने महाजनो को थोडे दिन के लिए तो ठहरा ही सकते है। उसके बाद सावधानी से समझ-बूझकर व्यय कम करने पर सारा ऋण शीघ्र ही अदा कर दिया जा सकता है।

राजाबहादुर ने दुःखित होकर कहा—तुम लोगो को तो मै कुछ दे नही सका। मेरे पास कुछ रहता ही नही है। जब तुम दोनो के विवाह का समय आयेगा तब जाने रुपये सग्रह कर सकूँ या न कर सकूँ, यही सोचकर पहले से ही तुम दोनो के लिए किसी तरह मैने थोडी-सी रकम जमा कर ली है। लोग समझते है कि मै तुम लोगो के नाम बैनामा करके महाजनो को धोखा दे रहा हूँ। इसलिए लोग मेरी निन्दा करते है। तिस पर भी मै विचलित नही होता। तुम दोनो को तो मुझे सत्-पात्र देखकर सौंपना है।

मेना भी दुःखित होकर बोली—यदि तुम्हारी कन्याओ में ऐसा कोई गुण न हो जिसके कारण कोई सत्पात्र उन्हे अपनी इच्छा से ग्रहण करना न स्वीकार करे तो पात्रो को घूँस देकर उनके पल्ले बाँधने की चेष्टा करने मे क्या आपकी लडकियो का अपमान नही होगा? अपनी

कन्याओ की सद्‌गति के लिए आपको रुपये इकट्‌ठा करने की ज़रूरत नही पडेगी। आप स्वच्छन्दतापूर्वक उन रुपयो से अपना ऋण अदा कर दें।

मेना पिता को और कोई बात कहने का अवसर दिये बिना कमरे से बाहर चली गई।

वह अपने कमरे मे जाकर दीवार मे लगा हुआ लोहे का सन्दूक खोलकर ज़ेवरो के ढेर के ढेर और उनसे भरे हुए डिब्बे निकालने लगी। यह देखकर एना ने हँसते-हँसते पूछा—दीदी, ये सब गहने क्यो निकाल रही हो, कहाँ जाओगी? अभिसार मे? परन्तु इतने सब गहने इकट्‌ठे मत पहन लेना, नही तो तुम्हारे ही नूपुर तुम्हारे ही चरणो मे रुनझुन रुनझुन बजेगे!

मेना ने बहन के प्रफुल्ल मुँह की ओर अपना म्लान मुँह फेरकर कहा—पिताजी अपना ऋण अदा करने की दुश्चिन्ता से व्याकुल है। इसीलिए मै उन्हे अपना सब जेवर और रुपया देने जा रही हूँ। इनसे उनकी थोडी-सी भी चिन्ता तो कम कर सकूँगी!

एना का भी प्रसन्न मुँह मलिन हो गया। परन्तु वह उत्साहित स्वर मे कह उठी—दीदी, मुझे भी तो पिताजी ने तमाम जेवर और रुपयो के कागज़ दिये है। मै भी यदि उन्हे वे सब दे दूँ तो उनकी बहुत-सी चिन्ता कम हो जायगी।

मेना का मुँह उज्ज्वल हो उठा। उसने आग्रह के साथ पूछा—तू उन सब वस्तुओ का मोह छोड देगी? तेरे मन मे उससे कष्ट तो नही होगा?

एना के दोनो ओठ अभिमान से फूल उठे। वह भर्राई हुई आवाज़ से बोली—दीदी, पिताजी को क्या तुम्ही अकेली चाहती हो? ये सब धातु-प्रस्तर और कागज़ क्या उनकी अपेक्षा भी मुझे अधिक प्रिय है? तुम मुझे इतनी हृदयहीन समझती हो दीदी!

एना की आँखो से टप-टप आँसू गिरने लगे।

मेना एना की आँखो में आँसू देखकर प्रसन्न हुई। तुरन्त उठकर उसने अपने दोनो बाहुओ से उसे छाती से लगा लिया और उसकी आँखें पोछे बिना, पितृस्नेह से परिप्लावित अश्रुधारा देखती हुई, बोली—तेरा यह त्याग देखकर मै बहुत सुखी हुई एना। तू अभी लडकी ठहरी, इसी लिए मै तुझसे साहस करके कह नही सकी। और इसके अतिरिक्त पिताजी कहते है कि ये ज़ेवर हम लोगो के विवाह में दहेज़ के काम आयेगे, नही तो सत्पात्रो के हाथ हम दोनो को सौपना उनके लिए कठिन हो जायगा ।

मेना ने अपने चुम्बनो मे एना की आँखो के आँसुओ को अपने ओठो मे लगाकर पोछ डाला।

एना बहन के स्नेह-आदर से प्रकृतिस्थ होकर अपनी स्वाभाविक तीक्ष्णता के साथ बोली—जो केवल हमारे दहेज़ के रुपयो के लोभ से दयापूर्वक हमे स्वीकार करके धन्य करने को प्रस्तुत हो, ऐसे धनलोलुप निम्नवृत्ति के व्यक्ति को मै स्वामी के रूप में स्वीकार करूँगी, तुम अथवा पिताजी क्या मुझे पहचानते हुए भी यह बात सोचते है ? क्या मेरा अपना कोई स्वकीय मूल्य नही है ? मुझमे क्या ऐसा कुछ नही है जिसके लिए कोई मेरे ही लिए मुझसे प्रणय-प्रार्थना करेगा ? यदि ऐसा न हो तो क्या मै जीवन भर इसी प्रकार कुमारी नही रह सकूँगी ? तुम स्वय किस साहस पर अपनी सारी सम्पत्ति पिताजी को देने को प्रस्तुत हो ? मैने जो बात कही है, उसी प्रकार की बात क्या तुम भी नही सोच रही हो दीदी ?

मेना ने कहा—ठीक कहती हो भाई ! मै भी ठीक यही बात अभी पिताजी से कहकर आई हूँ। तो चलो, हम दोनो बहनें साथ ही चलकर पिताजी को अपना सर्वस्व देकर प्रणाम करे। पिताजी निश्चिन्त हो जायँ, हम भी उनकी कन्या होने की पात्रता पा सकें।

मेना और एना दोनो ने अपने सब ज़ेवर और रुपयो के कागज़-पत्र आदि चाँदी के दो थालो मे सजा लिया। उसके बाद दोनो एक-एक

थाल अपने हाथो में लेकर अपने पिता के सामने उपस्थित हुई। उन दोनो को देखकर राजाबहादुर की आँखे विस्मय और आनन्द से उज्ज्वल हो उठी। उनके मुँह से कोई बात न निकल सकी। मेना और एना ने अपने पिता के पैरो के समीप दोनो थालो को रखकर प्रणाम किया और उनके पैरो की धूलि अपने मस्तक मे लगा ली। उसके बाद मेना बोली—पिता जी, आपने ये सब खिलौने हम लोगो को दिये थे। अब हम बडी हो गई है, हम दोनो स्वेच्छा से और स्वच्छन्दतापूर्वक इन्हे आपको दे रही है। मै एना की वस्तुएँ नही लेना चाहती थी, परन्तु इससे यह बहुत दुखी हुई। इसके आँसुओ ने मुझे हरा दिया।

राजाबहादुर दोनो हाथो से दोनो कन्याओ को अपने समीप खीच कर बोले—तुम दोनो मुझसे इस तरह स्नेह करती हो बेटी जैसे मा अपने बच्चे को प्यार करती है। बेटी, अब अपने इस बूढे बच्चे को ये सब खिलौने दिये दे रही हो?

राजाबहादुर ने हँसने का प्रयत्न किया, परन्तु उनकी दोनो आँखो से आँसुओ की धारा बह चली। यह देखकर मेना और एना की आँखो से भी आँसू गिरने लगे।

कुछ देर तक चुप रहकर राजाबहादुर भर्राई हुई आवाज से बोले—जाऊँ, भास्कर को यह सुसवाद बता दूँ। उससे हमारा कोई सम्पर्क नही है, तिस पर भी वह हमारी चिन्ता से दुर्बल हो गया है, उसके मुँह से हँसी नही निकलती, उसकी चिन्ताओ का अन्त नही है।

मेना की ओर देखकर एना कुछ मुस्कराई। मेना का मुँह भी आनन्द और लज्जा से उज्ज्वल हो उठा।

राजाबहादुर बोले—आज बृहस्पति के दिन कही नही जाऊँगा। कल जाकर सब महाजनो का थोडा-थोडा रुपया चुका दूँगा। लेकिन बेटियो, तुम लोगो का सर्वस्व लेकर तुम्हे निस्व बनाकर अपनी मान-रक्षा करने मे मेरा हृदय रो उठता है।

एना कह उठी—हम लोगो को आपने दिया था, हम लोग अब

अपनी इच्छा से आपको अपनी वस्तुएँ दे रही हैं। आपने न तो माँगा ही है, न दबाव डालकर ही ले रहे हैं। तब आपके दुखी होने की कौन-सी बात है ?

राजाबहादुर ने कहा—जाऊँ, भास्कर को खबर दे दूँ। वह सुन-कर बहुत खुश होगा।

राजाबहादुर सब जेवरों और कागज़-पत्रों को लोहे के सन्दूक में बन्द करके रखने लगे। मैना और एना प्रसन्न मुख से पिता के कमरे से बाहर निकल आईं। एक महान् त्याग और पितृवात्सल्य का परिचय देने के कारण उनका मन मधुमय हो उठा था।

—

आठवाँ परिच्छेद

राजाबहादुर और पुण्डरीकाक्ष

दूसरे दिन दोपहर को राजाबहादुर स्वय एना-मेना के जेवर लेकर अपने जौहरी हीरालाल ठाकुरदास की दूकान मे जा पहुँचे।

उस समय पुण्डरीकाक्ष भी उसी दूकान पर जाकर अपने लिए सोने के बटनो का सेट और एक स्कार्फपिन खरीद रहा था। वह मारवाडी ढङ्ग की बडे बडे हीरो से जडी हुई सोने की साँकल में गुँथी हुई कमीज़ के बटन, बुलडाग के अत्यन्त कुत्सित मुँहवाली एक पिन और एक चाबुक-सहित सवार के मुँहवाली पिन छाँटकर उन्हे देखने-भालने मे निमग्न था।

जो दूकानदार पुण्डरीकाक्ष को ये सब वस्तुएँ दिखा रहा था वह राजा-बहादुर के दूकान मे प्रवेश करते ही अलग हटकर खडा हो गया। वह आदर-पूर्वक कह उठा—आइए राजासाहब आइए !

कौन-से राजासाहब आये है, यह देखने के लिए पुण्डरीकाक्ष मुँह फेरकर खडा हो गया। उसके गले मे पीडा हो रही थी, इसलिए वह गला फिराकर देख नही सकता था। पीछे की कोई चीज़ देखनी होती तो उसे एक-दम घूमकर खडा होना पडता था। वह अकस्मात् घूमकर खडा हो जायगा यह बात राजाबहादुर नही जानते थे और वे उसके ठीक पीछे खडे थे। पुण्डरीकाक्ष ने घूमते समय अपने पैर से राजा-बहादुर का पैर कुचल दिया। उसने देखा तो सामने श्रीमती मेनादेवी के पिता राजाबहादुर उपस्थित थे। उसने तत्क्षण दाँतो में जीभ दबाकर भूमिष्ठ होकर राजाबहादुर की चरणरज लेने के लिए हाथ बढाया। राजाबहादुर का पैर कुचल देने के कारण लज्जा से और गुरुजन के

सम्मुख अपराध के भय से संकुचित होने पर भी वह यह सोचकर बहुत प्रसन्न हो उठा कि चलो, इस बहाने राजाबहादुर से परिचय और वार्ता करने का सुयोग मिल गया।

पुण्डरीकाक्ष को देखकर राजाबहादुर को ऐसा लगा, मानो यह कोई परिचित व्यक्ति है, इसे उन्होंने अवश्य कही अनेक बार देखा है, परन्तु कहाँ देखा है, यह वे निश्चय न कर सके। ऐसे अत्यन्त अल्प-परिचित व्यक्ति को अपने पैरो की धूलि देने के लिए ज़मीन में अवनत होकर हाथ बढाते देखकर उन्होंने कुछ पीछे हटकर कहा—ठहरिए, ठहरिए, आप यह क्या कर रहे है ? मेरे पैर क्यो छू रहे है !

पुण्डरीकाक्ष राजाबहादुर के पैरो अर्थात् जूतो की धूलि लेकर माथे में लगाता हुआ उठ खडा हुआ और दाँत निकालकर बोला—आप गुरुजन है। आपके पैरो की धूलि क्यो न लूँ ?

राजाबहादुर तो अवाक् रह गये। इस व्यक्ति को वे पहचान नहीं सके, वे किसी प्रकार याद ही नही कर सके कि उन्होंने उसे किस प्रसङ्ग में कब और कहाँ देखा है। परन्तु फिर वह उन्हें गुरुजन कहता है। उन्होंने लज्जित और विस्मित दृष्टि से पुण्डरीकाक्ष की ओर ताककर अप्रस्तुत होकर हँसते-हँसते कहा—मुझे याद नही आ रहा है कि मैंने आपको कहाँ देखा है। बूढा हो गया हूँ, अब सब बाते याद तक नही रख पाता हूँ।

पुण्डरीकाक्ष हर्ष से गद्गद हो उठा। वह राजाबहादुर के समान सम्मानित ज़मीदार के साथ एक ही मकान में उनके सम्मुख खडा होकर बातें करने का अपना परम आकांक्षित सुयोग पा गया और अब उनसे परिचित होने का भी सौभाग्य प्राप्त करने जा रहा हूँ यह समझकर वह आनन्दित होकर बोला—आप मेरे समान साधारण व्यक्ति को कैसे पहचान सकेंगे ? परन्तु मै आपको पहचानता हूँ। कलकत्ते मे ऐसा कौन है जो आपको नही पहचानता ? आप पुण्यश्लोक व्यक्ति है। मैं आपके महल के सामने ही रहता हूँ। वही मेरा घर है।

राजाबहादुर ने कहा——ओह, इसी लिए तो आप जान-पहचान के-से व्यक्ति प्रतीत होते थे। परन्तु कलकत्ता शहर की यही खूबी है कि मकान के सामने के पडोसी को भी पहचानने का कोई सुयोग नही प्राप्त होता। आपका शुभ नाम ?

पुण्डरीकाक्ष ने कृतार्थ और धन्य होकर दाँत निकालकर दीन-विनीत भाव से उत्तर दिया——इस अधम का नाम श्रीपुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड है। मै आपके मकान के फाटक के ठीक सामने के मकान में ही रहता था। इस समय उस मकान को गिरवाकर नये ढग से बनवा रहा हूँ। इसी लिए आज-कल वहाँ से हटकर किराये के एक दूसरे नजदीक के ही मकान मे रहने लगा हूँ। जल्दी ही उस नये मकान मे गृह-प्रवेश करूँगा।

पुण्डरीकाक्ष के मन मे जबर्दस्ती अपने वैभव का परिचय देने का आग्रह देखकर राजाबहादुर हँसते-हँसते बोले——ओह, वह जो सङ्गमरमर का प्रकाण्ड महल तैयार हो रहा है वही आपका मकान है ?

राजाबहादुर को विस्मित देखकर पुण्डरीकाक्ष अधिक उत्फुल्ल होकर बोला——वह क्या महल कहा जा सकता है ? किसी प्रकार बनवाये ले रहा हूँ, जमीन तो थोडी ही है, फिर भी किसी तरह एक साफ-सुथरा मकान बन जायगा। उसका नाम क्या रक्खूँ, आजकल यही सोच रहा हूँ।

राजाबहादुर ने कुछ हँसकर कहा——सोच-विचार कर कोई एक नाम रख लीजिए।

राजाबहादुर पुण्डरीकाक्ष को अपने ऐश्वर्य का अधिक अहङ्कार प्रकट करने का अवसर न देकर दूकानदार से बोले——इन सूटकेसो में कुछ जेवर है, इन्हें आप शीघ्र ही बेच दीजिए। लडकियाँ अब ये सब गहने पसन्द नही करती, इनके बदले मे वे नकद रुपये चाहती है। मै सूची बना लाया हूँ। उससे आप सब वस्तुएँ मिलाकर मुझे एक रसीद दे दीजिए।

राजाबहादुर कर्ज़ अदा करने के लिए अपनी कन्याओ का जेवर बेच रहे थे, इस दीनता की लज्जा को छिपाने के लिए उन्हे जब झूठ

बोलना पडा तव उनका मुँह मलिन हो गया और स्वर अस्पष्ट होकर काँप उठा। पुण्डरीकाक्ष ने यह वात भाँप ली । वह लोगो से अधिक दिनो से यह काना-फूसी सुन रहा था कि राजावहादुर ऋण से लद गये है और ऋण के ही कारण उनकी सारी जमीदारी और मकान विकने ही को है। राजावहादुर के नौकर-चाकरो से पूछ-ताँछकर उसने इस वात की सत्यता भी प्रमाणित कर ली थी। उसकी बुआ जव प्रतिमास मेना के पास सहायता माँगने जाती थी तब उसे भी इस वात का कुछ आभास मिला था, और उसे अपनी बुआ से भी यह वात मालूम हुई थी। आज अपनी आँखो से राजावहादुर को ज़ेवर बेचते देखकर उसका यह सन्देह दृढ और बद्धमूल हो गया। वह इस प्रकार अपने वटन और स्कार्फपिन पसन्द करने में निमग्न हो गया, जैसे राजावहादुर की ओर अव उसका बिलकुल ध्यान ही नही है परन्तु उसका मन और छिपी दृष्टि राजावहादुर की वातो और गहनो की ओर ही लगी थी। राजावहादुर के पीछे वर्दी पहने कई वेयरे और दरवान वडे-वडे सूटकेस लादे खडे थे। उनके आदेश से उन सवने सूटकेसो को एक टेबुल पर रख दिया और एक किनारे खडे हो गये। राजावहादुर ने जेव से चाभियो का गुच्छा निकालकर एक-एककर सूटकेसो को खोल दिया और उनके ढक्कन उठा दिये। पुण्डरीकाक्ष ने छिपी निगाह से देखा कि कुछ सूटकेसो में सोने-चाँदी के वर्तन, इत्रदान, गुलावदान, हुक्के की नलियाँ, सरपोश चम्मच, गिलास, लोटे, थाल इत्यादि और शेष मे सोने-चाँदी और जवाहरात के ज़ेवर है।

राजावहादुर अपने मकान से ही सारी वस्तुओ की दो सूचियाँ वनवा लाये थे। यह देखकर दूकानदार ने कहा—हम लोग इस सूची से मिलाकर ही इनमें से एक सूची में अपने दूकान की सील-मुहर लगाकर हस्ताक्षर किये दे रहे है। यही रसीद वन जायगी। ऐसा करने मे आपको अधिक देर तक ठहरना भी नही पडेगा।

राजावहादुर यत्न से सञ्चय की हुई अपनी अत्यन्त प्रिय वस्तुओं

को सजल नेत्रों से देख रहे थे। उनके मुँह से कोई उत्तर न निकल सका, सिर हिलाकर उन्होने अपनी सम्मति दे दी।

राजावहादुर अपनी वस्तुओ की रसीद लेकर चले गये। जाते समय उन्होने संकुचित होकर पुण्डरीकाक्ष को नमस्कार किया और क्षीण स्वर मे कहा—हम लोग पडोसी हैं और परस्पर परिचित भी हो गये है तो अब कभी कभी भेंट तो होती ही रहेगी।

राजावहादुर मानो कोई दुष्कर्म करते समय पुण्डरीकाक्ष के सामने पकड़ लिये गये हो, इस प्रकार के भाव से सामने खडे होने में हिचकिचाते हुए वहाँ से शीघ्र ही चल दिये। एक अत्यन्त निकट के पडोसी ने उन्हें अपनी सम्पत्ति वेंचते हुए आँखो देख लिया, वह अब इस बात का आस-पास प्रचार कर देगा, अपनी इस लज्जा और अपमान की आशङ्का से वे व्यस्त हो उठे थे। इसी लिए वे पुण्डरीकाक्ष को अधिक शिष्टाचार-पूर्वक यह कह कर बुला तक न सके कि आप किसी दिन मकान पर आने की कृपा कीजिएगा, न यही कह सके कि मै ही किसी दिन आपके घर पर आऊँगा अथवा आपका नया मकान देखने आऊँगा।

राजावहादुर ने दुवारा भेंट करने के लिए नही बुलाया, पुण्डरीकाक्ष को यह समझने में देर न लगी। उसने सोचा कि यह केवल वैभवशाली कुल में उत्पन्न होने का अहङ्कार है। परन्तु भला वह मेना के पिता से कैसे रुष्ट हो सकता था?

राजावहादुर के जाते ही पुण्डरीकाक्ष ने जौहरी से कहा—देखिए, राजावहादुर की सब वस्तुएँ मैं खरीद लूँगा। उन्हें मैं आपको और किसी के हाथ न बेचने दूँगा। मैं अभी बयाना दिये देता हूँ। परन्तु ये सब वस्तुएँ मैं चाहता हूँ, इनमे से एक भी वस्तु और कोई न ले सकेगा। कोई वस्तु दूसरे के हाथ में न चली जाय। आप मूल्य ठीक करके मुझे सूचित कर दीजिएगा। मै आकर खरीद ले जाऊँगा अथवा आपही अनुग्रहपूर्वक इन सब वस्तुओ को मेरे यहाँ भेज दीजिएगा। जो उचित मूल्य हो वही लगाइएगा, उसमें कोई कमी करने की आवश्यकता नही है। ज़ेवर वेंचने

का कमीशन मै ही दूँगा। राजाबहादुर के रुपयो में से कुछ कम न कीजिएगा।

दूकानदार अवाक् रह गया। कुछ ही क्षण पहले राजाबहादुर से उसकी जो बातचीत हुई थी उससे उसे अच्छी तरह ज्ञात हो गया था कि उन दोनो में जान-पहचान तक नही है। फिर भी यह व्यक्ति उनके प्रति इतना दयार्द्र क्यो दिखाई पडता है? दूकानदार अपने विस्मय का उचित कारण न समझ सका। उसने कहा—जो आज्ञा। हम परसो-नरसो आपको इन सब वस्तुओ का मूल्य सूचित कर देंगे और उसी दिन इन्हे आपके यहाँ भेज देगे।

पुण्डरीकाक्ष ने प्रसन्न होकर उसी दम जेब से चेक-बुक निकाला और बयाने के रूप मे पाँच सौ रुपये का एक चेक काटकर दूकानदार के हाथ मे रख दिया। वह इन रुपयो की एक रसीद, खरीदे हुए बटन और पिन लेकर अपने प्रकाण्ड डेमलर कार में जा बैठा।

पुण्डरीकाक्ष ने मोटर खरीद लिया था। वह गैरेज के तैयार होने की राह न देख सका। उसके पास जब रुपया था, जब वह मोटर खरीद सकता था और अपनी गाडी में बैठकर मेना के मोटर का अनुसरण कर सकता था तब वह वृथा समय नष्ट करके इस सुख मे वंचित क्यो रहता? वह नित्य सवेरे अपने मकान के सामने मोटरकार लेकर खड़ा रहता और एना-मेना के निकलते ही उनके मोटर के पीछे-पीछे अथवा साथ ही साथ चलने लगता। तीसरे पहर भी वह एना-मेना के कालेज के सामने धरना देता रहता और उनका मोटर बाहर निकलते ही उसका साथ पकडता। परन्तु वह अपने मोटर मे अत्यन्त गम्भीर और मौन होकर बैठा रहता और मेना की ओर ऐसी छिपी दृष्टि से बीच-बीच में सहसा देख लेता, जिसमे दोनो बहनें उसकी यह चोरी पकड न ले। परन्तु एना-मेना को यह जानने को कुछ बाकी नहीं रह गया था कि उसका मोटर नित्य उनका अनुगमन करता हुआ क्यो चक्कर काटा करता है। उसका यह दैन्य देखकर एना खूब हँसती और इस बात को लेकर

दोनो वहनों में खूव चर्चा भी चलती। परन्तु पुण्डरीकाक्ष को इस वात का ज़रा-सा आभास तक नही था। वह मेना के दर्शन करने और उसके साथ-साथ चल सकने के अधिकार से ही सुखी था। पहले-पहल उसे अपने शोफर से एना-मेना के मोटर का अनुसरण करने को कहने में सङ्कोच मालूम पड़ता था। इसलिए वह मेना के कालेज की तरफ जाते अथवा वहाँ से लौटते वक्त कहता—कार्नवालिस स्ट्रीट पर सीधे चलो अथवा सीधे घर की ओर चलो। इस प्रकार किसी दिन तो वह मेना के आगे निकल जाता और किसी दिन यदि मेना का मोटर दूसरे रास्ते से निकल जाता तो वह उसके पीछे अपना मोटर न कर पाता। अतएव उसने खुद ही मोटर चलाना सीखकर लाइसन्स ले लिया। अव वह अकेले ही वैठकर मोटर चलाने लगा। अव उसे किसी से लज्जित होने या मेना को दृष्टि-पथ से दूर रखना नही पडता था।

भगवान् जव देते है, छप्पर फाडकर देते है। पुण्डरीकाक्ष के मामले में यह उक्ति अक्षरश चरितार्थ हुई। वह तीस रुपये मासिक का वावू था, परन्तु अपना लाटरी का टिकट वेचकर एक दिन में पाँच लाख रुपये पा गया। इतने से ही उसके भाग्योदय की इतिश्री नही हुई। उसके दो भाई थे—एक तो वरमा में व्यापार करता था, दूसरा अमेरिका में सन्यासी था। सयोगवश दोनो का एक ही साथ देहावसान हो गया। वे दोनो अपनी सम्पत्ति का विल भाई और वहन के नाम कर गये थे। दोनो विलो की सूचना पुण्डरीकाक्ष को मिली। अव वह उनका प्रोवेट लेकर उस सम्पत्ति पर अधिकार कर सकता था। वहन अथवा भाई के मर जाने पर एक का अश दूसरे को मिलता है। अतएव पुण्डरीकाक्ष दोनो भाइयो की सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी वन गया।

पुण्डरीकाक्ष समझ नही सका कि वह किस प्रकार इन दूरस्थ देशो की सम्पत्ति का प्रवन्ध करे। इसलिए उसने किसी एटर्नी से इस विषय में सलाह लेने की वात सोची। पहले उसने स्थिर किया कि

किसी अँगरेज एटर्नी से सलाह लेने पर सहज ही काम हो जायगा। परन्तु दूसरे ही क्षण उसे राजावहादुर के एटर्नी सत्यनिधन दे की याद आ गई। उसने सोचा—दे साहब को अपना एटर्नी बनाकर मै समझूंगा कि इस प्रकार मेना से मैंने अपना परोक्ष सम्बन्ध स्थापित कर लिया है।

सत्यनिधन दे के सम्मुख पहुँचकर उसने इस सम्बन्ध में सहायता माँगी। सत्यनिधन ने कहा—आप अपने कागज़-पत्र छोड जाइए, मै कल देख रक्खूँगा। आप परसो-नरसो आइएगा। अमेरिका के कसल से परामर्श लेकर वहाँ का प्रबन्ध कर दूंगा। रगून का केस तो सहज ही हो जायगा। वहाँ मेरे एक भतीजे हाईकोर्ट के एडवोकेट है, वे आसानी से ही प्रोवेट दिला देगे। उन्हे लिख दूँगा।

पुण्डरीकाक्ष सत्यनिधन के कमरे से निकल रहा था। दरवाज़े के समीप ही राजावहादुर से उसकी भेंट हो गई। पुण्डरीकाक्ष ने तुरन्त अवनत होकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी पद-धूलि ली।

राजावहादुर को उसका नाम स्मरण नही रहा था। पुण्डरीक को देखकर उन्होने कहा—ओहो, आप यहाँ कैसे ? कोई काम था ? किसी से मामला-मुकदमा लग गया है क्या ?

पूतितुण्ड की राजाबहादुर से इस दुबारा आकस्मिक भेंट के समय भी उन्हें उसके शरीर का धक्का लग गया। इससे उसने लज्जा और सङ्कोच से घबराकर उत्तर दिया—जी नही, मामला-मुकदमा तो कोई नही है, कुछ सम्पत्ति आदि के विषय में सलाह लेनी थी।

कमरे के भीतर प्रवेश करते करते राजावहादुर के मुँह से केवल इतना निकला—ओह !

बाद को पुण्डरीकाक्ष भी चुपचाप चला गया।

पुण्डरीकाक्ष को अपनी धन-सम्पत्ति आदि के परामर्श के लिए एटर्नी के मकान मे आया देखकर राजावहादुर सोचने लगे—यह व्यक्ति यथेष्ट धनशाली हो गया है, अभी तक उसका मकान बनना समाप्त ही नही हुआ है। ऐसी दशा मे वह यहाँ ऋण लेने के सम्बन्ध

में कदापि नही आ सकता। तब क्या कोई सम्पत्ति मोल लेने के विषय में आया था? यदि यह मेरी जायदाद बन्धक रख लेता तो काम बन जाता, पुराने महाजनो को रुपया पटा दिया जाता और नया कर्ज़ देने के कारण यह जल्दी तकाज़ा भी न करता। इस प्रकार मेरी जायदाद कुछ दिनो तक और सुरक्षित रह जाती। सत्यनिधन से पूछूंगा। शायद वे इसका कोई प्रबन्ध कर सके।

राजाबहादुर ने सत्यनिधन के पास पहुँचते ही उनसे पूछा--भाई सत्य, यह जो व्यक्ति अभी बाहर गया है उसका नाम क्या है?

सत्यनिधन ने उत्तर दिया--पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड। उसे तुम नही पहचानते? उसने तो बताया है कि वह तुम्हारे मकान के ठीक सामने ही रहता है। उसने यह भी कहा है कि तुम्हारा एटर्नी होने के कारण ही वह मेरे पास आया है। वह तुम्हारे मकान के सामने ही अपना नया मकान बनवा रहा है। उसके मस्तिष्क मे कुछ विकार-सा प्रतीत होता है। नही तो इस प्रकार की चमकीली मारवाडी पोशाक कैसे पहनता? कैसी बीभत्स रुचि है इसकी! अवश्य ही कोई देहाती उजड्ड है।

राजाबहादुर ने सत्यनिधन की इन बातो की ओर ध्यान नही दिया। उन्होने अन्यमनस्क होकर पूछा--वह तुम्हारे पास क्यो आया था? उसकी भी दशा क्या मेरी ही-सी है?

सत्यनिधन ने कहा--नही, आदमी वह भाग्यशाली है। परदेश में दो भाई नि.सन्तान मर गये है। उनकी सारी सम्पत्ति इसे मिलेगी।

राजाबहादुर ने पूछा--कुल कितने की सम्पत्ति होगी?

सत्य निधन ने उत्तर दिया--होगी लगभग तीन लाख की।

राजाबहादुर ने पुन. पूछा--क्या मेरी जायदाद उसके पास गिरवी नही रक्खी जा सकती? ऐसा हो जाय तो पुराने महाजनो के तकाज़ो से कुछ दिनो के लिए छुट्टी मिल जाय।

सत्यनिधन ने कहा--उसे तुम बेवकूफ न समझो। फिर भी मैं

उससे कहूँगा कि तुम्हे अपना रुपया तो किसी न किसी काम में इन-वेस्ट करना ही होगा। जमीदारी गिरवी रखना सबसे अधिक सुरक्षित इनवेस्टमेंट है। मै प्रयत्न करूँगा।

राजाबहादुर बोले--देखिए, मैने लगभग एक लाख रुपया इकट्ठा कर लिया है। सोचता हूँ कि इन रुपयो से मकान छुडवा लूँ। और इस वर्ष की सरकारी मालगुज़ारी अदा कर दूँ। तुम क्या कहते हो ?

सत्यनिधन ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा--इतने रुपये तुम कहाँ से पा गये ?

राजावहादुर ने लम्बी साँस लेकर उत्तर दिया--मेरी दुश्चिन्ता से द्रवित होकर एना-मेना ने अपना नकद रुपया और जेवर मुझे दे दिया है। उसमें से कुछ जेवर मैने वेच डाला है।

सत्यनिधन राजाबहादुर के दुख से दुखित होकर बोले--देखो, तुम यदि पुण्डरीकाक्ष-सरीखे धनशाली व्यक्ति से अपनी एक कन्या का विवाह कर दो तो बडा सुन्दर हो। ऐसी स्थिति में उसके पास तुम जो जायदाद बन्धक रक्खोगे उसके रुपये के लिए वह तकाजा न कर सकेगा। साथ ही यदि तुम उसे न छुडा सके तो भी तुम्हें कोई नुकसान न होगा। क्योकि तुम्हारी सम्पत्ति की अधिकारिणी तुम्हारी कन्या ही होगी। यदि यह पुण्डरीकाक्ष तुम्हारा सजातीय और अविवाहित हो तो, एक वार प्रयत्न करके देख लिया जाय। उससे तुम एना का विवाह कर सकते हो। वह वहुत ही धनी है।

राजावहादुर को यह परामर्श पसन्द आया। उन्होने सोचा, पुण्डरीक तो वयस्क हो चुका है। अब तक क्या वह अविवाहित ही होगा? उसकी मुखाकृति हास्योद्दीपक है, एना भी विनोदप्रिय लडकी है। क्या वह पुण्डरीक को पसन्द करेगी ? फिर भी उन्होने यह पता लगाने का मन ही मन सङ्कल्प किया कि पुण्डरीक ने अभी विवाह किया है या नही और यदि अविवाहित है तो वह विवाह करना चाहता है अथवा नही।

राजाबहादुर को मौन देखकर सत्यनिधन ने कहा—इस बात पर विचार करना। मैं भी परसों उससे तुम्हारी सम्पत्ति बन्धक रखकर अपना रुपया इनवेस्ट करने की बात कहूँगा।

राजाबहादुर ने कहा—यदि महाजन लोग तुम्हारे पास तकाजा करने आयें तो उन्हें कुछ दिनों के लिए समझा दीजिएगा। वह सम्पत्ति पा जायगा तब तो मेरी सम्पत्ति लेने में समर्थ हो सकेगा?

सत्यनिधन ने उत्तर दिया—मैं उन्हें समझा-बुझा लूँगा।

दो दिन के बाद पुण्डरीकाक्ष सत्यनिधन दे एटर्नी के यहाँ उपस्थित हुआ और कैलिफोर्निया बैंक तथा रंगून के इम्पीरियल बैंक से अपना रुपया मँगाने और रंगून के लकड़ी के कारखाने को बेचने की व्यवस्था कर आया। कुछ दिनों के बाद उसने अपने भाइयों की सम्पत्ति के प्राय तीन लाख रुपये प्राप्त कर लिये। उसने राजाबहादुर का पूरा ऋण चुका दिया और महाजनों से रुपयों की सही लिखवाकर सारे काग़ज़ लेकर अपने पास रख लिये।

नवाँ परिच्छेद

द्वारमोचन

पुण्डरीकाक्ष का मकान तैयार हो गया। उस मकान को स्वास्थ्यकर बनाने के लिए जो-जो बातें अपेक्षित थी, उन सबकी व्यवस्था एक इजीनियरिंग कम्पनी कर रही थी। एक दूसरी कम्पनी उस मकान मे बिजली की बत्तियाँ और पखे लगवाने जा रही थी। पलँगे, चारपाइयाँ, मेज़, कुर्सी, आलमारी, सोफा और काउच आदि पहुँचाने का ठेका ले लिया था एक तीसरी कम्पनी ने। आर्ट-स्कूल और भारतीय शिल्प-परिषद् से कुछ चित्र भी मँगवा लिये गये थे जो दीवारो पर स्थान-स्थान पर लगाये जा रहे थे। ऐसे ही समय में एक नौकर ने आकर पुण्डरीकाक्ष को इस बात की सूचना दी कि सामनेवाली कोठी के राजाबहादुर मिलने के लिए आये हैं।

पुण्डरीकाक्ष तो मानो एकाएक आकाश पर से ही गिर पड़ा। बाद को तुरन्त ही फिर उसके जी में आया कि मानो मैं दन से स्वर्गलोक के नन्दनवन में पहुँच गया हूँ और वहाँ पारिजात की शय्या पर लेटा हुआ हूँ। मस्तक मे चक्कर आ जाने के कारण गिरते-गिरते सँभल कर वह स्टूल पर से उतर आया, किन्तु जो चित्र वह उस समय टाँग रहा था, वह हुक में अटक कर तिर्छा झूलने लगा। उसे यथास्थान लगाकर ठीक करने का अवसर पुण्डरीकाक्ष को नही मिला। विह्वल भाव से नीचे उतरकर वह राजाबहादुर के पास पहुँचा और उन्हे प्रणाम करके पदधूलि ग्रहण की। किस प्रकार और क्या कहकर उनका स्वागत करना चाहिए, यह निश्चय करने में समर्थ न हो सकने के कारण पुण्डरीकाक्ष ने बहुत ही दीनभाव से कहा—आप आप . स्वय आये हैं ?... मुझे . बुलवा लेना ही काफी था।

राजा वहादुर ने हँसते हुए कहा—तो इसमे हानि ही क्या है? आपको न वुलवा भेजा, स्वय ही चला आया। आप मेरे पडोसी ही तो है। अभी तक हम लोगो की भेट-मुलाकात नही थी, इसने आज तक आना-जाना नहीं हो सका। अव हम लोग एक-दूसरे को जानने लगे है, अव आना-जाना लगा ही रहेगा। अव इस तरह तकल्लुफ करते रहेगे तो काम ही न चल सकेगा।

राजावहादुर की इस प्रकार की सुजनता और अभिमानहीन एव सरल व्यवहार से पुण्डरीकाक्ष कृतार्थ ो गया। परन्तु उस समय भी उसके हृदय मे इस प्रकार के भाव ने अपना आभास दिखला ही दिया कि हाय रे पैसा! पहले भी तो इतने दिनो से मै इन लोगो के पडोस मे रहता आया हूँ। परन्तु किसी ने मेरी ओर दृष्टि तक नही डाली। आज जो यह सगमरमर की कोठी तैयार हो गई है, इसी ने अपनी ऊँची चूडा से इन लोगो की आँखें खोचकर इन्हे इधर ताकने के लिए वाध्य किया है। क्षण भर वाद ही पुण्डरीकाक्ष को यह भी स्मरण हो आया कि हमारे सङ्कट के दिनो मे मेना ने मेरी वुआ की वडी सहायता भी तो की है। राजावहादुर से उसने कहा—अभी तक मै इस मकान को जरा ठिकाने से सजा नही सका हूँ। जहाँ जो चीज पडी है, वही पडी है। आपको वैठालने योग्य कोई आसन भी अभी हमारे यहाँ नही आ सका है, किन्तु यदि ऊपर चलने का कष्ट स्वीकार करे तो आपके वैठने की कहीं कोई व्यवस्था कर सकूँगा।

राजावहादुर ने कहा—चलिए, ऊपर ही चला जाय। मै तो आपका मकान देखने आया हूँ। वैठने तो आया नही हूँ। आप मुझे अपना मकान दिखलाइए। कितना सुन्दर मकान वनवाया है आपने। जैसी इसकी डिजाइन है, वैसा ही सुन्दर वना है यह! वैसी ही उत्तम इसकी सजावट भी है। कैसी अच्छी आर्टिस्टिक रुचि है आपकी। इस मकान का आपने नाम क्या रक्खा है? उस दिन कोई नाम वतला तो रहे थे।

लज्जा से सकुचित होकर हँसते-हँसते पुण्डरीकाक्ष ने कहा—अभी तो हमने इसका नाम मर्मर-मन्दिर रख लिया है। इस नाम से केवल इसी अर्थ का बोध न होगा कि यह सगमरमर का मकान है, बल्कि इसमें यह अर्थ भी छिपा है कि यह मर्म अर्थात्, हृदय का मन्दिर है। कैसा है यह नाम? क्या अच्छा नही है?

पुण्डरीकाक्ष की इस बात से कौतुक का अनुभव करते हुए हँसते-हँसते राजाबहादुर ने कहा—बडा उत्तम नाम है। देखता हूँ कि आपमें कवित्व भी है।

राजाबहादुर के मुँह से इस प्रकार की प्रशसा सुनकर पुण्डरीकाक्ष हर्ष से गद्गद हो उठा। उसने बत्तीसो दाँत बाहर निकालकर कहा—मुझमें भी कवित्व है! मै भी आदमी में कोई आदमी हूँ और मुझमे कवित्व है!

राजाबहादुर ने हँसते हुए कहा—आप तो बडे अच्छे आदमी है, प्रतिष्ठा के पात्र है। किन्तु सुना है कि शायद अभी तक आपका विवाह नही हुआ। अब आप एक गृहलक्ष्मी ले आइए, और अपने इस मर्म के मन्दिर में उस लक्ष्मी की प्रतिष्ठा कर दीजिए।

यह कह देने के लिए कि यदि आप आज्ञा दें तो मै लाकर मेनादेवी को ही इस मन्दिर मे प्रतिष्ठित कर दूँ, पुण्डरीकाक्ष को बडा अच्छा अवसर मिल गया था। परन्तु अन्त तक वह ऐसा कहने के लिए आवश्यक साहस नही सञ्चित कर सका। उसने केवल इतना भर कहा—हाँ, मै विवाह कर सकता हूँ, यदि मुझे रुचि के अनुकूल कोई कन्या मिल जाय। परन्तु कौन मुझे अपनी कन्या देने ही लगा और कौन ऐसी कन्या है जो मुझे पसन्द ही करने लगी।

राजाबहादुर ने कहा—आप यह कैसी बात कह रहे है? आप-जैसा सत्पात्र पाकर तो जिस किसी को भी कन्या का विवाह करना होगा, वही दौड पडेगा। परन्तु आप यदि यह चाहेगे कि अपनी स्थिति और ऐश्वर्य्य के अनुसार ही दहेज भी मिले तब तो शायद बहुतो को ही पीछा खीचना पड़ेगा।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा——मैं कुछ चाहता नही। मेरी केवल इतनी ही कामना है कि मुझे अपनी रुचि के अनुकूल एक गृहलक्ष्मी मिल जायँ। वे ही होगी मेरे गृह की शोभा, मेरे हृदय की ऐश्वर्य्य, मेरे जीवन की सार्थकता और मेरे मर्म की अधिकारिणी।

राजावहादुर ने सन्तुष्ट भाव से कहा——वाह, वाह, यही तो आप-जैसे धनवान् के उपयुक्त वात है। धन-सम्पत्ति तो भगवान् की कृपा से आपके पास वहुत है। कोई उत्तम कुल की सुशील और सुन्दरी पात्री मिल जाय, वस आप विवाह कर लीजिए। वडा उत्तम आपका विचार है, सर्वथा प्रशसनीय है। सुनकर मै वहुत सुखी हुआ हूँ। मेरे भी विवाह के योग्य एक कन्या है। उसके लिए मै वहुत जगह वर खोज आया हूँ। अभी तक अपने मन का कोई पात्र मै पा नही सका हूँ। आप भी कृपा करके एक दिन मेरे यहाँ क्यो नही आ जाते। वहाँ आकर मेरी कन्या से परिचय कर लीजिएगा और देखिएगा कि वह आप-जैसे ऐश्वर्य्यशाली व्यक्ति की योग्य सहधर्मिणी हो सकती है या नही।

राजावहादुर की इस वात से पुण्डरीकाक्ष इतना अधिक सुखी हुआ और इस प्रकार आशा से विह्वल हो उठा कि उसे अपने आपे की सुध न रह गई। नितान्त ही तन्मय भाव मे भूमि पर लोटकर उसने राजावहादुर को प्रणाम किया और उनके चरण की धूलि मस्तक में लपेटने लगा। जिस प्रकार के सौभाग्य की पुण्डरीकाक्ष कभी आशा तक नही कर सकता था, उसे प्राप्त करने की सम्भावना से एकदम से वह अधीर हो उठा और आकुल भाव से कहने लगा——इस प्रकार के सौभाग्य की कल्पना मै कभी स्वप्न मे भी नही कर सकता था कि आप मुझे अपने दामाद के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए निमन्त्रित करेगे। आपकी इस अनुकम्पा के लिए मै आजन्म आपका क्रीतदास होकर रहूँगा।

राजावहादुर ने समझ लिया कि आखिर जन्म भर का दरिद्र ही तो ठहरा, अकस्मात् मिले हुए धन से धनी हुआ है। इसलिए यह आशा होने पर कि एक राजावहादुर की कन्या का पाणिग्रहण करने का सौभाग्य

मिलेगा, इसका इस प्रकार विह्वल होना स्वाभाविक ही है। उन्होने कहा—अच्छा, अच्छा, आप एक दिन आइए मेरे यहाँ। मैं अभी बात पक्की नही कर सकता हूँ। कारण मेरी कन्या भी तो सयानी हो गई है। वह पढी-लिखी भी है। इसलिए अब स्वय उसे भी तो अपने भले-बुरे का ज्ञान हो गया है। वह भी पसन्द करती है या नही, इस बात का ध्यान मुझे रखना ही पडेगा। इस बात की आशा मुझे अवश्य है कि मेरी कन्या मेरी बात टालेगी नही! मैं जिसे भी उसके लिए योग्य वर समझ लूँगा, उसी को वह बहुत ही प्रसन्न भाव से ग्रहण कर लेगी, उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार की आपत्ति करेगी, इस बात की आशङ्का मुझे नही है।

पुण्डरीकाक्ष आनन्द से अधीर होकर सोच रहा था कि राजा बहादुर मेनादेवी के ही साथ मेरा विवाह करने का प्रस्ताव कर रहे है, इसमें सन्देह नही है। बडी कन्या का विवाह किये बिना छोटी कन्या के विवाह की बात कोई नही उठाता। इससे उसके मन में आया कि इतने दिनो तक जिस वस्तु को मै समझता था कि यह कभी मेरे हाथ में नही आ सकती और इसके लिए आशा करना दुराशा है, वही आज घर बैठे दौडकर हाथ में आना चाहती है।

इस प्रकार की घटना यदि कुछ दिन पहले हुई होती तो अवश्य पुण्डरीकाक्ष को उस पर विश्वास न होता। किन्तु आज दिन भाग्यलक्ष्मी एकाएक उससे प्रसन्न हो उठी थी, रोज़-रोज़ उसे बहुत-सा धन दे-देकर धनशाली किये दे रही थी। उन भाग्यलक्ष्मी की प्रेरणा से ही आज राजा बहादुर स्वेच्छा से उसके घर पर दौडे आये और उन्होने उससे प्रस्ताव किया कि तुम मेरी कन्या के साथ विवाह कर लो। अतएव पुण्डरीकाक्ष के लिए यह अनुभव करना स्वाभाविक ही था कि जब मै भाग्यलक्ष्मी को प्रसन्न करके उनकी असीम अनुकम्पा का अधिकारी बन गया हूँ, तब मेनादेवी को भी प्राप्त कर लेने के सम्बन्ध में कोई विशेष सन्देह की बात नही है। इससे हर्ष से विह्वल होकर उसने राजा बहादुर से कहा—बडी देर से यह बात मेरे मुँह पर आ-आकर रह जाती थी कि इस तरह की

एक बहुत बडी दुराशा बहुत दिनो से मेरे मन के एक कोने मे छिपी पडी थी। आज आपने अनुग्रह करके उस दुराशा के सफल होने का सूत्र-पात कर दिया है। अब बात मेरे भाग्य के हाथ मे है। आपका जामाता बनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो या न हो, किन्तु आपका स्नेह-भाजन बनकर तो मै सदा ही रहना चाहता हूँ। इससे आज से आप कृपा करके मुझे 'आप' कहकर न सम्बोधित किया करे। आप जब मेरे लिए तुम शब्द का प्रयोग करना आरम्भ कर देगे तो मै अपने आपको कृतार्थ सम-झूँगा।

राजा बहादुर ने हँसते हुए कहा—तुम मेरे सामने तो लडके ही हो, इससे मै तुम्हारे लिए तुम शब्द का प्रयोग कर सकता हूँ। अच्छी बात है, तुम जब स्वय अनुरोध कर रहे हो तो मै ऐसा ही किया करूँगा। अ यथा साहस नही होता था, क्योकि इस प्रकार के सम्बोधन से कोई कोई लोग अपने आपको अपमानित-सा अनुभव करने लगते है।

यह कहकर राजा बहादुर ठहाका मारकर हँसने लगे। पुण्डरीकाक्ष ने मुँह से कुछ कहा नही, परन्तु उस हँसी मे योगदान किये बिना वह नहीं रह सका। उसकी खुशी उस समय रोके नही रुकती थी।

राजा बहादुर ने कहा—वाह, बडा सुन्दर मकान बनवाया है आपने ? यह तो राजप्रासाद को भी मात करता है। जिस दिन आपका गृह-प्रवेश होगा, उस दिन फिर आऊँगा। तब यह मकान सुसज्जित रूप मे देखने में आवेगा।

पुण्डरीकाक्ष ने जब देखा कि राजा बहादुर को निमन्त्रण देने में मुझे किसी प्रकार का आग्रह करने की आवश्यकता नही पड रही है, वे स्वय अपनी ही ओर से आने का वचन दे रहे है तब उसे इतनी प्रसन्नता हुई कि वह फूला न समाया। उसका हृदय आनन्द से गद्गद हो उठा। कृतज्ञ भाव से उसने कहा—मेरे ऊपर आपकी यह बहुत बडी कृपा है। आप यदि मुझे इस प्रकार का साहस न देते तो मै आपको कभी न निमन्त्रित कर पाता। मेरे-जैसे एक तुच्छ व्यक्ति के घर मे आप-जैसे महान् व्यक्ति

के चरणो की धूलि पडेगी, इस वात की क्या मैं कभी आशा कर सकता था? परन्तु आप अब भी मुझसे 'आप' कहकर ही क्यो बातें कर रहे है?

राजा बहादुर ठहाका मारकर हँस पडे। उन्होने कहा—अच्छा, मै 'आप' कह गया? देखो, आदत ऐसी ही चीज़ होती है। खैर, अब मैं सचेत होकर 'तुम' कहने का अभ्यास करूँगा। परन्तु अब तो तुम मेरे यहाँ आओगे न?

पुण्डरीकाक्ष ने हँसते हुए लज्जित भाव से कहा—किसी ने कहा, भुक्खड, तू भात खायेगा? भुक्खड ने उत्तर दिया—हाथ कहाँ धो लूँ? ठीक यही हाल मेरा है। मै तो आपके यहाँ जाने के लिए कितने दिन से उत्सुक हूँ! अब आप जिस दिन के लिए आज्ञा दें,उसी दिन पहुँच जाऊँ।

राजा बहादुर ने मुस्कराते हुए कहा—तो कल साँझ को पाँच बजे मेरे यहाँ आकर चाय पीना। ठीक है न?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—मैंने चाय पीने की आदत कभी नही डाली। पहले तो मुझे पेट भर भोजन ही नही मिलता था, तब फिर चाय पीने का शौक कहाँ से होता?

राजा बहादुर ने सुखी होकर कहा—तुम चाय नही पीते हो? मै भी नही पीता हूँ। चाय नाम-मात्र को ही रहेगी। बाकी जलपान की और सब सामग्रियाँ रहेंगी। अच्छा, तो अब मै चलूँगा। कल साँझ को जलपान के लिए मेरे यहाँ तुम्हारा निमन्त्रण रहा।

पुण्डरीकाक्ष ने राजा बहादुर को अपने फाटक तक पहुँचा दिया और उनकी पदधूलि लेकर घर में लौट आया। राजा बहादुर की वातो से उसे इतना आनन्द आया था कि वह उनके चरणो के नीचे जितनी देर तक भी लेटा रह सकता, उसे उतनी ही तृप्ति होती।

राजा बहादुर को पहुँचाकर पुण्डरीकाक्ष जिस समय अपने कमरे में आया, उस समय उसके हृदय में आनन्द का बड़े ज़ोरो का ज्वार उठ रहा था।

उसके नेत्रो में आनन्द का रगीन नशा लग गया था। जिस ओर वह दृष्टि डालता, उसी ओर उसे दिखाई पडती मेना के सुन्दर मुख की स्निग्ध किरणो की प्रतिच्छाया। उसे ऐसा जान पडने लगा, मानो उसके मकान की सगमरमर की बनी हुई दीवारो पर मेना के गुलाबी रग के अधर की मधुर हँसी बिखरी पड रही है।

आषाढ का महीना था। आकाश मेघो से आच्छादित था। मेघ भी काले-काले थे। उन्हे देखने पर ऐसा जान पडने लगा, मानो मेना की काली-काली आँखो की अनिमेष दृष्टि समस्त आकाश को आच्छादित किये हुए है। असह्य आनन्द के कारण उसका हृदय फट-कर चार टुकडे हुआ जा रहा था। परन्तु इस आनन्द के साथ ही साथ एक बडा ही कठोर दुख भी था, जो पुण्डरीकाक्ष को उद्विग्न कर रहा था। वह सोच रहा था कि मेना के पास जा तो पाऊँगा, उससे बातें कर सकूँगा, उसके मुँह की बाते सुन पाऊँगा, उसके मुख की मधुर मुस्कराहट देखकर हृदय शीतल कर पाऊँगा। इन सब कारणो से अपने इस जीवन को सार्थक और गौरवमय बनाने का सौभाग्य मुझे मिलेगा, परन्तु इसके लिए अब भी मुझे पूरे चौबीस घटे तक प्रतीक्षा करनी पडेगी। कितना लम्बा समय है यह! घटे भर मे साठ मिनट होते है, तब चौबीस घटे मे? ओह, कितने मिनट होते है! यह तो न जाने कितने मिनट होते है!

पुण्डरीकाक्ष कागज-पेंसिल लेकर बैठा। वह गुणा करके देखने लगा कि चौबीस और साठ का गुणनफल कितना होता है। तभी तो मिनटो का पता लगाना उसके लिए सम्भव था? गुणा करने के बाद एकाएक अधीर भाव से वह बोल उठा—बाप रे, एक हजार चार सौ चालीस मिनट!

पुण्डरीकाक्ष कागज-पेंसिल लिये हुए तो बैठा ही था। उसने हिसाब लगाना बन्द न किया। अब वह यह सोचने लगा कि साठ सेकेंड का जब एक मिनट होता है तब १४४० मिनटो में कितने सेकेंड होगे? फिर

उसने गुणा करना आरम्भ किया। इस बार गुणनफल आया १,८६,४०० एक लाख छियासी हजार चार सौ।

इतने समय तक प्रतीक्षा करके एक-एक क्षण गिनते-गिनते व्यतीत करने के बाद मेना से मुलाकात होगी। उसका अधीर मन चाहता था कि इसी समय दौडता हुआ राजा बहादुर के पास पहुँचे और कह दे कि अब प्रतीक्षा करना मेरी शक्ति से परे है। भोजन करना तो एक बहुत ही तुच्छ और गौण कार्य है। वह किसी दिन भी हो जायगा। परन्तु मेनादेवी से मुलाकात और जान-पहचान आज ही हो जाय तो अच्छा है। किन्तु तुरन्त ही फिर उसके मन मे आया—न, अति सर्वत्र वर्जयेत्। अधिक लोभ करना भी हानिकारक है। बाद को 'बुभुक्षित कि द्विकरेण भुक्ते' सस्कृत के श्लोक का यह चरण भी उसे स्मरण हो आया। उसने सोचा—कवि ने ठीक ही तो कहा है, क्षुधा से पीडित होने पर भी कही कोई दो हाथ से खाता है? मेरे लिए यही उचित है कि मै कल पाँच बजे तक प्रतीक्षा करता रहूँ। अपने अधीर हृदय को सात्वना देने के लिए उसने मेघदूत उठाया और पढना आरम्भ किया—

तिहिं केतकी फूल फुलावनहार
के सम्मुख दास कुबेर गयो।
उर अन्तर में अँसुआ भर के
बडी बेर लो सोचत ठाढो रह्यो।।
चित कण्ठ लगे सुखियानहु कौ
न रहे थिर देखत मेघ नयो।
फिर बात कहा उनकी कहिए
जिन मीत तें दूर बसेरो लियो।।

दसवाँ परिच्छेद

पुण्डरीकाक्ष ने पल-घडी गिनते-गिनते दूसरे दिन का दोपहर तक का समय तो किसी प्रकार बिता दिया, परन्तु बाद को उससे नही रहा जाता था। अपनी आदर्श प्रणयिनी नायिका कमलिनी के समान उस समय वह सोचने लगा कि 'भगवान् ने घडी को सूर्य के अधीन न जाने क्यो कर दिया है ? सूर्य को घडी के अधीन क्यो नही किया ? इस समय यदि घडी की सुई खिसका देने पर ही पाँच बज जाते तो कितने सुख की बात होती ? उस अवस्था में मैं अभी ही दौडता हुआ जाकर मेना देवी को देखने में समर्थ हो पाता। परन्तु इस समय भी चार-पाँच घटे का विलम्ब है। इतना लम्बा समय प्रतीक्षा करते-करते व्यतीत करना पडेगा। ऐसी परिस्थिति में क्या कर्त्तव्य है, यही बात वह व्याकुल भाव से सोच रहा था। अन्त में उसने निश्चय किया कि तब तक यात्रा की तैयारी ही कर लूँ। इसमें थोडा-बहुत समय तो कट ही जायगा, साथ ही एक काम में लग जाने के कारण मन भी बहला रहेगा।

पुण्डरीकाक्ष की सजावट आरम्भ हुई। पहले उसने चन्दन का साबुन लगाकर एक बार खूब मलमलकर स्नान कर लिया। बाद को खूबसूरत किनारे की एक धुली हुई धोती चुनकर पहन लिया। एक जालीदार बनियान पहनी; उसके ऊपर गहरे लाल रग का केला सिल्क का एक कुर्त्ता पहन लिया। कुर्ते के लाल रग के भीतर मे एक सुनहला जुलूस दगदगाता हुआ आग की लपट के समान निकलता था। ऊपर से पुण्डरीकाक्ष ने मुर्शिदाबाद का एक बहुत कीमती रेशम का दुपट्टा गले मे डाल लिया।

उपर्युक्त प्रकार के वस्त्रो के सिवा अलकार धारण करने में भी पुण्डरीकाक्ष ने कम सावधानी नही की। दोनो अगूँठे छोडकर बाकी आठो उँगलियो में उसने जडाऊ अँगूठियाँ पहनीं। ये आठो अँगूठियाँ गढन में एक-दूसरे से भिन्न थी और उन सब में भिन्न-भिन्न प्रकार के रत्न भी जडे हुए थे। बायें हाथ की कलाई मे सोने के पट्टे में बँधी हुई सोने की घडी थी। पैरो में वार्निश किये हुए पम्प शू थे। कुर्ता, दुपट्टा आदि में खूब महमहाता हुआ कीमती इत्र लगा था।

पुण्डरीकाक्ष साज-शृगार में किसी प्रकार की कमी नहीं रहने देना चाहता था। इसी लिए उसने मस्तक पर लवेंडर वाटर लगाकर अपने कडे और बिखरे हुए बालो को बुरुश की काबू में ले आने के लिए यथासाध्य प्रयत्न किया। मूँछो के दोनो ही सिरे लटके हुए थे। उनमें मोम लगाकर ऐठते-ऐंठते उन्हें नोकीले करके सीग के रूप में ले आने के लिए भी उसने बडा प्रयत्न किया। इस प्रकार के तमाम झझट मोल लेने में बहुत-सा समय व्यतीत कर देने के बाद भी जब पुण्डरीकाक्ष ने घडी पर दृष्टि डाली तब केवल चार बजे थे। इधर आषाढ़ के पसीने में कुर्त्ता-धोती आदि तो भीगकर एकदम गीला हुआ जा रहा था। पूरी ताकत से बिजली का पखा खोले हुए वह उसी के नीचे बैठा रहा। हाथ-पैर समेटे हुए शान्त-भाव से बैठे-बैठे वह बार-बार घडी की सुइयो की ओर ताकने लगा। घटे की सुई जैसे-जैसे पाँच के समीप पहुँचने लगी वैसे ही वैसे पुण्डरीकाक्ष की अधीरता बढने लगी, साथ ही साथ उसका हृत्पिण्ड भी पञ्जर के अन्तराल में क्रमश. और जोर-जोर से थिरक-थिरक कर नाचने लगा।

देखते-देखते पौने पाँच बज गये। अब पुण्डरीकाक्ष ने दुर्गा, हरि और सब प्रकार के विघ्नो का विनाश करके सिद्धि देनेवाले गिरिजासुत गणेश का स्मरण किया। मन ही मन इन सबको नमस्कार करके हाथ में छड़ी लिये हुए वह निकल पड़ा। मार्ग में चलते-चलते प्रार्थना

करता जाता था कि हे भगवान्, सर्वशक्तिमान्, मेरी यह यात्रा शुभ हो, मेना के चित्त पर मेरा यह रूप जम जाय। यदि मेरी यह प्रार्थना सार्थक हुई और मै मेना को पसद आगया तो कालीघाट पर वडे ठाट-वाट से पूजा करूँगा। ज़ोर का भडारा करूँगा, प्रत्येक पूर्णिमा को सत्यनारायण की कथा सुनूँगा। देवताओ को घूँस देने की जितनी भी वाते उसे स्मरण आ सकी वे सभी वह उन सबको मन ही मन सुना रखने के लिए इच्छुक था।

इस प्रकार का वनाव-शृगार कर चुकने के वाद नीचे उतरते-उतरते पुण्डरीकाक्ष सोचने लगा कि राजा वहादुर के निमत्रण की रक्षा के लिए पैदल ही चला जाऊँ या अपनी मोटरगाडी पर सवार होकर जाऊँ। सडक पार करने भर का ही तो विलम्व था। सडक के इस पार पुण्डरीकाक्ष का मकान था और उस पार राजा वहादुर का। वडे मज़े मे टहलते-टहलते जाया जा सकता था। परन्तु पुण्डरीकाक्ष को चिन्ता थी कि कही पैदल जाने पर शान मे तो वट्टा न लग जायगा ? कोई यह तो न समझ वैठेगा कि पुण्डरीकाक्ष कृपण है, रईसाना ढग इसमें नही है ? परन्तु उसे स्मरण हो आया कि कल स्वय राजा वहादुर भी तो पैदल चलकर ही उसे निमत्रण देने तथा उसके साथ कन्या का विवाह करने का प्रस्ताव करने आये थे। इससे पुण्डरीकाक्ष ने भी वहुत सोच-विचार करने के वाद पैदल ही जाने का निश्चय किया।

रास्ते भर पुण्डरीकाक्ष की उतावली का ठिकाना न रहा। भूमि पर तो मानो उसके पैर ही नही पडते थे। मानो नौका छूट रही है, उसे पकडने के लिए वह दौडा जा रहा है। इस तरह का ठाट-वाट, इतना कीमती और आँखो को चकाचौध कर देनेवाला भडकीला आयोजन, सव वेकार-सा सिद्ध हो वैठा। राजा वहादुर के द्वार पर पहुँचने पर पुण्डरीकाक्ष भीतर पैर रखने ही वाला था कि पहरेदार सामने खडा होकर उसे रोकते हुए कहने लगा—वावू साहव, मैनेजर साहव की आज्ञा के विना किसी को भीतर जाना मना है।

हाय-हाय, पृथ्वी तुम फट क्यों नही जाती हो? इतनी वडी गगनचुम्बी सगमरमर की अट्टालिका, इतनी अँगूठियाँ और इस तरह का लाल रग का चमचमाता हुआ खूव साफ-सुथरा कुर्त्ता उसके किसी भी काम में न आ सका! स्वय राजावहादुर का इतनी दूर जाकर दिया हुआ आग्रहपूर्ण निमत्रण! वह भी व्यर्थ हो गया किसी एक वेतन-भोगी मैनेजर की एक वात से! राजावहादुर के भावी जामाता का रास्ता रोक दिया गया उन्ही के एक नौकर की आज्ञा के कारण! उसके दुराशारूपी यज्ञ की पूर्णाहुति देने का समय आने पर यह कैसा दारुण दुर्दैव और विघ्न उपस्थित हुआ। अन्त में क्या उसका भी शिशुपाल का-सा ही हाल होगा? वर का वेश वनाकर चले तो विवाह की लालसा से, परन्तु पराजय की लज्जा छिपाने के लिए शायद जाकर घुसना पडेगा घर के भीतर। लज्जा के मारे पुण्डरीकाक्ष का कर्णमूल तक लाल हो उठा।

पुण्डरीकाक्ष के मुँह से कोई वात न निकल सकी। उसे चुप देखकर और यह जानकर कि ये इस सामनेवाले ही मकान के वावू हैं, पहरेदार ने आदरपूर्वक धीमे स्वर से कहा—आपका कार्ड दीजिए, हम तुरन्त हुक्म ले आता है।

हाय हाय! लज्जा पर लज्जा! अभी तक तो पुण्डरीकाक्ष ने कार्ड छपवाया नही। कार्ड छपवाना भी वडे आदमीपन का एक विशेप अङ्ग है, यह वात तो इतने दिनो तक उसके दिमाग में आई ही नही। क्या यो ही यह ऋपि-वाक्य प्रचलित हो उठा है—श्रेयासि वहुविघ्नानि! सफलता के मन्दिर में कितना कडा पहरा है!

पुण्डरीकाक्ष ने ज़रा कुछ सहमते हुए-से कहा—हम तो कार्ड लाया नही!

यह कहकर पुण्डरीकाक्ष लौटने ही जा रहा था कि पहरेदार ने कहा—वावू साहव, आप एक मिनट ठहरिए, हम अभी हुकुम ले के आता है!

पहरेदार फाटक के भीतर चला गया। समीप ही पहरे पर के नौकरो के लिए बनी हुई कोठरियो मे से एक के सामने खडा होकर वह एक दूसरे पहरेदार से कहने लगा—ऐ तिवारी, मैनेजर बाबू को बोलो कि सामनेवाली बाडी का बाबू आये है, भीतर जाने माँगता है।

तिवारी ने खैनी मलते-मलते कहा—अरे कार्ड कहाँ है ?

पहरेदार ने कहा—बाबू कार्ड नही लाया।

तिवारी ने खैनी मुँह में डालकर उसे जीभ से एकत्र करके होठ के नीचे जमा करते-करते अस्पष्ट भाषा में कहा—अरे तब कैसन बाबू ?

तिवारी का यह मन्तव्य पुण्डरीकाक्ष के कान मे एक बहुत ही तीखे उपहास के रूप में विद्ध हो गया। वह मन ही मन कहने लगा—हाय, धरती, तुम फट क्यो नही जाती हो ? यह अपमान तो नही सहन किया जाता।

पुण्डरीकाक्ष जब लज्जा से सकुचित होकर लौटकर चले जाने का ही निश्चय कर रहा था तब उस पर एना की दृष्टि पडी। ऊपर के बरामदे से उसने पुण्डरीकाक्ष को पीछे की ओर फिरते देख लिया। इससे वह सोचने लगी कि पिता जी इन्हे कल निमत्रित तो कर आये, किन्तु पहरेदारो को इस बात की सूचना देने को वे भूल गये, घर मे केवल हम लोगो से ही चर्चा करके वे रह गये। शायद उन्हें इस बात का ध्यान नही रह गया कि अब हमारा द्वार पहले की तरह सबके लिए खुला नही है। भास्कर ने यह आज्ञा दे रक्खी है कि पूछे बिना कोई भी भीतर न जाने पावे। इससे पुण्डरीकाक्ष बाबू फाटक पर रोक लिये गये है। यह सोचकर ऊपर से ही उसने अपनी स्वभाव-सुलभ कोमल वाणी मे जोर से पुकारकर आज्ञा दी—ऐ दरबान, बाबू को आने दो।

एना की ज़ोर की आवाज़ पुण्डरीकाक्ष के भी कान मे पडी। बडी शीघ्रता के साथ वह फिर घूम पडा। बरामदे से हटकर चलती

हुई एना से उसकी देखादेखी हो गई। लज्जित होकर एना ने ज़रा-सा मुस्करा दिया और वह तेजी से पैर बढाती हुई चली गई। पुण्डरीकाक्ष के भी मुख पर मुस्कराहट आगई। उसके मन मे यह बात आई कि सफलता के मदिर में प्रवेश करने से पहले मेरे आन्तरिक आग्रह की एक अग्निपरीक्षा हो गई। मैं तो फेल ही हो बैठा था, किन्तु मेरी रक्षा कर ली श्रीमती एना देवी ने। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं उन्हे आन्तरिक धन्यवाद दूँ।

एना की आज्ञा पाते ही पहरेदार दौडता हुआ आया और बहुत ही विनीत भाव से बोला—जाइए, हुजूर, जाइए।

पुण्डरीकाक्ष आनन्द और गर्व के साथ पैर बढाता हुआ भीतर चला गया। परन्तु उसे मन ही मन भास्कर पर बडा क्रोध आया। उसने सोचा—एक अगडम-बगडम आदमी रास्ते में इस प्रकार रोकवाकर मेरा अपमान करता है।

पुण्डरीकाक्ष ज़रा दूर भी नही बढ पाया था कि एना की बात सुनते ही भास्कर अपने कमरे से निकल आया। आगे बढकर उसने पुण्डरीकाक्ष को नमस्कार किया और बोला—आइए, आइए, स्वागत है आपका।

पुण्डरीकाक्ष ने नितान्त ही निस्तब्ध भाव से भास्कर के नमस्कार का उत्तर दिया। न तो उसके होठ पर ज़रा-सी मुस्कराहट आई और न उसकी जिह्वा को ही क्रियाशील होना पडा। यहाँ तक कि उसने ज़रा-सा हाथ भी नही उठाया। भास्कर की पूर्णरूप से उपेक्षा ही करते हुए उसके साथ-साथ पुण्डरीकाक्ष चलने लगा। मन ही मन वह यह भी कहने लगा—अच्छा, अच्छा, खूब किया आपने! अब अधिक चापलूसी करने की ज़रूरत नही है। काफी भलमनसाहत दिखा चुके है आप।

भास्कर ने यह अनुभव कर लिया कि पुण्डरीकाक्ष मेरी उपेक्षा कर रहा है। इससे उसे ज़रा-सी हँसी आई और मन ही मन वह कहने लगा—हुँ, लक्ष्मी के उल्लू की चोच लग गई है शायद इसे।

मकान के वरामदे पर चढने के लिए वनी हुई सगमरमर की सीढी पर पैर रखते ही राजा वहादुर कमरे से निकल आये और मुस्कराकर पुण्डरीकाक्ष का स्वागत करते हुए कहने लगे—आओ, आओ। मैं इस वात के लिए वडा दु खी हूँ कि दरवानो ने तुम्हे पहचानते हुए भी फाटक पर रोक लिया था। परन्तु इसमें दोप मेरा ही है। मुझे उनसे कह रखने की याद नही रही। इसके लिए तुम वुरा न मानना। मुझसे वडी भूल हो गई। मैंने वडा अनुचित कार्य कर डाला। वृद्ध आदमी हूँ, सारी वाते स्मरण नही रख पाता हूँ। सव ओर से सावधान रहकर कार्य भी नही कर पाता हूँ। मेरी इस अवस्था को ध्यान मे रखते हुए तुम्हें यह वात भूल जानी चाहिए।

राजा वहादुर वारम्वार अपनी भूल स्वीकार करने लगे। ऐसा वे शायद इसी लिए कर रहे थे कि फाटक पर रोके जाने के कारण पुण्डरीकाक्ष के मन मे जो ग्लानि और लज्जा का भाव आया है, वह दूर हो जाय। उनके इस प्रयत्न का उसकी चित्तवृत्ति पर प्रभाव भी अच्छा पडा, उसकी सारी खिन्नता जाती रही। जरा कुछ सकुचित-सा होकर राजा वहादुर से वह कहने लगा—नही, नही, यह कौन-सी ऐसी वात हो गई ? इससे पहले तो मैं कभी आपके यहाँ आया नही हूँ, वे लोग मुझे पहचान ही कैसे सकते थे ?

जिस समय राजा वहादुर पुण्डरीकाक्ष के समीप अपनी भूल स्वीकार करके उसकी अभ्यर्थना कर रहे थे, उसी समय एना मुँह लाल किये हुए दौडती-दौडती, मेना के पास गई और कहने लगी—दीदी, दीदी, कैसा वेढगा काम हो गया !

एना के मुख मे हँसी नही थी, किसी प्रकार की चचलता नही थी, उसके मुख पर और नेत्रो मे एक प्रकार का विपाद का भाव था। इस प्रकार की विपाद की रेखा उसकी आकृति पर इससे पहले और कभी नही दिखाई पडी थी। इसलिए उसकी यह अस्वाभाविक खिन्नता देखकर मेना डर गई। वह व्यग्रभाव से

पूछने लगी--क्या हुआ रे! तू इतना घबराई क्यो है? आखिर बात क्या है?

भौह सिकोडे हुए एना कहने लगी--बडी गलती हो गई। सन्तरियो को यह नही बतलाया गया था कि आज पुण्डरीकाक्ष बाबू आवेंगे, उन्हे कोई रोके नही।

एना की इस बात से कौतुक का अनुभव करती हुई ज़रा-सी मुस्कराहट के साथ मेना ने कहा--तो शायद वे फाटक पर रोक लिये गये थे? फिर क्या हुआ?

एना भौह टेढी किये हुए कहने लगी--तुम हँस रही हो! मै तो लज्जा के मारे धरती मे गडी जा रही हूँ। उनके सामने मै किस तरह मुँह दिखाऊँगी, यह मेरी समझ में नही आ रहा है। सचमुच भला वे हम लोगो के सम्बन्ध अपने मन में क्या कहते होगे? तुम्हारे भास्कर बाबू भी एक चीज़ है! उन्ही की बदौलत तो इस तरह की बात हो गई!

मेना की हँसी की आड मे एक विशेष अर्थपूर्ण कारण छिपा हुआ था। कल पुण्डरीकाक्ष को निमन्त्रित करके लौटने के बाद पिता ने मेना को अकेले मे बुलाकर कहा था--देखो मेना, तुम्हारे लिए तो वर निश्चित ही हो चुका है।

एकाएक पिता को अपने विवाह की बात छेडते देखकर मेना बहुत ही चकित हुई। उसे कुछ तो लज्जा आई और कुछ भय भी हुआ। मुँह लाल किये हुए एक बार पिता के मुँह की ओर ताक कर उसने मस्तक नीचा कर लिया।

राजा बहादुर कहते ही गये--तुम्हारे लिए तो वर खोज ही लिया गया है। अब एना के लिए भी एक वर मिल जाता तो मेरी चिन्ता दूर हो जाती। हमारे मकान के सामने ही पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड नामक जो एक आदमी रहता है, उसने कैसी सगमरमर की कोठी बनवा रक्खी है। एकाएक बहुत-सा रुपया मिल जाने के कारण वह धनवान्

भी हो उठा है। मैंने बहुत जाँच-पडताल करके यह भी मालूम कर लिया है कि उसका स्वभाव और चरित्र आदि भी बहुत अच्छा है। घर में उसके कोई दूसरा आदमी भी नही है। कोई हिस्सेदार नही है। साथ ही कुल भी उसका कोई बुरा नही है। मै समझता हूँ कि उसके साथ यदि एना का विवाह हो जाता तो बडा अच्छा था। लडके की अवस्था ज़रा अधिक हो गई है। परन्तु आजकल के लडके प्राय अधिक अवस्था मे विवाह ही किया करते है। इसके सिवा एना भी तो अब कोई बच्ची है नही कि उसकी जोडी न मिलेगी। परन्तु अब प्रश्न यह उदय होता है कि एना उसके साथ विवाह करना स्वीकार करती है या नही। इसी लिए आज मै स्वय उसके घर पर गया था और कल साँझ को जलपान करने लिए उसे निमन्त्रित कर आया हूँ। लडका वह बडा ही सुशील, शान्त और शिष्ट है। चाय तक वह नही पीता। कल यहाँ आने पर मै तुम लोगो से उसका परिचय करा दूँगा। तुम ज़रा-सा इस बात का ध्यान रखना कि किसी प्रकार उसकी ओर एना का मन खिच जाय। परन्तु एना से अभी विवाह के सम्बन्ध मे कुछ कहना ठीक नही है। अभी तो केवल यह देखना है कि उन दोनो का मनोभाव कैसा होता है। तुम एना से केवल इतना ही कहना कि मै पुण्डरीकाक्ष को कल के लिए निमन्त्रित कर आया हूँ। यहाँ आने पर तुम लोगो से उसका परिचय कराऊँगा और उसके लिए तुम लोगो को तैयार रहना चाहिए। यदि तुमसे हो सके तो खाने की कुछ चीज़े घर मे तैयार कर लेना और बाज़ार से जो-जो ले आना हो, वह भास्कर से कह देना।

मेना चुपचाप पिता की बात सुनती रही, अन्त में उसने कहा—अच्छा। बाद को वह एना के पास गई। उसने कहा—एना, पिता जी ने पुण्डरीकाक्ष बाबू को कल साँझ को जलपान करने के लिए निमंत्रित कर आये है। वे कहते थे कि उसी समय उनसे वे हम लोगो का परिचय भी करा देगे। परन्तु तुझसे मै अभी से ही यह कहे देती हूँ

कि तू कही कल भी कोई पागलपन न कर बैठे। एक भला आदमी अपने घर पर आवेगा, उसका किसी प्रकार का अपमान न कर बैठना।

एना अपनी दोनो आँखें खूब फाड-फाडकर कहने लगी—दीदी, तुम मुझे इतनी नादान समझती हो कि एक भला आदमी हमारे घर पर आवेगा और मैं उसका अपमान कर बैठूंगी ? वे हम लोगो के लिए चार महीने तक सज़ा काट आये है। उनसे तो हम लोगो ने यो ही अपराध किया है। उनकी बुआ के द्वारा अवश्य हम लोगो ने उन्हें अपना धन्यवाद सूचित किया है, परन्तु हमने स्वय तो उनसे कभी कुछ कहा नही। मैं कब से तुमसे यह कहने को सोच रही थी कि पिता जी से कहकर एक दिन उन्हें निमन्त्रित कराओ। परन्तु अब मालूम हुआ कि पिता जी ने स्वय उन्हे निमन्त्रित कर लिया। यह उन्होने बडा अच्छा काम किया है।

मेना अवाक् होकर एना के मुँह की ओर ताकने लगी। यही एना तो है, जो दो दिन पहले कह रही थी न कि दीदी, मैं उससे बातचीत न कर सकूँगी। बातचीत करने लगूँगी तो हँसते-हँसते पेट ही फट जायगा ! इधर कुछ दिन में ही उसमें इस तरह का परिवर्त्तन क्यो और कैसे हो गया !

मेना मन ही मन ज़रा-सा हँसकर कहने लगी—पिता जी कह रहे थे कि एक प्रतिष्ठित व्यक्ति को भोजन के लिए निमन्त्रित किया गया है, इससे खाने की कुछ चीज़े घर मे तैयार कर ली जाती तो अच्छा था। परन्तु महाराज देवता क्या कोई चीज़ ठिकाने से बना सकेंगे ? इससे अच्छा तो यही होगा कि सब चीज़े बाज़ार से मँगवा ली जायँ। ठीक है न ?

एना ने आग्रहपूर्ण स्वर से कहा—छि ! बाज़ार की चीज़ें तो आदमी जब चाहे तब खा सकता है। किसी के घर मे निमन्त्रित होकर खाने जाने में तो उसकी प्रीति तभी मालूम होती है जब कि निमंत्रण-

दाता के घर के लोग स्वयं बनाकर भोजन करावें। वास्तव में इसी तरह भोजन करने और कराने मे आनन्द भी आता है। हम दोनो बहनें आज ही से यदि लग जायँ तो क्या कल साँझ तक सब तरह की खाने की चीज़े तैयार न कर लेंगी? कुछ मिठाइयाँ आज बनाकर रख ली जायँ, कुछ कल सवेरे बन जायँगी। कल दोपहर को कुछ नमकीन चीज़ें तैयार कर ली जायँगी, वे गरमागरम बनी भी रहेंगी।

मेना बड़ी कठिनाई से अपनी हँसी रोकती हुई बोली—अच्छा, तू यदि शान्तभाव से ऊपर का सारा काम सँभालती रहेगी तो मैं सब कुछ तैयार कर लूँगी। तेरे खडी हो जाने पर मुझमे भी साहस आ ही जायगा।

एना ने गम्भीर होकर कहा—खडी क्यो न होऊँगी दीदी? पिता जी एक प्रतिष्ठित व्यक्ति को निमन्त्रित कर आये है और उसे भोजन कराने के लिए आवश्यक तैयारी करने मे मैं योगदान न करूँगी? वह व्यक्ति भी ऐसा वैसा नही है। उसने हमारे लिए जेल की यातना सहन की है!

एना के हृदय मे पुण्डरीकाक्ष के प्रति इस प्रकार का सहानुभूति का सागर उमडा हुआ देखकर मेना को बडा मज़ा आने लगा। उसे लेकर वह उत्साह के साथ खाने की सभी प्रकार की सामग्रियाँ घर ही में तैयार करने लगी। वह प्रसन्न होकर देखने लगी कि जिस एना को मुहूर्त भर भी एक स्थान पर रोक रखना असम्भव हो जाता है, वही चचला एना कैसी एकाग्र निष्ठा के साथ समस्त कार्यों का सम्पादन करने मे लगी हुई है।

बडी रात तक जागती रहकर उन दोनो ने मिलकर तरह-तरह के खाद्य पदार्थ तैयार किये। दूसरे दिन अत्यन्त प्रात काल ही उठकर उन्होने फिर अपना कारबार शुरू कर दिया। एना को ही अधिक उतावली थी। वह बडी तन्मयता के साथ सब काम-काज कर रही थी। दूसरे वक्त पौने चार बजे तक वह मेना के साथ-साथ

काम करती रही। बाद को एकाएक घड़ी की ओर ताककर कहने लगी—दीदी, तुम नौकर-नौकरानियो को लेकर सारा सामान ठिकाने से लगवा दो। मैं अब चलती हूँ। नहा-धोकर ज़रा कपडे-आदि ठिकाने से पहन लूँ, पता नही वे कब आ पहुँचे और पिता जी बुलवा भेजें।

मुँह नीचा किये हुए हँसी छिपाकर मेना ने कहा—हाँ, तू जा, मैं सब ठीक किये लेती हूँ।

चलते-चलते एना कह गई—परन्तु तुम भी अधिक विलब न करना, जल्द ही सब सँभालकर आ जाना। तब तक मैं नहा-धो लेती हूँ।

एना चली गई। मेना हँसती हुई कहने लगी—पिता जी को अधिक कष्ट न करना पडेगा। मेरी बहिन का अभी ही मन खिच गया है। अब वह उच्छृङ्खल नही है, उजड्ड नही है, गँवार नही है। अब वह 'वे' है। एकाएक जो इस प्रकार का परिवर्तन हो गया है, उसका कारण क्या है? यह सगमरमर की कोठी?

एना जब कपडे आदि पहनकर निकली और दीदी के पास आई तब मेना ने देखा कि आज एना ने एक विशेष कवित्वमय ढग से अपना शृगार किया है। एक हलके आसमानी रग की रेशमी साडी जिसमें चाँदी के काम का बना हुआ किनारा बना हुआ था, उसके अङ्ग पर चमचमा कर ऐसी लग रही थी, मानो आषाढ के मेघ पर बिजली चमक रही हो। शरीर पर वह जो ब्लाउज़ पहने हुए थी, उसकी भी कारीगरी देखने ही लायक थी। ब्लाउस के ऊपर सुई से काढकर कदम्ब का एक वृक्ष बनाया गया था। उस वृक्ष पर एक मोर पूँछ फैलाये नाच रहा था। पैरो में वह दिल्ली का बना हुआ लाल रग का सलेमशाही जूता पहने हुए थी। जूते पर ज़री का काम किया हुआ था। वक्ष पर कटक का सोने और चाँदी के काम का तार का बना हुआ एक गुलाब का फूल खोसे थी, जिस पर कि एक तितली बैठी थी। कन्धे के पास एक तारा फूल के ब्रुच से साडी

में बँधा हुआ था। इस प्रकार साज-शृङ्गार करके एना ऐसी मालूम पड रही थी, मानो वर्षा-रानी शृङ्गार किये हुए मनुष्य-शरीर मे आकर स्वय विराजमान हो गई है।

एना को देखने पर मेना के हृदय मे वडी प्रवल इच्छा उत्पन्न हुई कि उसकी खिल्लियाँ उडावे। परन्तु उसने अपने आपको सँभाल लिया। उसने सोचा, एना ऐसी चञ्चल प्रकृति की लडकी है कि ज़रा-सा भी मज़ाक करने पर वह टेढी हो जायगी और फिर शायद पुण्डरीकाक्ष से वह मुलाकात भी न करेगी।

मेना ने खुश होकर कहा—तू आ गई है भाई तो ज़रा खडी होकर देखती रह, तब तक मैं भी कपडे वदल आऊँ।

एना ने अपनी वेश-भूषा को आकर्षक बनाने के लिए वडा ही उद्योग किया था और उसकी वह वेश-भूषा मेना की आँखो मे लग गई थी, इसी लिए मेना वहुत ही सीधे-सादे ढग के कपडे आदि पहनकर आई। उसे इस प्रकार के वेश मे आती देखकर एना ने आँखें माथे पर चढाती हुई विस्मयसूचक स्वर मे कहा—ओ मा! दीदी, यह कैसा तुमने वेश बनाया! किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीना—कालिदास के इस कथन मे कितनी सत्यता है, शायद यही प्रमाणित करके तुम दिखलाना चाहती हो!

मेना हँसती हुई कहने लगी—मैं तो भाई 'बुक्ड' हो चुकी हूँ। मेरे लिए तो कुमीर खाली मुँह वाये ताक ही रहे है। इस पर भी यदि कही दूसरे किसी की भी दृष्टि पर चढ़ गई तो वाद को दो ओर की खीचा-तानी मे पड़कर प्राण देने पडेगे। इससे अच्छा है कि अपना पहले से ही सावधान रहा जाय। ठीक है न? एक कवि ने कहा है कि शृङ्गार और अलङ्कार के कारण सुन्दरी का सौन्दर्य्य और भी मनोरम हो उठता है। तेरे लिए अभी कोई वर नही निश्चित हुआ है। तू अभी फूल का धनुष हाथ में लिये हुए दिग्विजय के लिए निकल सकती है। यदि किसी के हृदय मे गड़ गई तब

तेरे ही द्वारा उसके हृदय का घाव भी पुरेगा, उसकी प्राण-रक्षा भी हो सकेगी।

होठ उलटकर एना ने अवज्ञा के-से स्वर मे कहा---वाह, मुझे गरज पडी है उस उजड्ड के हृदय मे गडने की!

मेना एना के मुँह से फिर उजड्ड नाम सुनते ही चिन्तित हो उठी। एना के मुँह की ओर वह ताकने लगी। किन्तु उसने जब यह देखा कि उसके नेत्रो मे और मुख पर आनन्द की एक दीप्ति खेल रही है, एक कमनीय व्रीडा उसके मुख पर लावण्य का विस्तार कर रही है, तब मेना की सारी चिन्ता जाती रही, मेना सुखी हो उठी।

एना को सावधान करने का-सा भाव दिखलाती हुई मेना हँसकर बोली---किन्तु देखना, कही उस एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के सामने इस तरह के शब्द का प्रयोग न कर बैठना।

एना ने हँसकर कहा---नही, आज यह शब्द मुँह से न निकलने दूँगी। परन्तु मेल-मुलाकात बढ जाने पर भी कभी उनके मुँह पर यह शब्द ज़बान से न निकलने दूँगी, इस बात का शपथ मैं नही कर सकती।

मेना हँसती हुई बोली ---तो शायद मेल-मुलाकात बढाने की भी आकाक्षा मन में पाल रक्खी है तुमने?

एना ने हँसते-हँसते कहा---मुझे ज़रा भी इस बात की आकाक्षा नही है। तुम भी क्या कहती हो दीदी, मेरी बला ऐसी आकाक्षा करने जाय! परन्तु यह कगाल क्या एक ही दिन में सन्तुष्ट होकर लौट जायगा? यदि ऐसी बात होती तो वह रोज़-रोज गिद्ध की-सी गर्दन बढाये मुँह बाये खडा क्यो रहा करता? जिसे इतनी लगन थी कि पानी-बूँदी और गर्मी-सर्दी की ओर जरा भी ध्यान न देकर निमेष भर देख लेने के ही लिए मुँह बाये ताकता रहता था, ज़रा-सी झलक भर देख लेने के लिए जो इस प्रकार असह्य क्लेश सहन करने के लिए तैयार रहता था, क्या वह आज एक दिन में ही तृप्त होकर लौट जायगा?

मेना ने मुस्करा दिया। वह समझ गई कि एना प्रतिदिन ही पुण्डरीकाक्ष का आचरण देखते-देखते और उसकी खिल्लियाँ उडाते-उडाते स्वय भी उसकी ओर आर्कषित हो गई है और आर्कषित ही नही हो गई है, वल्कि उसके प्रति उसके हृदय में अनुराग भी उत्पन्न हो गया है, यद्यपि स्वय एना को भी अपनी इस प्रकार की अवस्था का परिज्ञान नही है। अस्तु, यदि मेरा यह अनुमान सत्य है तो पिता जी की इच्छा आसानी से ही पूर्ण हो जायगी।

मेना की नीरवता की ओर ध्यान दिये विना ही एना अपनी धुन मे कहती गई——मुझसे ज़रा-सा परिचय हो जाने पर उसे थोडी-सी सभ्यता सिखा देनी होगी। उसे यह समझा देने की आवश्यकता है कि इस तरह का आँख पर चोट करनेवाला रगीन कुर्ता पहनने की उसकी अवस्था दस वर्ष पहले भी नही थी। इसके सिवा खूवसूरत वनाकर यह जो मूँछे टेये रहता है, उसे टेढी करके दोनो ओर झुलाये न रक्खे, वल्कि दाढी के साथ ही साथ छिलवा डाले, तव उसका चेहरा अधिक खिलेगा। इसी प्रकार ये जो जुल्फे लटकाये रहता है, उन्हे दो इच ऊपर चढाकर छुरे से साफ करवा डाले तो उसका चेहरा भले आदमियो के वीच मे वैठने के लिए नितान्त अनुपयुक्त न होगा। वहन की इस वात पर मेना जरा-सा हँसकर रह गई।

एना ने कहा——एकाएक नवाव साहव वन गये है न ! अभी तक आये नही। पाँच तो वज रहे है। शायद पैरो का महावर अभी तक ठीक नही हो सका ? वरामदे से ज़रा देखती हूँ कि वावू साहव आ रहे है या नही। यह कहकर हँसती हुई वह वरामदे मे चली गई। बरामदे के जिस स्थान से फाटक के वाहर सडक का थोडा-सा हिस्सा दिखाई पडता है, वही खडी होकर एना पुण्डरीकाक्ष के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी।

कुछ क्षण के वाद ही एना ने देखा कि पुण्डरीकाक्ष अपनी भडकीली

पोशाक पहने हुए घर से निकल पडा। बाद को वह इनकी कोठी के फाटक पर आकर ठमककर खडा हो गया। सन्तरियो से उसकी क्या बातचीत हो रही थी, यह एना इतनी दूर से नही समझ सकी। उसे पुण्डरीकाक्ष पर इसलिए क्रोध आ रहा था कि वह झर्राटे से चला क्यो नही आता। क्या वह वहाँ खडे-खडे दरबान की आज्ञा प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है? यदि उसे इतना भी साहस नही है तो बडे-आदमीपन का भान वह क्यो करता है?

क्षण भर के बाद एना के मन में पुण्डरीकाक्ष के प्रति सहानुभूति का भाव जाग्रत् हो उठा। वह सोचने लगी--बेचारा करे ही क्या? इतने दिनो तक धनवानो के द्वार पर वह सकुचित होता आया है, इससे इसका हृदय भीरु हो उठा है। इसे किसी प्रकार मनुष्य बनाना होगा। यदि यह हमारे घर पर आने-जाने लगे तब तो खिल्लियो की चोट से ही मैं उसे दो दिन मे रास्ते पर ले आ दूँगी।

इसके बाद ही एना ने सन्तरी को दरबान से यह कहते सुना कि पुण्डरीकाक्ष को भीतर जाने देने की आज्ञा मैनेजर साहब से माँग आओ। यह बात सुनते ही तो एना को भास्कर पर इतना क्रोध आया कि वह अधीर हो उठी। इससे पहले पुण्डरीकाक्ष पर उसे जो क्रोध आया था उसके लिए वह मन ही मन बहुत लज्जित हुई। अपनी अवस्था को भूलकर वह क्रोध के कारण तीखे स्वर से चिल्ला उठी--ऐ दरबान, बाबू को आने दो। उसके कण्ठ-स्वर का अनुसरण करके पुण्डरीकाक्ष ने जैसे ही सकरुण कृतज्ञता से भरी हुई, मुस्कराती हुई, दृष्टि से ताका वैसे ही वह लज्जित होकर दौडती हुई दीदी के पास गई और कहने लगी--दीदी बड़ा अनर्थ हो गया।

इधर राजाबहादुर पुण्डरीकाक्ष को लिये हुए ऊपर की बैठक की ओर चले। भास्कर सीढी के नीचे से ही खिसका जा रहा था, यह देखकर राजाबहादुर ने कहा--भास्कर, तुम भी आओ।

वाद को पुण्डरीकाक्ष की ओर मुँह फेरकर उन्होने कहा––इनका नाम श्रीमान् भास्कर राय हैं। ये मेरे प्राइवेट सेक्रेटरी है।

भास्कर की ओर देखे विना ही पुण्डरीकाक्ष ने कहा––हाँ, इन्हे मै जानता हूँ। इनसे मेरा परिचय है।

पुण्डरीकाक्ष का भाव देखकर भास्कर ने समझ लिया कि यह मेरी उपेक्षा करना चाहता है। इससे उसने मुस्कराकर राजावहादुर से कहा––मुझे जरा-सा काम है, इससे अभी ही वाहर जाना होगा। सीढ़ी पर चढते-चढते राजावहादुर वीच ही में रुक गये। वहाँ से मुँह फेरकर नीचे की ओर ताकते हुए उन्होने भास्कर से कहा––तो हम लोगो के साथ जलपान कर लेने के वाद जाने में क्या कोई हानि होगी?

भास्कर ने धीर किन्तु दृढतापूर्ण स्वर से कहा––क्षमा कीजिए, अव रुकने का अवसर नही है।

राजावहादुर ने और कुछ नही कहा––पुण्डरीकाक्ष को लिये हुए वे ऊपर चले गये।

वैठक में पहुँचते ही राजावहादुर ने खानसामा से कहा–– घनश्याम, जाकर दीदी रानी आदि से कहो कि पुण्डरीकाक्ष वावू आये है।

राजावहादुर की वैठक विलायती कायदे से सजी थी। फर्श पर वढिया कीमती दरी विछी हुई थी। दरी के ऊपर सोफा, काउच, लाउञ्ज, चेयर आदि चारो ओर सजी हुई थी। दरी के ऊपर दोनो वग़ल वाघ के दो चमडे विछे हुए थे। वे मरे हुए वाघ अपनी चम-चमाती हुई आँखो तथा मुँह के वाहर निकली हुई दाँतो की पक्ति लिये हुए आगन्तुको की अभ्यर्थना कर रहे थे। कोने-कोने मे सग-मरमर की तिपाइयो पर प्रिचेरिया पाम और फैन पाम के वृक्ष रक्खे हुए थे। वे वृक्ष पीतल के सुन्दर सुडौल टवो मे लगे थे। वे टव भी व्रासो से मँजे होने के कारण सोने की तरह चमचमा रहे थे। कमरे

के बीच मे सफेद पत्थर का एक टेबिल था। टेबिल पर बीचोबीच में मुरादाबादी बिदरी के काम की पीतल की एक बड़ी-सी फूलदानी थी। उस फूलदानी के दोनो बगल दो फूलदानियाँ चाँदी की थी। उन दोनो मे तरह-तरह के बरसाती फूल सजे हुए थे। तीनो फूलदानियो के बीच मे ढाका की दो कामदार रिकाबियो में तरह-तरह के सुगन्धित फूल रक्खे हुए थे। दीवाल की बगल-बगल जो चेयर, सोफा, काउच आदि रक्खे हुए थे, उनके बीच-बीच मे छोटे-छोटे टेबिलो पर और पाम के टबो के किनारे-किनारे काशी के पीतल के मुर्शिदाबाद के हाथी-दाँत के और कृष्णनगर के मिट्टी के खिलौने सजाकर रक्खे हुए थे। कमरे के बीच में जो टेबिल रक्खा था, उसके पास-पास दो टेबिल और थे। उन दोनो पर काशी की बड़ी-बड़ी कामदार थालियाँ लगी थी। उन थालियो के ऊपर काँच के पावे के अर्द्ध-गोलको में भिन्न-भिन्न रगो की मछलियाँ सब्ज सैवाल के बीच-बीच में खेलती हुई तैरती-फिरती थी। दीवार पर विलायत के उच्च कोटि के चित्रकारो के अङ्कित किये हुए चित्रो के फोटो टँगे थे। चीन-जापान के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न देशो के नये चित्रकारो के भी अङ्कित किये हुए चित्र टँगे थे।

पुण्डरीकाक्ष चारो ओर दृष्टि दौड़ा-दौड़ाकर देख रहा था कि सदा से सजे हुए इस कमरे की सजावट देखकर अपनी नवीन गृहसज्जा का कोई दोष दूर किया जा सकता है या नही। इतने मे उस कमरे में आकर प्रवेश किया मैना ने। उसके साथ ही साथ एना भी आ पहुँची।

कमरे में मनुष्य के प्रवेश करने की आहट मिलते ही पुण्डरीकाक्ष ने चकित होकर जैसे ही मुँह फेरा, उसने देखा कि इतने दिनो की उसकी स्वप्न की-सी कल्पना, जिसे वह दुराशा समझे बैठा था, आज मनुष्य-वेश में उसके सामने आकर उपस्थित हो गई। देखते ही उसके शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। चौंककर कुर्सी से वह उतावली के साथ उठ खड़ा हुआ। उस समय पुण्डरीकाक्ष की वही दशा थी जो कि अन्त्यज जाति

के दीनात्मा भक्त की किसी देवप्रतिमा के सम्मुख पहुँचने पर होती है। जिस प्रकार देवमूर्ति के सम्मुख खडे होने पर भाव-विह्वल भक्त की दृष्टि में भक्ति, भय एव सम्मान का सम्मिश्रण होता है, ठीक उसी प्रकार की दृष्टि से पुण्डरीकाक्ष भी मेना की ओर ताकता रहा। उसे आगन्तुक महिलाओ से नमस्कार तक करने का ध्यान न रह गया।

मेना का मुख अत्यधिक गम्भीरता से उज्ज्वल था और एना का मुख लज्जा के कारण उत्पन्न हुई मुस्कराहट से देदीप्यमान था। उन दोनो ने कमरे मे आने पर वडे ही सौजन्यपूर्ण ढग से पुण्डरीकाक्ष की ओर मुँह किये हुए उसे नम्रतापूर्वक नमस्कार किया। यह देखकर पुण्डरीकाक्ष को भी चेतना हो आई। उसने भी मेना की ही ओर ताकते हुए जो नमस्कार किया वह प्राय प्रणाम के ही समीप तक पहुँच गया।

राजावहादुर ने कहा—यह मेरी वडी कन्या मेना है और यह छोटी कन्या एना! और ये पुण्डरीकाक्ष वावू है।

ऐसे अवसर पर क्या करना या क्या कहना उचित है, पुण्डरीकाक्ष यह न निर्णय कर सका। इससे उसने वहुत ही झुके हुए माथे से जुडे हुए दोनो हाथ भिडाकर फिर नमस्कार किया। मेना ने भी अपना मस्तक ज़रा-सा झुका लिया। एना न जाने कैसी एक अकारण लज्जा से लाल हो उठी।

पुण्डरीकाक्ष ने देखा कि ये दोनो नवयुवतियाँ जिस किसी भी अङ्ग का सचालन करती है उसी मे इनकी कुलीनता की, मर्य्यादा की, छाप होती है। ये कैसे प्रतिष्ठित वश की कन्यायें है, इस वात का स्निग्ध परिचय इनके क्रिया-कलाप से यो ही चारो ओर विखरा पडता है।

राजावहादुर ने कहा—इन्होने ऐसा वढिया मकान वनवाया है मेना कि तुम लोग देखती तो अवाक् हो उठती।

पुण्डरीकाक्ष लज्जा से सकुचित होकर मेना की ओर ताकते-ताकते अस्पष्ट स्वर में क्या-क्या कह गया, यह कोई समझ ही न सका।

राजावहादुर ने कहा—मैने अपनी कन्याओ से सुना है कि तुम्हें

पुलिस मे उनकी रक्षा करने का प्रयत्न करने पर चार मास तक कारागार की यातना भोगनी पडी है। यह समाचार तो पहले मुझे मिला नही था। आज मैंने सुना है। यह तो तुम्हारी वहुत वडी महत्ता है।

पुण्डरीकाक्ष अपनी प्रशसा सुनकर सङ्कोच का-सा भाव दिखलाते हुए कुछ कह गया, परन्तु उसका एक अक्षर भी किसी की समझ में न आया।

राजावहादुर ने पूछा—तुम मेरी कन्याओ को किस प्रकार पहचान सके ?

राजावहादुर के मुँह मे इस प्रकार का प्रश्न निकलते ही एना खिलखिलाकर हँस पडी। मेना ने चुटकी काटकर उसे इस वात का इशारा किया कि वह अपनी हँसी रोक ले। परन्तु मुख पर गम्भीरता का भाव लाकर अपनी हँसी रोकने का प्रयत्न करते समय वह एक अद्भुत अस्पष्ट शव्द करने लगी।

एना को हँसती देखकर पुण्डरीकाक्ष सहम गया। वह कुछ वोल नही सका, चुपचाप ही वैठा रहा।

राजावहादुर ने कहा—तुम हम सव लोगो को पहचानते थे, परन्तु मै तुम्हे नही पहचानता था। यह मेरी वहुत वड़ी भूल थी जो कि मैंने कभी तुम्हे पहचानने का प्रयत्न नही किया।

राजावहादुर की यह वात सुनकर पुण्डरीकाक्ष फूलकर गद्गद हो उठा। हँसते हुए विनम्रतापूर्वक कोमल-स्वर से उसने कहा—आप लोग मेरे जैसे नगण्य व्यक्ति को किस प्रकार पहचान सकेगे ? मुझमें तो कोई ऐसा गुण है नही, जिसके कारण मै किसी के लक्ष्य का विषय हो सकूँ।

एना ने मन ही मन कहा—गुण हो या न हो, इस तरह का तडक-भडक का रूप तो है जो आँखो पर चोट करके आपको दूसरो के लक्ष्य का विषय वनाता है।

एना हँसती-हँसती उठकर बाहर चली गई। राजाबहादुर ने कहा—इसी लिए तो तुम्हारे प्रति हमारी कृतज्ञता और भी अधिक है।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—कृतज्ञता किस बात के लिए है? मैंने इन लोगो की रक्षा करने की इच्छा भर की थी, रक्षा कर तो सका नही। परन्तु मै आप लोगो का अत्यन्त ही अधिक आभारी हूँ। मै जिन दिनो में सजा भुगत रहा था, उन दिनो में मेरी बुआ के भोजन का कोई ठिकाना नही था, वे भूखो मर रही थी। ये लोग उन्हे बुलाकर प्रतिमास रुपया-पैसा और कपडा आदि दिया करती थी। यह ऋण तो मुझसे किसी प्रकार भी नही चुकाया जा सकता।

पुण्डरीकाक्ष की यह बात सुनकर राजाबहादुर आश्चर्य्य में पड गये। उन्हे तो कोई बात मालूम थी नही। विस्मयपूर्ण और जिज्ञासा-मयी दृष्टि से वे मेना की ओर ताकने लगे। पुण्डरीकाक्ष की इस बात से मेना भी सकुचित हो उठी। कन्या का इस प्रकार का भाव देखकर तथा उसकी दयालुता और परोपकारशीलता का परिचय पाकर वे बहुत सुखी हुए। प्रसन्नभाव से उन्होने कहा—तब तो हम लोगों का दोनो ही ओर से आत्मीयता का सम्पर्क स्थापित हो चुका है। अच्छी बात है, बहुत अच्छी बात है।

हँसी रोककर आँख-मुँह लाल किये हुए एना कमरे में लौट आई। दबाई हुई हँसी की चमक उसके अङ्ग-अङ्ग में उस समय भी लगी हुई थी। उसे देखते ही मेना ने कहा—एना, क्या भोजन परोसा गया है?

मेना के पास बैठती-बैठती एना ने मस्तक हिलाकर कहा—हाँ, परोसा जा रहा है।

राजाबहादुर ने कहा—मेना, तुम जाकर देखो, विलम्ब हो रहा है अब।

मेना को उठकर जाती देखकर पुण्डरीकाक्ष ने व्यस्त होकर कहा—नही, नही। आप बैठिए, भोजन के लिए इतनी उतावली करने की

कौन-सी बात है? वह सब होता रहेगा। सारा प्रबन्ध हो जाने पर नौकर लोग स्वय सूचना देंगे।

मेना उठकर खडी थी। दूसरो की आँखें बचाकर उसका हाथ पकडकर नीचे को ज़रा-सा खींचती हुई एना ने उसे बैठने का इशारा किया और वह स्वय हँसी से भरा हुआ एक कटाक्ष मेना के मुख पर मारकर उठकर चलती बनी।

पासवाले कमरे से तत्क्षण ही लौट आकर एना ने कहा—भोजन परोसा जा चुका है।

राजाबहादुर ने उठते-उठते कहा—चलो पुण्डरीकाक्ष।

राजाबहादुर के साथ ही साथ पुण्डरीकाक्ष और मेना, दोनो ही उठकर खडे हुए।

राजाबहादुर आगे की ओर बढे। किन्तु पुण्डरीकाक्ष ने उनका अनुसरण नही किया। वह तटस्थभाव से खडा-खडा मुग्ध दृष्टि से मेना की ओर ताकता रहा।

उसे इस प्रकार खडा देखकर मेना को सङ्कोच हो रहा था। उसने कोमल स्वर से अनुरोध किया—चलिए।

पुण्डरीकाक्ष ने बहुत ही सम्मानपूर्वक कहा—आगे-आगे आप चलिए।

मेना ने सोचा कि इनकी बात काटना अच्छा न मालूम पडेगा, इससे वह चल पडी। पुण्डरीकाक्ष उसके पीछे-पीछे चला।

पिता के समीप पहुँचकर मेना ने कहा—बाबू जी, भास्कर बाबू को नही बुलाया आपने?

राजाबहादुर ने कहा—भास्कर न आवेगा। उसे तो हम लोगो ने निमन्त्रित किया नही। हम लोगो ने सोचा था कि वह तो हमारे यहाँ प्रतिदिन ही भोजन किया करता है, आज भी करेगा। परन्तु आज भोजन की विशेष प्रकार की व्यवस्था की गई है। एक बाहरी आदमी के साथ में भोजन करना है। हम लोगो का कर्त्तव्य था कि आज

हम उसे नियमित रूप से निमन्त्रित करते। हमने यह बहुत बडी भूल कर दी है।

मेना का मुख म्लान और गम्भीर हो उठा। वह और कुछ नही बोली।

पुण्डरीकाक्ष ने पासवाले कमरे में जाकर देखा तो एक बडे से अडे के आकार के सगमरमर के टेबिल पर भोजन परोसा गया था। उस टेबिल के ऊपर चाँदी की तश्तरी, कटोरी और गिलास आदि का तो मानो ढेर लगा दिया गया था। एक तश्तरी मे नमकीन भोजन था, एक तश्तरी में मिठाइयाँ थी और एक में आम, जामुन, कटहल आदि फल थे। इसी प्रकार एक तश्तरी में काबुली मेवे और विदेशी फल सजाकर रक्खे हुए थे। कटोरियो मे से किसी-किसी में तरकारियाँ थी, किसी में मास-मछली थी, किसी मे रबडी थी, किसी में दही था, किसी में खीर थी। गिलासो में तरबूज और दही का शरवत था, केवडे से सुवासित किया हुआ जल था। वर्फ की ठढक के मारे गिलासो मे हाथ तक नही लगाया जाता था।

राजावहादुर जाकर टेबिल के एक किनारे पर बैठ गये। उनकी दोनो कन्याये टेबिल के दोनो ओर आमने-सामने बैठी। राजावहादुर के सामने बैठा पुण्डरीकाक्ष। मेना की बगल मे एक कुर्सी खाली पडी रही। उस कुर्सी के सामने जो भोजन-सामग्री सजाकर रक्खी हुई थी, वह भी पडी रह गई। वह आसन लगाया गया था भास्कर के लिए। मेना तो यह बात जानती नही थी कि वह आवेगा नही।

भोजन के समय बात छिडी देश की वर्त्तमान अवस्था के सम्बन्ध की। राजावहादुर ने बात ही बात में पुण्डरीकाक्ष से अपने जेल के अनुभव बतलाने को कहा। बेचारा पुण्डरीकाक्ष अभी तक इसी चिन्ता में पडा था कि किस प्रकार की बात छेडी जाय। इतनी देर के बाद उसे एक विषय मालूम हो गया, जिसकी चर्चा की जा सकती थी, इससे पुण्डरीकाक्ष ने बडी ही शान्ति का अनुभव किया। जेल के सम्बन्ध में

उसने जो कुछ अभिज्ञता प्राप्त की थी, उसका वह उत्साहपूर्वक वर्णन करने लगा।

बातचीत करते-करते भोजन समाप्त हो गया। राजाबहादुर ने कहा—तुमने तो कुछ खाया ही नही। ये सारी खाद्य सामग्रियाँ घर में ही लडकियो ने बनाई है। क्या ठीक नही बनी ?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—जरा-सा मुँह में डालते ही मैंने समझ लिया था। किसी हलवाई के बाप को भी इतनी सामर्थ्य नहीं हो सकती कि वह इस तरह की चीजे तैयार कर दे। इसके स्वाद मे इस तरह का माधुर्य्य है कि केवल देवता ही लोग अमृत का आस्वादन करते समय इसका अनुभव कर सकते है।

पुण्डरीकाक्ष की कवित्वमय प्रशसा सुनकर राजाबहादुर भी हँसे, मेना भी हँसी और एना भी हँसने लगी।

राजाबहादुर ने कहा—परन्तु तुम अभी ही न जाने पाओगे। तुम बैठे-बैठे लडकियो से बातचीत करो, तब तक मै सन्ध्या-पूजा आदि से निवृत हो आऊँ।

पुण्डरीकाक्ष को लडकियो के साथ अकेले रहने का अवसर देने के लिए राजाबहादुर इस बहाने से उठ गये। उनके उठकर जाते ही मेना ने कहा—एना, तुम इन्हे ले चलकर बैठक मे बैठालो, मै तब तक बाबू जी के सन्ध्योपासन-आदि का आयोजन कर आऊँ।

अब एना और पुण्डरीकाक्ष अकेले रह गये। पहले कुछ क्षण तक दोनो ही नीरव थे, किसी के मुँह से कोई शब्द नही निकला। एना इस ताक मे थी कि पहले पुण्डरीकाक्ष बोले और पुण्डरीकाक्ष इस ताक में था कि पहले एना बोले। इसके सिवा वे दोनो इस चिन्ता मे भी थे कि बोलूँ भी तो क्या बोलूँ ? परन्तु अधिक समय तक इस तरह मौन रहना भी अच्छा नही मालूम पड रहा था, इससे पहले एना का ही कण्ठ खुल गया। उसने कहा—आपसे हम लोगो को क्षमा माँगनी है ?

मेना के न होने के कारण पुण्डरीकाक्ष इस समय बहुत अच्छी तरह

से और सरलतापूर्वक साहस करके वातचीत कर सकता था। एना की इस वात के उत्तर मे रहस्यपूर्ण स्वर मे उसने कहा——क्या? क्षमा किस वात के लिए माँगती है? आपने अपराध कौन-सा किया है?

मस्तक नीचा किये हुए कुण्ठितभाव मे एना वोली——दरवान ने आपको फाटक पर रोक रखा था।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा——यह तो उसने अच्छा ही किया था। इससे इस वात की परीक्षा हो गई कि इस भक्त की भक्ति कहाँ तक अटूट है। देवी के मन्दिर मे दीन भक्त का प्रवेश क्या कभी विना रुकावट के हो सकता है?

एना का सकोच दूर होता जा रहा था पुण्डरीकाक्ष की कवित्वमय प्रशसा और हास्य सुनकर। उसने अपना झुका हुआ मस्तक उठा लिया और वोली—आपका इसलिए भी हमारे ऊपर वहुत वडा कृतज्ञता का भार है कि आपने हमारे कारण कई महीने तक जेल की यातना सहन की है।

पुण्डरीकाक्ष ने मुस्कराते हुए कहा——यह भी तो मेरे लिए परम सौभाग्य की वात है। तपस्या किये विना क्या मनुष्य कभी देवी की प्रसन्नता प्राप्त कर सकता है? भाग्य की ही वात थी कि पुलिस के चगुल में फँस गया था मैं। इसी कारण मेरी वुआ को आप लोगो के द्वार पर आने के लिए वाध्य होना पडा और देवी की कृपा-दृष्टि भी मेरी ओर दौड पडी। यदि ऐसा न होता तो मैं आप लोगो के लिए सदा अपरिचित ही वना रह जाता।

एना ने हँसकर कहा——नही, यदि ऐसा न होता तो क्या हम लोग आपको पहचानते ही नही थे?

एना की वात दोहराते हुए पुण्डरीकाक्ष ने कहा——ठीक कहती है आप? 'एना' की दृष्टि पहले भी मुझ पर पडी थी। तभी तो शायद आज एणाक्षी का करुणा-कटाक्ष-पात होने के ही कारण भयकर

द्वारपालो की बाधा ठुकराकर देवी के मन्दिर में प्रवेश करने मे समर्थ होकर जीवन को धन्य कर लिया है मैने।

एना स्वभाव से ही रसिक थी। हँसी-मज़ाक उसे बहुत पसन्द था। तिस पर पुण्डरीकाक्ष की वाचालता उसके हृदय को और प्रफुल्लित किये दे रही थी। सडक पर रोज़ देखते-देखते पुण्डरीकाक्ष उसके लिए बहुत पुराना हो चुका था। इससे वह यह बात बिलकुल ही भूल गई कि पुण्डरीकाक्ष आज पहले-पहल हमारे यहाँ आया है, उससे आज हमारा नया-नया परिचय हो रहा है। इतने दिनो से उसके हृदय में जो कौतुक एकत्र हो उठा था, उसी का उच्छ्वास एकाएक उमड आया और वह इस तरह खट-खट बातचीत करने लगी कि मानो वह एक बहुत ही परिचित व्यक्ति से बातें कर रही है। वह एक अद्भुत भाव-भङ्गी से कहने लगी—नही साहब, यह बात नही है। केवल आज ही एणाक्षी के कटाक्षपात ने आपके जीवन को धन्य नही किया। आपका जीवन तो बहुत दिनो से धन्य होता आ रहा था।

पुण्डरीकाक्ष ने कौतूहल मे आकर हास्यमय स्वर में कहा—इस प्रकार का सौभाग्य इस अभाजन को कैसे हुआ? किस शुभ मुहूर्त्त में स्वाती-नक्षत्र का जल इस साधारण से शुक्ति-पुट पर पड़ा था, किन्तु उसका इसे पता तक न चला।

एना खिलखिलाकर हँस पडी। उसने कहा—शुक्ति-पुट पर नही पडा। पडा है हस्ति-मूर्ख के मस्तक पर। नही तो क्या वह अन्धा होकर देख न पाता कि हम लोग उसे रोज़-रोज सडक पर मुँह बाये खडा देखा करती थी?

दर्शन की कामना से खडे-खडे पुण्डरीकाक्ष जो कठोर साधना किया करता था, वह व्यर्थ नही हुई, यह समाचार पाकर पुलकितभाव से उसने कहा—ठीक कहती है आप। स्वाती-नक्षत्र का जल पडा था हस्ति-मूर्ख के मस्तक पर, जिससे कि अत्यन्त दुष्प्राय गजमुक्ता हस्ती के मस्तक पर तो उत्पन्न हुआ, किन्तु हाथी का साथी मूर्ख

था और उसके मस्तक पर जो जल पड गया उसके कारण वह आँख रहते हुए भी अन्धा होकर दृष्टि की भिक्षा के लिए प्रतिदिन सडक के किनारे पर लोलुपभाव से ताकता हुआ खडा रहा करता था। यह बात कभी वह मन में भी नही ला सका कि मै प्रतिदिन ही भिक्षा के रूप में सुवर्ण-कण पा-पाकर महाधनी होता जा रहा हूँ। वह तो यही सोचा करता था मै शायद खाली ही भिक्षा-पात्र लिये लौटा आया करता हूँ। उस भिक्षा-पात्र में प्रतिदिन जो सुवर्ण-कण डाल दिये जाया करते थे, उनका ज्ञान तो उस अन्धे को हो नही पाता था। कितने तो ऐसे भी दिन गये है जब कि उसने अपने भिक्षा-पात्र को टटोल-टटोलकर देखा है। उसने ऐसा अनुभव किया है कि शायद मेरे इस पात्र में बालू के कण किरकिरा रहे है। जिन कणो को यत्नपूर्वक सचित कर रखना चाहिए था, उन्हे उसने उपेक्षा के साथ झाड-झाडकर फेंक दिया है।

एना ने खुश होकर कहा—तो पहले जो कुछ नुकसान हो गया है, वह सब अब ब्याज के सहित वसूल कर लीजिएगा। अब तो आँख खुली है।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—हाँ, ऐसे बहुत-से प्राणी है, जिनकी आँख जन्मकाल में ही नही खुलती, उसके लिए कुछ दिनो तक प्रतीक्षा करनी पडती है। इस प्रकार नवजन्म के बाद यद्यपि मेरी भी आँख खुली किन्तु इन आँखो से देखने योग्य जो वस्तु है, वह तो अब भी उस अवस्था की ही तरह दुर्लभ रह जायगी।

मुख पर प्रसन्नता की रेखा विकसित किये हुए एना ने कहा—दुर्लभ क्यो रह जायगी? एक सडक पार करके चला आना क्या इतना कठिन काम है? जो अन्धा था वह क्या अब लँगडा हो गया है?

आह्लाद के मारे पुण्डरीकाक्ष का हृदय प्रफुल्लित हो उठा। उसने कहा—यदि उसे यह करुणा का आश्वासन मिल जाय तो इस सडक की क्या बात है, लँगडा दुस्तर पारावार पार करने मे भी भयभीत नही होगा।

एना ने हँसकर कहा—पारावार पार करने का अभ्यास बहुत दिनो

से है, यह मै जानती हूँ। किन्तु उतना क्लेश सहन करने की आवश्यकता न पडेगी। केवल यह सडक पार कर लीजिए, बस! कर सकेंगे? साहस होगा?

पुण्डरीकाक्ष उच्छ्वासमय स्वर से एक कविता का आधा अश पढ गया, जिसका भाव है—

केवल यह सडक पार करने में भय किस बात का है? जय अभया की, जय!

बाद को महाकवि वाल्मीकि के श्लोक को ज़रा-सा परिवर्तित करके उसने पढा—

मूक करोति वाचाल पगु लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तामह वन्दे वराभयप्रदायिनीम्।।

किन्तु देखिएगा, अधिक प्रश्रय न दीजिएगा। जानती तो है कि आप कलिकाल के ब्राह्मण और बलिदान के बकरे समान होते है। इन्हें अच्छे-बुरे का ज्ञान नही होता, ये प्रश्रय के ही लिए पागल रहते है। लोभी को निमन्त्रण दे रही है, बाद को कही फिर भी ऐसी परिस्थिति न आ जाय कि दरबान से गला पकडकर धक्का दिलवाना पडे। मै रोज़-रोज़ आया करूँगा, यह बताये रखता हूँ।

एना ने हँसते-हँसते कहा—तथास्तु! दरबान ने धक्के की बोहनी तो कर ही दी है, किन्तु ऐसी व्यवस्था कर दूँगी जिससे कि बाद को उसे अपनी शक्ति का और अपव्यय न करना पडे।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—एक और विषय में अभय चाहता हूँ। मै रोज़-रोज़ आऊँगा, किन्तु बाद को भी कही इस तरह आहार का पहाड न तैयार रहा करे।

मुस्कराती हुई एना बोली—क्यो? शायद ठीक नही बना है!

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—साक्षात् लक्ष्मियो ने अपने हाथ से जो अमृत परोसा है, उसे भला मै कभी खराब कह सकता हूँ? जितनी मात्रा में मेरे सामने लाकर रक्खा गया था, उससे स्वय दशानन को भी हार

माननी पडती। कुम्भकर्ण की वात अवश्य अलग है। उतना भोजन उनके लिए यथेष्ट होता या नही, यह नही कहा जा सकता।

एना ने हँसते-हँसते कहा—कहा क्यो नही जा सकता? शायद बात बहुत पुरानी हो जाने के कारण भूल गई होगी? देखती हूँ कि आप जितनी भी उपमाओ का प्रयोग करते है, वे सभी त्रेतायुग की स्मृति की ही उपज है। कही आप रामचन्द्र के दल के एक महावीर तो नही थे?

एना की इस हास्यमय वात से प्रसन्न होकर पुण्डरीकाक्ष ने कहा—नही, नही, इस प्रकार का सौभाग्य मुझे नही प्राप्त हुआ।

इतने मे मेना ने आकर कमरे में प्रवेश ा।

पुण्डरीकाक्ष ने जैसे ही देखा कि मेना आ रही है, वैसे ही अत्यन्त ही गम्भीर होकर उतावली के साथ उसने कुर्सी छोड दी और वह उठकर खडा हो गया।

मेना को देखते ही एना बोल उठी—दीदी, ये रोज़-रोज़ आने के लिए पास्पोर्ट माँग रहे है और अभय चाहते है कि दरवान वाद को भी इन्हे न रोके।

मेना हँसती हुई बोली—तुम्हारे अभयदान कर देने पर ही ये निर्भय होकर आ-जा सकेंगे। तुम इतनी वाचाल हो!

एना ने हँसते ही हँसते उत्तर दिया—मेरी वाचालता के ये थोडा-बहुत आदी हो गये है। आगे चलकर इन्हे यह अत्यन्त असह्य न मालूम पडेगी। आज पहली मुलाकात मे ही इन्होने इस प्रकार का परिचय दिया है कि अव चिडियाखाने मे जाना आवश्यक न होगा।

पुण्डरीकाक्ष ने लज्जितभाव से मुँह लाल किये हुए दबी आवाज़ से एना से कहा—आह! इनके सामने तुम यह सब क्या बक रही हो? क्या कहेगी ये अपने मन में?

कौतुक का अनुभव करती हुई एना बोली—क्यो? इन्हे देखने पर

इस तरह के वृद्ध क्यों वन जाते हो ? जव तक मैं अकेली थी तव तक तो मुँह खुजला रहा था आपका।

एना की इस प्रकार की वात से जरा कुछ अधीर-सा होकर पुण्डरीकाक्ष कहने लगा—आह ! क्या सव तरह की वातें इनके सामने कह जाना उचित है ?

मेना के सामने पुण्डरीकाक्ष जो इस प्रकार का सङ्कोच कर रहा था और बहुत-सी वातें उससे छिपाने का प्रयत्न कर रहा था उसका अर्थ मेना और एना दोनो ने ही समझ लिया। उनके मन में यह वात आई कि पुण्डरीकाक्ष तो एना को अपनी हृदयेश्वरी वनाने की कामना से आया है, इसलिए उससे वह हँसी-मजाक करेगा, और जी खोलकर हर तरह की वाते करेगा। इस सम्बन्ध में वह यह भी चाहेगा कि उन दोनो में जो कुछ वातें हो वे उन्ही तक सीमित रहे, किसी और व्यक्ति के कानो तक वे न पहुँच पावें। अनुमान से उसका यही उद्देश्य समझकर एना ने लज्जित-भाव से मुस्कराते हुए एक कटाक्ष मारा और चुप हो गई। और मेना ? वह गुरुजन की तरह अत्यन्त ही गम्भीर हो उठी।

मेना और एना, दोनो ने ही मुँह वन्द कर लिया। यह देखकर पुण्डरीकाक्ष वडे झझट मे पड गया। ऐसी परिस्थिति में क्या कहना या करना उचित है, इस वात का निर्णय न कर सकने के कारण उसने मेना को नमस्कार किया।

मेना ने उसके नमस्कार का यह अर्थ लगाया कि अव ये विदा माँग रहे है। यह सोचकर उसने कहा—आप अभी ही चले जा रहे है ? पिता जी से मुलाकात किये विना ही चले जायँगे ? वे अव आते ही होगे।

पुण्डरीकाक्ष नीरव होकर वैठा रहा। एना का भी मुह न खुला। तव और कोई उपाय न देखकर मेना को ही वात-चीत आरम्भ करनी पडी। उसने पूछा—आपके नये मकान का गृह-प्रवेश कव होगा ? मूढ़ की तरह करुणभाव से मेना की ओर ताकते हुए पुण्डरीकाक्ष ने कहा—जिस दिन आप कहेंगी।

पुण्डरीकाक्ष के इस उत्तर का मेना और एना कोई अर्थ नही समझ सकी। इससे उन दोनो ने समझ लिया कि यह कितना मूर्ख है। उसकी इस प्रकार की मूर्खता पर मेना तो मन ही मन हँस कर रह गई किन्तु एना से जोर से हुहू-हुहू किये बिना न रहा गया। पुण्डरीकाक्ष लज्जा के मारे गड गया।

और किसी प्रकार की बात-चीत की सम्भावना न देखकर मेना ने कहा--चलूँ, जरा देखूँ तो कि पिता जी की पूजा समाप्त हुई या अभी नही। यह कहकर मेना उठकर चल पडी। उसे उठती देखकर शान्तभाव से पुण्डरीकाक्ष भी उठकर खडा हो गया।

मेना के चले जाने पर एना ने हँसते-हँसते कहा---दीदी को देखकर आप डर के मारे इस तरह भीगी बिल्ली क्यो बन जाते है? दीदी बाहर से जितनी गम्भीर है, भीतर से भी उतनी ही नही है। इसके सिवा भयङ्कर तो वे बिलकुल ही नही है।

अब बहुत ही जी खोलकर हँसते हुए पुण्डरीकाक्ष ने कहा---नही, नही, कोई ऐसी बात नही है। परन्तु पता नही, क्यो मै उनके सामने कुछ बोल नही सकता हूँ?

कौतुक का अनुभव करती हुई एना बोली---क्यो? कौन-सी ऐसी बात है? क्या वे गुरुजन है, इसलिए? इसी से इतना सम्मान दिखलाते हो?

पुण्डरीकाक्ष ने गम्भीर होकर कहा---नही, गुरुजन तो नही है, किन्तु------

पुण्डरीकाक्ष किन्तु के बाद और क्या कहना चाहता था, यह बात जानने के लिए केवल अनुमान का ही सहारा रह गया। वह जो उसके नितान्त ही गुप्त मर्म की बात थी, उसे वह किसी के भी सम्मुख प्रकट नही कर सकता था।

पुण्डरीकाक्ष जो इस प्रश्न को इस प्रकार टाल गया, उसका एना ने एक मनमाना ही अर्थ लगा लिया। उसने अपने मन में यह सोच लिया कि

पुण्डरीकाक्ष मुझे अपनी समकक्ष और प्रणयपात्री समझता है, इसी लिए वह मुझसे बहुत खुल कर बाते करता है, हँसी-मज़ाक भी कर लेता है। परन्तु दीदी को वह एक मान्य व्यक्ति समझता है, इसमे उनके सामने सकुचित होकर चुप बैठा रहता है।

एना इस प्रकार की कल्पनाये कर ही रही थी कि राजाबहादुर ने आकर कमरे मे प्रवेश किया। उनके पीछे-पीछे मेना भी आई।

राजाबहादुर के कमरे में प्रवेश करते ही पुण्डरीकाक्ष फिर उठकर खडा हो गया।

राजाबहादुर ने कहा—अभी ही जाना चाहते हो? अच्छी बात है, तब चलो फिर कभी-कभी टहलते चले आया करो, हम लोग तो सदा अकेले ही रहा करते है।

पुण्डरीकाक्ष उठकर खडा हुआ था राजाबहादुर को सम्मान प्रदर्शित करने के लिए और विशेषत एना की अभ्यर्थना करने के लिए। उठकर खडा होते समय उसकी जाने की ज़रा भी इच्छा नही थी। मेना के पास से हटने को उसका जी ही नही चाहता था। परन्तु राजाबहादुर अच्छा कहकर जब उसे विदा दे चुके तब वहाँ रुकने की कोई गुजाइश न रह गई, विवश होकर उसे घर की ओर पैर बढाने ही पडे। यद्यपि चाहता वह यही था कि यही बैठे-बैठे मेना के मुह की ओर एक दृष्टि से ताकता रहूँ।

पुण्डरीकाक्ष नमस्कार करके विदा हुआ। मेना सीढी के पास तक उसे पहुँचाने के लिए गई। वह मेना की ही ओर मुह फेरे हुए सीढी से उतरने लगा, इस कारण उसका एक पैर सीढी पर से फिसल गया और वह गिरते-गिरते बचा। इससे परम गम्भीर मेना के मुख पर भी हँसी दिखाई पड गई। पुण्डरीकाक्ष अत्यन्त ही लज्जित होकर तेजी के साथ सीढी से उतर गया।

पुण्डरीकाक्ष का पैर फिसलने की आहट पाकर एना भी कमरे से निकल आई और वह खिलखिलाकर हँसने लगी। एना की ओर मुह

फेरे हुए खडी-खडी मेना ने मुस्कराहट के साथ कहा—तू उस भले आदमी को आज पहले ही दिन इतना सब क्या-क्या कह गई !

एना ने खूब हँसते-हँसते कहा—कोई वैसी बात नही कही दीदी। वे त्रेतायुग के एक वीर है न, केवल यही उनसे पूछ रही थी।

मेना चकित होकर बोल उठी—बाप रे ! एक भले आदमी के साथ इस तरह का ठट्ठा करते समय तेरी जबान नही रुकती ? क्या धारणा अपने मन में लेकर गये होगे वे ?

एना ने कहा—धारणा क्या लेकर गया है वह ? डैम ग्लैड होकर गया है। कहता था कि रोज आया करूँगा। बडे मजे का आदमी है दीदी। हम लोगो का साँझ का समय बडा डल रहता है, उसके साथ में बडे मजे मे कट जायगा। वह आदमी भास्कर बाबू की तरह घुम्मा बिलकुल नही है। मुह बन्द किये हुए बैठा रहनेवाला आदमी मुझे जरा भी नही सुहाता।

एना की इस बात से सन्तुष्ट होकर मेना ने पूछा—उनसे जुल्फो-उल्फो के सम्बन्ध में तो कुछ नही कहा ?

एना ने मुस्कराहट के साथ कहा—नही, आज नही कह सकी। अभी बहुत-सी बाते कहनी है। जुल्फे दो इच ऊपर करवाने को कहना है, हाथ की आठ अँगूठियो मे से सात उतारकर रख देने को कहना है, साथ ही यह भी समझा देना है कि इस तरह का स्त्रियो का-सा गहरे रग का भडकीला कुर्ता पहनना असभ्यता का द्योतक है। स्त्रियो के मुह की ओर ध्यान लगाये हुए ताकते रहना ठीक नही है, इस बात के लिए भी जरा-सा उन्हे सचेत कर देना होगा। इसी तरह की और भी जितनी आवश्यक बातें ध्यान मे आवेगी, वे सभी कह देनी होगी। जान पडता है कि उन्हे मनुष्य बनाने का भार मुझे स्वय अपने ही ऊपर लेना पडेगा।

एना की इन बातो से मेना ने यह समझ लिया कि एना के हृदय मे पुण्डरीकाक्ष के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया है और

पुण्डरीकाक्ष भी एना के प्रति आकर्षित है। इससे पिता की अभिलाषा पूरी होने में अब कोई कठिनाई नही है। यही सोचकर हँसती-हँसती वह पिता के पास गई।

मेना को देखकर राजाबहादुर ने कहा—आदमी तो वह बहुत ही सरल और शान्त मालूम पडता है।

मेना ने कहा—हाँ, बडा अच्छा आदमी है।

मेना के साथ ही साथ एना भी आगई थी। उसने मेना के कान के पास कहा—एकदम गँवार है।

हँसकर बहुत धीमे स्वर से, जिससे कि पिता के कानो तक बात न पहुँच सके, मेना बोली—परन्तु तू तो उस पर रग चढाने का कठिन व्रत ग्रहण करने को तैयार ही हो गई है।

एना ने कहा—करूँ क्या भाई, पडोसी का भी तो कुछ कर्तव्य है ?

राजाबहादुर ने कहा—उससे तुम लोगो ने कह दिया है न कि कभी-कभी चले आया करो ?

पिता के इस प्रश्न के कारण एना को इतनी हँसी आई कि वह पैर बढाती हुई कमरे से निकलकर चली गई। परन्तु मेना ने इस प्रश्न के उत्तर में कहा—हाँ, एना ने उससे रोज़-रोज़ आने को कहा है।

राजाबहादुर ने कहा—तुम्हारी क्या धारणा है, एना को वह पसन्द आवेगा या नही ?

मुस्कराती हुई मेना बोली—पसन्द तो उसे आ ही गया है। इतने ही समय मे उन दोनो की खूब पट गई। बडी देर तक वे लोग खूब गप-शप करते रहे।

मेना की इस बात से राजाबहादुर का मुख प्रसन्न हो उठा। उन्होने कहा—तुम्हे इस बात के लिए ज़रा-सा प्रयत्न भी करना चाहिए कि उन दोनो में काफी प्रेम हो जाय। उसके साथ एना

का विवाह कर देने के वाद यदि मैं अपनी ज़मीदारी उसके यहाँ रेहन कर सकता तो ज़मीदारी किसी गैर के हाथ न लग पाती। समझ लूँगा कि लडकी-दामाद को ही दे दिया है। तुम्हारे लिए मैं कुछ रख न सकूँगा, यही मुझे सबसे अधिक दुख हो रहा है।

मेना ने वहुत कोमल स्वर से धीरतापूर्वक पिता को सान्त्वना देने के विचार से कहा—वावू जी, मेरे लिए तुम्हे किसी प्रकार की चिन्ता न करनी होगी। तुम्हारे आशीर्वाद से मुझे किसी भी वस्तु का अभाव न रहेगा।

राजावहादुर ने कहा—यह वात तो है विटिया, यदि मैं किसी प्रकार तुम्हें कुमीरखाली के ज़मीदार के हाथो मे सौंप पाता तो फिर तुम्हें किसी वात की कमी न रह जाती, तू वहाँ राजरानी होकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती।

गम्भीर होकर मेना ने मस्तक झुका लिया। पुत्री के मस्तक पर दाहिना हाथ रक्खे हुए राजावहादुर उस पर पिता का स्नेह उँडेलने लगे।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

गृह-प्रवेश

पुण्डरीकाक्ष प्राय प्रतिदिन ही मेना आदि के यहाँ घूमने के लिए जाया करता। वह एना से खूब घुल-घुलकर बाते किया करता, हँसी-मज़ाक किया करता। इस प्रकार वह वहुत-सा समय वहाँ व्यतीत कर आया करता था। परन्तु मेना के समीप आते ही पता नही क्यो, उन दोनो ही का मुह अपने आप वन्द हो जाया करता। इससे मेना और राजावहादुर प्रसन्न हुआ करते थे यह सोचकर कि पुण्डरीकाक्ष के साथ एना की प्रीति दिन-दिन प्रगाढ होती जा रही है।

पुण्डरीकाक्ष एना से हँसी-मज़ाक किया करता था, उसे अपनी छोटी साली समझकर। इधर एना की धारणा थी कि पुण्डरीकाक्ष मुझसे प्रेम करने लगा है, इसी लिए वह मेरे प्रति इस प्रकार की ममता प्रकट करता है। वह मुझे अपनी भावी पत्नी के रूप में देखता है, यही कारण है कि वह मुझसे इस तरह हँसी-मज़ाक किया करता है। मेना को गुरुजन समझकर वह उसके सामने मौन रहा करता है। परन्तु पुण्डरीकाक्ष जो मेना के सामने मुह खोलने का साहस नही किया करता था, उसका यह कारण विलकुल नही था। वह मेना के प्रेम मे इतना अधिक पड गया था, कि उसका वह प्रेम सम्मान और भक्ति में रूपान्तरित-सा हो गया था।

पुण्डरीकाक्ष की इच्छा प्रवल होकर उसे प्रतिदिन ही मेना के समीप जाने के लिए प्रेरित किया करती। परन्तु लज्जा और भय के कारण किसी-किसी दिन वह नही भी जा पाता था। यह बात अवश्य थी कि जिस दिन वह नही जाता था उस दिन उसी तरह छटपटाते-

छटपटाते अपना समय व्यतीत किया करता था, जिस तरह कि नशाखोर समय आने पर नशा के विना व्याकुल हो जाया करता है। कभी तो वह अपनी अत्यन्त उच्च अट्टालिका की छत पर चढ जाया करता और कभी राजावहादुर की कोठी के सामने फाटक के वीच से झाँक-झाँककर टहलता रहता। वह सोचता कि शायद किसी साँस से एक क्षण के लिए मेना की झलक मिल ही जाय। किसी-किसी दिन मेना या एना उसे ऐसा करते देख भी लिया करती थी। उस समय चोरी मे पकडे जाने के कारण लज्जा से सकुचित होकर वह भाग जाया करता था।

मेना जव कभी पुण्डरीकाक्ष को इस अवस्था मे देख पाती तव उसके मन मे यह धारणा आती कि वह एना को देखने के लिए व्याकुल होकर लोलुप चोर की वृत्ति का अवलम्बन कर रहा है। इससे वह वहुत ही कौतुक का अनुभव किया करती थी। एना जव उसे इस रूप में देख पाती तव सोचती कि पुण्डरीकाक्ष के लिए मेरा कुछ समय का भी वियोग सह्य नही है, इसी से वह चोर की तरह झाँकता फिरता है। इससे वह कल्पना किया करती थी कि मेरे प्रति पुण्डरी-काक्ष को अत्यन्त अधिक अनुराग है। इस कल्पना के कारण अनु-राग से और भी अधिक उसकी ओर आकर्षित होती जाती, साथ ही मन ही मन अत्यन्त आनन्द तथा आत्म-सतोष का अनुभव करती।

एना ने अव दीदी से पुण्डरीकाक्ष की खिल्लियाँ उडाना वन्द कर दिया। पुण्डरीकाक्ष जो इस प्रकार छिप-छिपकर देखने का प्रयत्न किया करता था, उसके सम्वन्ध में विचार करने की वात भी अव उसकी अकेले की गुप्त सम्पत्ति के रूप में रहा करती थी। उसकी सूचना दीदी को देने मे वह लज्जा का अनुभव करती और यक्ष के धन की तरह उसे छापे वैठी रहा करती। वह सोचती--जो कुछ है, वह रहे, मेरा ही होकर रहे। मेना उन दोनो का लुका-छिपी का खेल

देख लेने पर भी बहुधा इस प्रकार का भाव दिखलाती कि मानो उसने कुछ देखा ही नही।

एक दिन सवेरे पुण्डरीकाक्ष बाजार से बहुत-सा सामान खरीद ले आया। यह देखकर उसकी बुआ ने पूछा—यह सब सामग्रियाँ क्या होगी रे पुण्डरीकाक्ष ?

पुण्डरीकाक्ष ने उत्तर दिया—हमें अपने नये मकान का गृह-प्रवेश करना होगा बुआ जी।

बुआ जी ने पूछा—कितने आदमियो को तूने निमन्त्रण दे रक्खा है ? क्या इतनी भोजन-सामग्रियाँ अकेले मेरे तैयार किये होने को है ?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—अभी तक किसी को निमन्त्रण नही दिया। कल रात को खिलाऊँगा। आज दूसरे वक्त तक निमन्त्रण दे दिया जायगा। कुछ अधिक आदमियो को निमन्त्रण देने का विचार नही है। कौन हमारे बहुत-से भाई-बिरादरी, नातेदार-रिश्तेदार और मेली-मुलाकाती है कि उन सबको निमन्त्रण दूँगा। इसके सिवा आदमी चाहे कितने ही क्यो न निमन्त्रित किये जायँ, तुम्हें कुछ करना न होगा बुआ जी। क्या तुम सदा ही हाड तोड-तोडकर मरती रहोगी ? यदि ऐसा हुआ तो फिर भगवान् ने हमारे ऊपर जो दया की है, उससे लाभ ही क्या हुआ ? तुम बैठे-बैठे केवल निगरानी भर करती रहना और जिस किसी वस्तु की आवश्यकता पडे वह भडारे से निकाल-निकालकर दिये जाना। मै बहुत ही होशियार हलवाई और ब्राह्मण ठीक कर आया हूँ। वे ही कल सवेरे आकर जितने प्रकार के भी उत्तम से उत्तम पकवान, मिठाइयाँ तथा अन्य प्रकार की खाद्य-सामग्रियाँ हो सकती है, बनाकर तैयार कर देगे।

पुण्डरीकाक्ष समस्त दिन भिन्न-भिन्न स्थानो मे जा-जाकर भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओ के लिए बयाना देता फिरता रहा। वह बार-

बार घर आता और फिर निकल जाता। इस प्रकार वह खरीद-खरीद-कर बहुत-सी चीज़े ले आया।

दूसरे वक्त पुण्डरीकाक्ष ने स्नान किया और अपनी वेश-भूषा बनाने मे लग गया। पाँच बजे उसने अपने प्रतिदिन के नियम के अनुसार खूब भडकीली पोशाक पहनी और घर से निकलते हुए कहने लगा—बुआ जी, तुम भी कपडे बदल लो। चलो, राजाबहादुर के यहाँ निमन्त्रण दे आवे। तुम एक कोसा पहन लो और कोसा की एक चद्दर ओढ लो।

बुआ जी ने कहा—नही भैया, मै सीधे ही सादे ढग से जाऊँगी उनके यहाँ। उनके सामने हाथ फैला भिक्षा माँगी है मैने एक दिन। आज कोसा पहनकर उनके सामने बडा-आदमीपन दिखलाने जाना अच्छा न मालूम पडेगा। ऐश्वर्य्य तो उन्हे दिखलाना है जिन्होने किसी दिन हमारी दरिद्रता की अवहेलना की है, अपमान किया है। उन लोगो के समीप तो हमारा कोई मान-अपमान है नही बेटा।

बुआ की बात सुनकर पुण्डरीकाक्ष मुहूर्त्त भर न जाने क्या सोचता रहा। बाद को उसने कहा—तुम ठीक कह रही हो बुआ जी। मुझमें तो आज तक इस तरह की बुद्धि आ नही सकी। इतनी साधारण-सी बात भी आज तक मेरे दिमाग मे नही आ सकी। अच्छा, तो तुम तब तक कपडे बदलो, मै भी अपनी यह शेखचिल्ली की पोशाक उतारकर भलामानुस बन आऊँ।

पुण्डरीकाक्ष अपने कमरे में लौट गया। उसने अपना रगीन साटिन का कोट उतार डाला और उसके बदले मे एक सूती कोट पहन लिया। उँगलियो में जो उसने सात-सात अँगूठियाँ पहन रक्खी थी, उन सबको उतारकर उसने बडे हीरे की केवल एक अँगूठी रहने दी।

लौटकर आने पर पुण्डरीकाक्ष ने देखा तो बुआ जी तैयार होकर उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। आते ही उसने पूछा—लो तुम तैयार हो गई हो बुआ जी? गाडी ले आने को कहूँ?

बुआ जी ने कहा---गाडी की क्या आवश्यकता है रे ? यही तो गली के उस पार उन लोगो की कोठी है। इतना ही ज़रा-सा रास्ता मुझसे न चला जायगा ?

आज पुण्डरीकाक्ष की आँखें मानो नई-नई खुलने लगी थी। उसकी अक्षर-ज्ञान से शून्य बुआ में जो विवेक और बुद्धि है, वह उसमे नही है, यह पुण्डरीकाक्ष ने अनुभव कर लिया। मुँह से और कोई वात न निकालकर वह आगे-आगे चला। पीछे-पीछे बुआ जी भी चली।

राजावहादुर के सन्तरी लोग अव पुण्डरीकाक्ष को भीतर जाने से नही रोकते थे। उन्हें राजावहादुर से आज्ञा मिल गई थी कि वे उसे बेरोक-टोक भीतर जाने दिया करे। इसके सिवा प्रतिदिन आते-जाते रहने के कारण सन्तरियो से भी उसका परिचय हो गया था। इससे उसे आते देखकर सन्तरी ने फौजी कायदे से उससे सलाम किया। पुण्डरी-काक्ष भी उसका सलाम लेकर भीतर चला गया।

पुण्डरीकाक्ष के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई एना वरामदे में खडी थी। उसे आते देखते ही उसका मुख प्रफुल्लित हो उठा। परन्तु उसके वाद ही उसने देखा कि उसके पीछे-पीछे आ रही है उसकी बुआ जी। यह देखकर एना तुरन्त ही दौडती हुई दीदी के पास गई। उसने उससे कहा---दीदी, दीदी, उस घर की बुआ जी आ रही है, तुम चलो।

अव जहाँ तक सम्भव होता एना पुण्डरीकाक्ष का नाम नही उच्चारण किया करती थी, 'ये, वे' कहकर ही वह काम चला लिया करती थी। पुण्डरीकाक्ष का घर अव उसके लिए 'वह घर' था और उसकी बुआ जी एना की भी बुआ जी थी। इससे मेना मन ही मन कौतुक का अनुभव किया करती थी। उस समय एना की वात सुनते ही प्रसन्न-भाव से उतावली के साथ वह नीचे आई और आगन्तुको की ओर वढती हुई अभ्यर्थनापूर्वक वोली---आइए बुआ जी, आइए।

मेना बुआ जी के समीप गई। मस्तक झुकाकर उसने उनकी पद-धूलि ग्रहण की और प्रणाम किया। इधर पुण्डरीकाक्ष ने जब यह देखा कि मेना उसकी बुआ को बुआ कह रही है और उसने उनकी पद-धूलि ग्रहण करके प्रणाम किया है, तब आनन्द और आशा के मारे उसका हृदय उद्वेलित हो उठा। मेना उसे अपने लिए उपयुक्त समझ लिया है, इस सम्बन्ध में पुण्डरीकाक्ष को बिन्दुमात्र भी सन्देह नही रह गया। मेना ने मुस्कराते हुए पुण्डरीकाक्ष को भी नमस्कार किया। पुण्डरीकाक्ष ने तुरन्त ही सम्मानपूर्वक उसके नमस्कार का उत्तर दिया।

बुआ जी ने मेना को आशीर्वाद देते हुए कहा––राजरानी होकर सदा सुखी रहो बेटी। कैसी हो तुम ? मैं बहुत दिनो से आ नही सकी हूँ। तुम्हारा हाल पुण्डरीकाक्ष से प्राय. पा जाया करती हूँ। तुम लोग मेरे पुण्डरीकाक्ष पर बहुत अधिक कृपा किया करती हो, यह मैंने सुना है। और करोगी क्यो नही ? तुम्हारा स्वभाव ही है दया करना। तुम लोगो की कृपा से ही तो हमारी प्रतिष्ठा सुरक्षित रह सकी है।

लज्जा से कुण्ठित होती हुई मधुर-स्वर से मेना बोली––हम लोगो ने कौन-सा ऐसा बडा काम कर दिया है बुआ जी जो रोज़-रोज़ आप यही एक बात कहा करती हैं। इस तरह से आप हमे लज्जित न किया कीजिए। एक पडोसी के प्रति दूसरे पडोसी का जो कर्त्तव्य है, हमने उसी का पालन करने की ज़रा-सी चेष्टा की थी।

बुआ जी ऊपर चढ आईं। उन्होने कहा––आज मैं फिर तुम लोगो के पास एक प्रकार की कृपा की प्रार्थना करने आई हूँ।

मेना का मुख आनन्द से प्रफुल्लित हो उठा। उसके मन में यह बात आई कि वृद्धा अपने भतीजे के विवाह का प्रस्ताव करने आई है और उसी की भूमिका बाँध रही है। इससे उसने आनन्द से उज्ज्वल हो उठे मुख से कहा––आप फिर इस प्रकार की बात मुख से निकाल-कर हमारे ऊपर पाप चढा रही है बुआ जी! आप आज्ञा देगी और

मैं उसका पालन करने का प्रयत्न यथासाध्य करूँगी। कहिए, आपकी क्या आज्ञा है?

बुआ जी ने कहा—कल पुण्डरीकाक्ष का गृह-प्रवेश है। इससे इस बात की बडी आकाक्षा है कि राजाबहादुर और तुम दोनो बहनें उसके घर मे पद-धूलि डाल आओ। पुण्डरीकाक्ष को तो इतना साहस हो नही सकता कि वह राजाबहादुर से कह सके, इससे साथ मे वह मुझे ले आया है। मैं उन्हे बहुत विनीतभाव से निमन्त्रित कर रही हूँ। तुम लोगो से भी आने के लिए आग्रह कर रही हूँ। तुम लोग आकर इस मङ्गल-कार्य्य को पूर्ण करो और रात को आठ बजे ज़रा-सा जलपान कर लेने की कृपा करो।

पुण्डरीकाक्ष बुआ की इस प्रकार की चातुर्य्यपूर्ण बातें सुनकर प्रसन्न हो उठा। प्रफुल्लित मुख से उसने मेना के मुख पर अपनी दृष्टि जमा दी। किस प्रकार अनुरोध से भरी हुई थी उसकी दृष्टि।

मेना वृद्धा की बात सुनकर निराश हो उठी। उसके मन में यह बात आई थी कि पुण्डरीकाक्ष की बुआ अपने भतीजे के साथ एना के विवाह का प्रस्ताव करने आई है। इससे उसे ऐसा न करते देखकर वह ज़रा-सा अनुत्साहित हो उठी। परन्तु अन्त में जब उसे यह ज्ञात हुआ कि पुण्डरीकाक्ष के गृह-प्रवेश में हम लोगो का निमन्त्रण है, तब उसका प्रारम्भ का आनन्द एकदम से नही जाता रहा। मुस्कराती हुई वह कहने लगी—बस, इतने ही के लिए आप इस तरह कह-सुन रही है? यह तो बहुत खुश होने की बात है। हम लोग अवश्य पहुँचेंगी। पिता जी भी जायँगे। एक तो जिस मकान की इतनी प्रशसा सुन रक्खी है, उसे अपनी आँखो से देख लेने पर कानो और नेत्रो का विवाद तोड डाला जा सकेगा, तिस पर भी मुँह मीठा होने की आशा है।

एना ने आकर बुआ को प्रणाम किया। बुआ ने उसे भी वही एक ही आशीर्वाद दिया—राजरानी होकर चिरकाल तक पति-पुत्र के सहित गृहस्थी का सुख भोगो बिटिया।

मेना मुस्कराती हुई एना से कहने लगी—तुमने सुना है एना? कल पुण्डरीक बाबू का गृह-प्रवेश है। इससे बुआ जी हम लोगो को निमत्रण देने आई है। मानो पुण्डरीक बाबू यदि स्वय निमत्रण देते तो शायद हम लोग जाती ही न, इसी लिए वे एकदम से बुआ जी का वारट और गिरफ्तारी का परवाना लेकरआये है। कहो, चलोगी न?

एना मुस्कराती हुई पण्डरीकाक्ष के बिलकुल पास पहुँच गई और उसके कान में कहने लगी—जब तक आप स्वय न निमत्रण देगे तब तक मै न आऊँगी।

पुण्डरीकाक्ष कृत्रिम क्रोध से भौहे टेढी किये हुए उसी तरह फुस-फुसाकर बोला—आह, दीदी के सामने कैसी दुष्टता कर रही हो। अच्छी बात है, दीदी को चली जाने दो, तब मै चरणो पर मस्तक रखकर अनुनय-विनय के साथ निमत्रण दे दूँगा।

एना कटाक्ष मारकर बोली—अच्छा तो ठहरिए, मै झटपट जूते उतार कर चरण-कमल अलक्त के रग से रँग आऊँ।

एना ने पुण्डरीकाक्ष से फुसफुस करके बातें करना आरम्भ कर दिया है, यह देखते ही मेना बुआ जी को साथ में लिये हुए पैर बढा-कर दूसरी जगह जाने लगी। उन्हे एक कमरे में प्रवेश करती देखकर पुण्डरीकाक्ष ने स्पष्टभाव से कह दिया—अलक्त के रग की भी कोई आवश्यकता है जब कि कितने आदमी अपने रक्त के रग में इन चरणो को रँगे दे रहे है! पुण्डरीकाक्ष ने हँसी-हँसी मे एक दिन एक बहुत रसभरी कविता सुनाई थी, जिसका भाव इस प्रकार था—

"ऐ सन्ध्या के स्वप्न मे बिहार करनेवाले, तुम सन्ध्या के शान्त सुदूर मेघ हो, मेरी हार्दिक आकाक्षा की साधना हो, मेरे शून्य गगन में विहार करनेवाले हो। मैने अन्त करण की मधुरिमा मिश्रित करके तेरी रचना की है। तुम मेरी ही हो, तुम मेरी ही हो। तुम मेरे असीम गगन मे विहार करनेवाली हो। अपने हृदय के रक्त को रग बनाकर मैने तेरे चरण रँग दिये है।"

पुण्डरीकाक्ष की आज की वात सुनकर उस दिन की हँसी में पढी हुई वह कविता एना को अक्षर-अक्षर याद आ गई। साथ ही साथ लज्जा और आनन्द के मारे उसका मुख गुलाव के फूल के समान हो उठा। एक वहुत ही आकर्षक और मन को लुभानेवाली अगभगी से सारा शरीर हिलाकर कटाक्ष मारती हुई वह वोली—वाह साहव, कवित्व भी खूव है आपके हृदय में। पायजेव के ऊपर विछुए की झन-कार किस प्रकार की मादकता उत्पन्न करती है हृदय में ? आपके हृदय-गगन की विहारिणी होने की चिन्ता से तो मै वडे झझट में पड गई हूँ, वडे झझट मे पड़ी हूँ। मुझे तो नीद नही आती।

पुण्डरीकाक्ष कुछ कहने ही जा रहा था कि राजावहादुर पासवाले कमरे से निकल आये। पुण्डरीकाक्ष के होठ तक आई हुई रसीली वात हँसी वनकर उसके नेत्रो की दृष्टि में तथा मुख पर लगी रह गई। उतावली के साथ आगे वढकर वह राजावहादुर को प्रणाम करने चला।

राजावहादुर ने कहा—कल तुम्हारा गृह-प्रवेश है ? अच्छा, वहुत अच्छा! सुनकर वहुत आनन्दित हुआ हूँ। हम लोगो को निमत्रण मिल गया है। ठीक समय पर हम लोग पहुँच जायँगे। हम तीनो ही आदमी आवेगे।

पुण्डरीकाक्ष की वुआ ने भास्कर को निमत्रण नही दिया। राजा-वहादुर ने यह समझा कि शायद भूल के कारण ऐसा हो गया है, इसलिए उन्हें स्मरण करा देने के विचार से उन्होने तीनों व्यक्तियो के पहुँचने की वात कही थी।

इसके उत्तर में पुण्डरीकाक्ष ने कहा—मेरे प्रति आप लोगों का असीम अनुग्रह है। यह ऋण जीवन में मै कभी न चुकता कर सकूँगा।

पुण्डरीकाक्ष ने भी भास्कर के निमत्रण के सम्वन्ध में कोई वात न कही, इससे राजावहादुर जरा-सा दुखी हुए, परन्तु वे और कुछ

बोले नही। पुण्डरीकाक्ष से उन्होने कहा—आओ, कमरे मे बैठो। एना, इन्हे लाकर बैठालो।

पुण्डरीकाक्ष आगे की ओर चला। उसे बढकर आते देखकर राजाबहादुर ने कमरे मे प्रवेश किया। तब एना ने चुपके से पुण्डरीकाक्ष से कहा—पाँव-पाँव चल सकोगे या स्ट्रेचर लाना होगा? बच्चा बैठेंगे, क्या उन्हे बैठालने में भी दूसरे को सहायता देनी पडेगी?

पुण्डरीकाक्ष ने हँसते हुए कहा—एनाक्षी के कटाक्षबाण से तो आहत ही हो उठा हूँ, ऐसी अवस्था मे स्ट्रेचर मँगवाकर पगु के प्रति कृपा ही की जायगी।

एना को इस बात का उत्तर देने का अवसर न मिल सका। क्योकि यह बात समाप्त होते-होते वे दोनो कमरे मे पहुँच गये। वहाँ राजाबहादुर वर्त्तमान थे। परन्तु एना के नेत्रो की दृष्टि में उदित होकर जो तीक्ष्णता पुण्डरीकाक्ष के मुख की ओर दौड पडी, उसी से पुण्डरीकाक्ष ने अनुभव कर लिया कि इस हास्य के कारण एना को कितनी अधिक तृप्ति हुई है।

पुण्डरीकाक्ष कमरे मे आकर बैठ भी न पाया था कि मेना ने भी आकर वहाँ प्रवेश किया। उसके वहाँ पैर रखते ही पुण्डरीकाक्ष सम्मानपूर्वक उठकर खडा हो गया। मेना ने कहा—बुआ जी जाना चाहती हैं। उनका कहना है कि अभी बहुत-से काम करने हैं, इससे आज इतना समय नही है कि यहाँ और विलम्ब किया जा सके।

यह तकाज़ा सुनकर ज़रा-सा रुष्ट-सा होकर पुण्डरीकाक्ष ने कहा—अच्छा, तो आज मैं चलता हूँ। कल साँझ के बाद आप लोग कृपापूर्वक पद-धूलि डालकर मेरे मकान को मङ्गलमय बना दीजिएगा।

पुण्डरीकाक्ष की बुआ पासवाले कमरे से बरामदे में निकल आई और माथे पर घूँघट खीचे खड़ी रही। उन्हे देखकर पुण्डरीकाक्ष भी निकला। साथ ही साथ मेना और एना भी निकल आई। उन

दोनो के समीप आ जाते ही बुआ ने दवे हुए कण्ठस्वर से कहा—तो कल साँझ के वाद आना विटिया रानी, तुम सब लोग आना।

मेना और एना ने मुस्कराते-मुस्कराते कहा—इतना अधिक कहने की आवश्यकता न होगी, हम लोग स्वय पहुँच जायँगी।

बुआ ने कहा—कल साँझ को मै फिर वुलाने के लिए आऊँगी।

मेना ने कहा—वुलाने के लिए आपको न आना पडेगा बुआ जी, हम लोग स्वयं रास्ता खोजकर चली आवेंगी।

एना पुण्डरीकाक्ष के समीप पहुँचकर चुपके-चुपके कहने लगी—हम लोग यों ही पहुँच जायँगी। हमे तो कही कोई आघात लगा नहीं है कि हमारे लिए स्ट्रेचर भेजना पडेगा।

पुण्डरीकाक्ष ने भृकुटि टेढी किये हुए वनावटी फटकार के स्वर में कहा—ओह, कही दीदी न सुन ले।

एना ने कहा—इतना भय है आपको दीदी का परन्तु मुझसे ज़रा भी भय नही है?

उस समय पुण्डरीकाक्ष की बुआ ने सीढ़ी से उतरना आरम्भ कर दिया था, इससे स्वभावत उसे अधिक समय तक रुकने का अवसर न मिल सका। मुस्कराहट के साथ एना की ओर ज़रा-सा ताकते हुए मस्तक हिलाकर वह केवल इतना भर सूचित करके चला गया कि तुमसे मै ज़रा भी नही डरता हूँ।

सीढी से उतरते-उतरते पुण्डरीकाक्ष वुआ को डाँट वतलाने लगा। उसने कहा—तुम्हे हर मामले में उतावली पडी रहती है। वहुत उतावली थी, तव भी घर लौट चलने के लिए इस तरह तकाज़ा करना उचित नही था। घटा आधा घटा और नही वैठ सकती थी? भला वे लोग भी अपने मन मे क्या कहेगे? आने देर नही हुई कि चलने-चलने की रट लगा दी।

वुआ जी ज़रा-सा भयभीत-सी होकर कहने लगी—कल काम-

काज का दिन है। कितने कार्य्य अभी करने को पडे है। इसी लिए तो जल्दी मचानी पडी है, नही तो कोई बात ही नही थी।

पुण्डरीकाक्ष झुझलाहट के साथ कह बैठा—यह मैं जानता हूँ कि बहुत-से काम करने है। परन्तु अभी तो सारी रात ही पडी है। कोई हमसे रात तो छीने जा नही रहा है। बहुत होता तो एक रात न सोते!

बुआ ने समझ लिया कि भतीजेराम को सुन्दरियो की सगति छोड-कर हट आना पडा है, इसी कारण से ये गरम हो उठे है। उनके मन में यह बात भी आई, वे साफ-साफ कह दें कि भैया, मैं अकेली भी लौटकर घर जा सकती हूँ, तुम्हे यदि ऐसा ही है तो तुम फिर लौट जाओ उन लोगो के पास। परन्तु भतीजेराम पहले के थोडे से रुपयो पर कलम घिसनेवाले भतीजे नही रह गये थे कि उन्हे कोई बात कहने का साहस किया जा सकता। अब तो भतीजेराम नये-नये बडे आदमी हो गये थे। अब उनका दिमाग बदलकर और तरह का हो गया था। अब बात बात मे उनका पारा चढ आता था। जिस समय वे तीस रुपये महीने के एक साधारण-से बाबू थे, उस समय उन्हे बुआ की खुशामद करने की ज़रूरत थी, क्योकि केवल पेट पर एक साथ ही नौकरानी और रसोईदारिन कहाँ मिलने को थी? परन्तु अब तो बुआ के न रहने पर भी उसका कुछ बनने-बिगडने का नहीं था। नौकर-नौकरानी या रसोईदारिन का तो अब कोई अभाव रह नही गया, क्योकि प्रतिदिन ही नये-नये महराज और नौकर बहाल हो रहे थे। इससे भतीजे की इस फटकार को घूँटकर रह जाने के सिवा बुआ के पास और उपाय ही क्या था?

जिस समय पुण्डरीकाक्ष और उसकी बुआ जा रही थी, उस समय मेना और एना ऊपरवाले बरामदे में खडी-खडी उनका जाना देख रही थी। फाटक के पास पहुँचने पर पुण्डरीकाक्ष ने एक बार घूमकर मेना को देख लिया। इससे मेना और एना दोनो ने ही

यह अनुभव किया कि एना को देखने के ही लिए उसने पीछे की ओर मुँह फेरा है और एक वार उसकी ओर झाँक लेने के वाद फिर चलता वना। वे वुआ-भतीजे जव अदृश्य हो गये तव मेना ने एना से पूछा—क्या तुमने पुण्डरीक वावू से कुछ कहा था? आज देखती हूँ कि उन्होंने अपना वह पेटेंट कोट उतार कर एक सादा कोट पहन लिया है। हाथ में उनके जो सात-सात अँगूठियाँ पडी रहा करती थी, उन्हे भी उन्होंने उतारकर रख दिया है।

पुण्डरीकाक्ष के इस परिवर्तन की ओर एना का भी ध्यान गया था। उसने खुश होकर कहा—मैंने कुछ कहा नही। हम लोगो के साथ-सग के कारण उनकी रुचि अव कुछ भले-आदमियो की-सी हो रही है। अभी तक गुडो की तरह के वाल कान के नीचे तक लटकाये जाते है। ये शायद हमारे वाक्य-वाण चले विना न कटवाये जायँगे।

मेना ने मुँह से कोई वात न निकालकर मुस्करा भर दिया। उसकी मुस्कराहट देखते ही एना खिलखिलाकर हँसने लगी।

लौटकर घर पहुँचते ही पुण्डरीकाक्ष कल की तैयारी के लिए निकल पडा।

दूसरे दिन सवेरे चार रसोइए आये। वे चारो आदमी खाने योग्य सामग्रियाँ तैयार करने के लिए नियुक्त कर दिये गये। निमत्रण था कुल चार आदमियो का। उन सवने गैस और विजली के चूल्हे जलाकर रसोई चढा दी। उन लोगो को इक्कीस प्रकार का भोजन तैयार करने की आज्ञा दी गई थी। इससे सवेरे से ही कार्य्य आरम्भ किये विना रात को आठ वजे तक खिला देना कैसे सम्भव हो सकता था।

दस वजे तक पुण्डरीकाक्ष वाज़ार करके लौटा। नया वाज़ार और म्युनिसिपल मार्केट से वह तरह-तरह की मछलियाँ और वकरे का मास ख़रीद ले आया। वाज़ार में जितने प्रकार की भी अच्छी-अच्छी मछलियाँ दिखाई पडी है, उनमे से एक भी नही छूटने पाई।

बाज़ार मे जितने प्रकार के फल और मेवे मिल सके है, वे सब भी ख़रीद लिये गये थे। कई प्रकार की उत्तमोत्तम खाद्य सामग्रियो के लिए बयाना दिया गया था, उन सबके दूसरे वक्त आने की बात थी। म्युनिसिपल मार्केट की सबसे बडी और मशहूर हलवाई की दूकान मे पिस्ता और बादाम की बर्फी का आर्डर दिया गया। बडा बाज़ार का मारवाडी भोजन भी मँगवाया गया। बडा बाज़ार से तरह-तरह के अचार, बीरभूम का मुरब्बा तथा पापड की दूकान से बीकानेर, हापुड तथा मिर्ज़ापुर का पापड खरीदकर लाने मे भी भूल नहीं होने पाई।

दूसरे वक्त एक गाडी भरकर फूल आया। म्युनिसिपल मार्केट, बडा बाजार और जोडासाँको मे जितने प्रकार के भी फूल बिकते थे, वे सभी ख़रीदे गये थे।

कलकत्ता के कलाभवन के चार लब्धप्रतिष्ठ शिल्पी नियुक्त किये गये थे पुण्डरीकाक्ष का घर सजा देने के लिए। पुण्डरीकाक्ष ने उनसे कह दिया था कि आप लोग अपनी रुचि के अनुसार अच्छे से अच्छे ढग से मेरा घर सजा दीजिए, रुपये की ओर ध्यान न दीजिएगा।

चित्रकला मे कुशल शिल्पी दोपहर से ही घर सजाने मे लग गये।

आज पुण्डरीकाक्ष कितना अधिक कार्य्यसलग्न था, इसका कुछ ठिकाना नही था। वह दौड-दौडकर सारा मकान देखता फिरता था, जिससे कही किसी प्रकार की कमी न रह जाय या कही कोई किसी प्रकार का दोष न निकाल दे। कभी वह दौडता हुआ रसोई-घर में जाता, कभी भडारे के घर मे जाता, कभी जिस कमरे मे भोजन कराने की व्यवस्था थी, उसमे जाता और कभी निमत्रित व्यक्तियो के बैठालने के लिए जो कमरा नियत था, उसमे जाता। इस प्रकार वह घर भर मे नाचता फिरता था और बार-बार देखा करता था कि सब ठीक है या नहीं, ठिकाने से बन रहा है या नही।

साँझ होते-होते पुण्डरीकाक्ष का सारा आयोजन सम्पूर्ण हो गया।

तब उसने झटपट स्नान किया, कपडे बदले और बुआ से कहा--बुआ जी, चलो, इन लोगो को अगवानी करके ले आवे।

बुआ जी शीघ्र ही साफ कपडा पहनकर तैयार हो गई। उसके बाद वे बुआ-भतीजे राजाबहादुर के यहाँ पहुँचे।

राजाबहादुर के यहाँ पहुँचते ही इन लोगो ने देखा कि वे सब आने के लिए तैयार है। इन्हे देखते ही राजाबहादुर कहने लगे--तुम लोग फिर कष्ट करके ऐसी रात में आये हो? हम लोग तो आ ही रहे थे। अच्छी बात है, आगये हो, तो अच्छा ही हुआ। चलो, अब चला जाय।

वे सब लोग रवाना हो गये। राजाबहादुर और मैना जब भास्कर के कमरे के सामने आये तब उन दोनो ही पिता-पुत्री के मन में न जाने कैसी लज्जा-सी आ गई। लज्जा इस कारण आ रही थी कि भास्कर को छोडकर उन सबको निमत्रण दिया गया था। परन्तु भोज था दूसरे के कमरे में। उससे यह भी नही कहते बनता था कि हमारे घर मे एक व्यक्ति और रहते है, जिन्हें हम लोगो के साथ में निमत्रित करना आवश्यक है, अन्यथा बहुत भद्दा मालूम पडेगा। मैना ने एक बार भास्कर के कमरे की ओर ताककर देखा। भास्कर दिखाई नही पडा। उसकी छाया भर दिखाई पडी। वह टेबिल पर झुका हुआ पढ रहा था। मैना का मुख गम्भीर हो उठा।

फाटक के बाहर पैर रखते ही निमन्त्रित व्यक्तियो ने देखा कि पुण्डरीकाक्ष का सुन्दर मकान इतनी सुन्दरता के साथ सजाया गया है कि मानो विवाह की रात्रि मे नववधू का श्रृङ्गार किया गया हो। द्वार पर फूल पत्तियो का एक सुन्दर तोरण बनाया गया था। उसके दोनो बगल मङ्गलघट स्थापित किये गये है और केले लगाये गये थे। घटो मे स्वस्तिक का चिह्न बना हुआ था और उनके गलो में मालायें लटक रही थी। मुख मे शीर्ष-सहित कुशा खोसे हुए थे। मकान भर मे जितने भी झाड लगे हुए थे, वे सब जला दिये गये थे। उस

सबकी जगमगाती हुई रोशनी मे सफेद पत्थर का वह मकान अपरूप शोभा धारण किये हुए था। फूलो के तोरण मे बिजली के छोटे छोटे रगीन बल्ब जल रहे थे, मानो रग के बिन्दु से नववधू के ललाट मे विवाह-काल का सिन्दूर लगाया गया हो।

सफेद पत्थर की सीढी थी। उसकी पहली सीढी पर खिला हुआ लाल रग का एक कमल बनाया गया था। उस कमल के ऊपर कमल-जैसे दो चरण अकित थे। उसके बादवाली सीढी पर हसो का जोडा अकित था। बाद को क्रमश एक सीढी पर एक जोडा मछलियाँ और एक पर एक शङ्ख तथा उसके आस-पास दो जलते हुए प्रदीप अकित किये गये थे। अलक्त के रग से सफेद पत्थर के ऊपर ये सब चित्र अकित किये गये थे। चार सीढियाँ पार करने के बाद चबूतरा था। उस पर भी तरह-तरह की बहुत ही कुशलतापूर्ण चित्रकारी की गई थी।

मेना आदि ने देखा कि मकान का मेल लगाकर द्वार-द्वार और खिडकी-खिडकी पर सफेद सिल्क के पर्दे टाँगे गये है।

पुण्डरीकाक्ष उन सबको साथ मे लिये हुए घूम-घूमकर सारा मकान दिखलाने लगा। सारा का सारा मकान साफ-सुथरा था, दमदमा रहा था। स्नान-घर, रसोईघर आदि देखने ही योग्य थे, नवीन से नवीन आवश्यकताओ की पूर्त्ति के सभी प्रकार के साधनो से पूर्ण थे। किसी कमरे मे पढने-लिखने की व्यवस्था की गई थी, मेज़-कुर्सी आदि सजाकर लगाई हुई थी। उसके पास के ही कमरे की सुन्दर शेल्फो के ऊपर विभिन्न विषयो की चुनी हुई पुस्तके रक्खी हुई थी। दो बैठकें थी, जिनमे फर्श भी पटा था और चेयर, कोच आदि भी पडे थे। बैठको की सजावट से गृहस्वामी की धनशालिता के साथ ही साथ उसकी कलात्मक रुचि का भी परिचय मिलता था। इन दोनो बैठको की सजावट पुण्डरीकाक्ष ने ठाकुरद्वारा तथा कलकत्ते के बहुत-से बडे आदमियो की बैठके देखकर की थी।

पुण्डरीकाक्ष के मकान में जो फर्नीचर था वह भी अधिकाश सुदूर-नगर के वहुत ही कलाकुशल शिल्पी की देख-रेख मे आर्डर देकर वनवाया गया था। दीवारो पर वहुत ही सुन्दर-सुन्दर और भावपूर्ण चित्र टँगे हुए थे, देखने से जान पडता था कि यहाँ स्त्रियो की किसी प्रदर्शनी का आयोजन किया गया है। ये चित्र सख्या में भी इतने अधिक थे कि इन्हें देखते-देखते आदमी दोपहर भर का समय तो बिता ही दे सकता था।

राजाबहादुर ने इस वात की आवश्यकता का अनुभव किया कि ऐसे अवसर पर पुण्डरीकाक्ष को कन्याओ के साथ में अकेला ही छोड देना उचित है। इससे उन्होंने कहा—मैं एक दिन सारा मकान देख गया हूँ। तुम लोग घूम-फिरकर देख आओ, मै यहीं बैठता हूँ। बुढाई का शरीर है, अब मुझसे इतना तो चला जाता नही।

राजाबहादुर बैठक में बैठ गये। मकान में जितने कमरे थे, उन सबमें पखे तो चल ही रहे थे। एक नौकर ने आकर चाँदी की नई फरशी उनके सामने रख दी। उस पर कस्तूरी से सुवासित अम्बरी तम्बाकू चढी हुई थी। राजाबहादुर ने नैचा मुह में लगा लिया और वे फूँक पर फूँक मारने लगे। इधर पुण्डरीकाक्ष मेना और एना को मकान का बाकी हिस्सा दिखलाने के लिए ले गया।

मकान की सबसे पहली मजिल मे पुण्डरीकाक्ष का कार्य्यालय और पुस्तकालय था। दूसरी मजिल में दो बैठकें थी। तीसरी मजिल मे दो शयनागार थे। मेना आदि को लिये हुए पुण्डरीकाक्ष राजाबहादुर के पास से चलकर सीधे तिमजिले पर गया। इस मजिल के दोनो ही कमरो में एक-एक वहुत ही चिकनी और मज़बूत लकडी के पलग पडे थे। उन पलगो पर समुद्रफेन की तरह के सफेद बिछौने बिछे थे। हर एक कमरे मे एक वगल एक-एक ड्रेसिंग टेबिल और उनके पास एक-एक कुर्सी रक्खी हुई थी। हर एक कमरे से मिला हुआ एक ड्रेसिंगरूम और एक वाथरूम था।

पुण्डरीकाक्ष ने अपने सोने के कमरे मे केवल एक चित्र लगा रक्खा था। चित्र का कोई विशेप विषय भी नही था। परन्तु था वह बडा मनोरम। जल का जरा-सा नीले रग का आभास था। उसके ऊपर लाल रग का एक अधखिला कमल का फूल था। वह ज़रा-सा झुक गया था। देखने मे वह ऐसा जान पडता था कि मानो किसी नव-विवाहिता वधू का लज्जा से लाल होकर झुका हुआ मुँह है, कमल के पत्ते के रग की सन की साडी के आधे घूँघट से ढका है वह। उसके पास ही मरकतमणि के पात्र के समान घने सब्ज रग का एक पत्ता है, जिसके ऊपर मुक्ताफल के समान एक बूंद जल ढलमला रहा है। उस पत्ते के नीचे ही मस्तक पर छाता-सा लगाये हुए एक वक अपनी लम्बी-लम्बी टाँगो का प्राय आधा भाग जल में डुबाये खडा है, जल के ऊपर मानो स्वेतवर्ण का एक शंख तैर रहा है।

यह चित्र देखकर मेना ने कहा--आपके यहाँ सभी कुछ सुन्दर है। उनमें से यह कमल और वक का चित्र तो बहुत ही उत्तम है। आपके यहाँ जितनी भी चीजें देखने मे आई है, यह चित्र मुझे उन सभी से अधिक सुन्दर मालूम पडा है। आपने इस चित्र को भीड मे खो नही जाने दिया, इसे बिलकुल अलग लगा रक्खा है, यह आपकी सुबुद्धि और कलात्मक रुचि का परिचायक है।

मेना के मुख से निकले हुए इन प्रशसापूर्ण वाक्यो ने पुण्डरीकाक्ष को हर्ष से गद्गद कर दिया। उसने यह अनुभव किया कि अब मेरा जीवन और उद्योग सार्थक हो गया। कृतार्थ होकर उसने कहा--यह चित्र मैंने आर्डर देकर अकित करवाया है। कवि हाल की गाथा सप्तशती में इस प्रकार का एक वर्णन मैंने पढा था।

एना ने कहा--आपका मकान देखकर मुझे मृच्छकटिक की वसन्त-सेना के घर का वर्णन स्मरण हो आता है। आपने विलासिता की इतनी सामग्रियाँ किस लिए एकत्र कर रक्खी है?

पुण्डरीकाक्ष ने मेना की ओर ताकते हुए कहा---यह सब सुख-सामग्रियाँ जो यहाँ प्रस्तुत है, उनका अणुमात्र भी मेरे लिए नही है। मैंने इस घर में एक दिन एक व्यक्ति का लक्ष्मी के रूप मे स्वागत करने की दुराशा मन में पाल रक्खी है। यद्यपि वह एक ऐसी कामना है, जिसकी पूर्त्ति सम्भव नही प्रतीत होती; किन्तु दैवयोग से यदि हो गई तो इन सामग्रियों से उन्ही की पूजा करूँगा। यह सब उनकी पूजा के ही उपकरण है, मै तो केवल पुजारी भर हूँ।

एना हँसती हुई बोली---तब तो लक्ष्मी को शीघ्र ही आवाहन कर ले आइए, हम लोगो को भी एक दिन निमन्त्रण खाने को मिल जायगा।

पुण्डरीकाक्ष गम्भीर हो गया। मेना के मुँह की ओर मुग्ध-दृष्टि से ताकते हुए उसने कहा---अब शीघ्र ही किसी दिन मै लक्ष्मी के दरबार में अपनी प्रार्थना उपस्थित करूँगा।

पुण्डरीकाक्ष की दृष्टि में कुछ मोह का आवेश देखकर मेना उद्विग्नता का-सा अनुभव करने लगी। परन्तु उसके मन मे यही कल्पना उदित हुई कि शायद पुण्डरीकाक्ष एना के साथ विवाह करने की इच्छा कर रहा है और इस सम्बन्ध में वह मेरी अनुमति तथा सहायता चाहता है।

एना ने भी मन ही मन कुछ-कुछ ऐसी ही कल्पना की। परन्तु पुण्डरीकाक्ष ने मेना की ओर, जो इस प्रकार सतृष्णभाव से दृष्टि-पात किया था, वह उसे अच्छा नही लगा था। वह और कुछ बोली नही, गम्भीर होकर चुपचाप ही रह गई।

मेना ने जैसे ही देखा कि एना गम्भीर होती जा रही है, वैसे ही वह उतावली के साथ बोल उठी---चलिए, चौमञ्जिला भी देख आये। देखें, वहाँ क्या-क्या है ?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा---वहाँ इस समय जाने की आज्ञा नही है। एकदम से भोजन के ही समय चलना होगा।

मेना ने कहा—तो चलिए, जहाँ बुआ जी है, वही चलें ! वे तो दिखलाई ही नही पड रही है।

मेना और एना को लिये हुए नीचे उतरते-उतरते पुण्डरीकाक्ष ने कहा—बुआ जी भाण्डार-गृह मे है। राजावहादुर से लज्जित होकर वे भाग गई है।

मेना आदि को बुआ जी के पास छोडकर पुण्डरीकाक्ष राजावहादुर के पास लौट आया।

ज़रा देर के वाद ही वहाँ मेना और एना भी आईं। पुण्डरीकाक्ष ने जैसे ही देखा कि वे आ रही है, वैसे ही वह उठकर खडा हो गया और उनका स्वागत करते हुए कहने लगा—तो अव अनुग्रह करके भोजन के लिए चलिए, थारियाँ लग चुकी है।

राजावहादुर ने कहा—और कौन-कौन से लोग निमन्त्रित है ? क्या वे सब आ गये है ?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—और कोई भी नही निमन्त्रित है। आप लोगो के साथ भला मै किसी दूसरे को निमन्त्रित कर सकता हूँ ? पहले मै जिस आफिस मे कार्य्य किया करता था, वहाँ के वावुओ को एक दिन निमन्त्रित करना है, किन्तु उनके लिए वाद को किसी दिन प्रबन्ध कर दिया जायगा। आज केवल आप लोगो को ही ले आकर मै पहले-पहल गृह-प्रवेश कर रहा हूँ।

दूसरा कोई अपरिचित व्यक्ति नही निमन्त्रित किया गया है, यह जानकर राजावहादुर, मेना और एना सभी ने वहुत-कुछ शान्ति और स्वच्छन्दता का अनुभव किया। वे सभी प्रसन्न-मन से भोजन के लिए चलने को तैयार हो गये। वे लोग उस समय बडे कौतूहल मे थे। उनके मन मे यह वात आ रही थी कि पुण्डरीकाक्ष ने अपने घर की सजावट के लिए जव इस तरह का अद्भुत आयोजन किया है तो हम लोगो के लिए भोजन उसने कितना सुन्दर और स्वादिष्ठ वनवाया होगा। केवल तीन आदमियो के स्वागत के लिए जो इस तरह की

धूम-धाम, इस तरह का विराट् आयोजन चारो ओर किया गया है, इससे यह नही मालूम पडता कि भोजन इतनी ज्यादा तैयारी के साथ न बनाया गया होगा।

पुण्डरीकाक्ष निमन्त्रित व्यक्तियो को लिये हुए चौमजिले पर गया। उसके मकान की हर एक मज़िल पर दो-दो बडे-बडे कमरे, कमरो की दोनो बगल दो बरामदे और हर कमरे से मिला हुआ एक ड्रेसिंग-रूम और एक बाथरूम बना था। चौमजिले मे भी केवल दो ही कमरे थे। एक कमरे के सामने जाकर पुण्डरीकाक्ष अतिथियो की ओर घूमकर खडा हो गया। विनम्रतापूर्ण लज्जा के साथ उसने कहा—यह मेरा पूजा का कमरा है। बाद को जूते उतारकर उसने उस कमरे में प्रवेश किया।

पुण्डरीकाक्ष की देखा-देखी अभ्यागतो ने भी जूते उतारकर कमरे में प्रवेश किया। उन सबने सोच रक्खा था कि कमरे में प्रवेश करने पर सिंहासन पर प्रतिष्ठित कोई देव-विग्रह देखने में आयेगी। उन लोगो ने देखा कि कमरे भर मे केवल सफेद रग का शीशा ही शीशा है। कमरे की दीवार शीशे की थी, उसकी खिडकियाँ शीशे की थी। शीशे के टुकडो को सँभाल रखने भर के लिए लकडी या लोहे के फ्रेम लगे हुए थे। कमरे का फर्श सगमरमर का था और उसकी छत स्लेट की हलकी टाली से मन्दिर की चूडा के आकार में छाई हुई थी। जहाँ पर छत और दीवार का सयोग हुआ था वहाँ स्प्रिंग रोलर लगाकर रेशम के पर्दे लपेट दिये गये थे। ये पर्दे दीवारो से बिलकुल मिले हुए थे।

पुण्डरीकाक्ष के पूजा के इस कमरे में कोई अधिक सामान नही था। कमरे के ठीक बीच में केवल एक मोटा-सा कीमती कालीन बिछा हुआ था, वह आसन से कुछ बडा किन्तु खाट से छोटा था। उस कालीन के सामने ही एक छोटा-सा कुछ नीचा ही सगमरमर का स्टूल था। स्टूल के ऊपर दो-तीन पुस्तकें रक्खी हुई थी। स्टूल के पास था

एक सफेद पत्थर के ऊपर एक रंगीन पत्थर और उसके ऊपर सूती काम किया हुआ बड़ा-सा पुष्प-पात्र, जिस पर फूल-पत्ती और चिड़ियों आदि का आकार अङ्कित था। उस पुष्पपात्र में थोड़े से पुष्प उस समय भी रक्खे हुए थे। पुष्पपात्र के पास ही पीतल की एक खूब धुली-मँजी चमचमाती हुई धूपदानी थी और थोड़ा-सा गुग्गुल और अगर था। धूपदानी में डाली हुई ये वस्तुएँ उस समय भी सुगन्धित धुआँ निकाल रही थीं। पास ही चाँदी की एक कामदार कटोरी भी थी। उसमें घिसा हुआ चन्दन, कस्तूरी और कुमकुम रक्खा हुआ था।

जिस स्थान पर पूजा की ये सब सामग्रियाँ रक्खी हुई थीं, वहीं एक बहुत बढ़िया शेल्फ था, जिसके ऊपर गड्डी के गड्डी सजाकर रक्खे हुए थे भिन्न-भिन्न प्रकार के धर्मशास्त्र, उपनिषद, गीता, श्रीमद्भागवत, बाइबिल, कुरान का बँगला-अँगरेजी अनुवाद, तालमुद, अवस्ता, ग्रन्थ साहब, इमीटेशन ऑफ क्राइस्ट, बहुत-से देशी-विदेशी सन्तों की वाणियाँ, दोहे, रामकृष्णकथामृत, चीन के धूप, लाउत्स और कनफूसिअस की वाणी, गीताञ्जलि, गीतिमाला गीतावलि, नैवेद्य, ब्रह्मसंगीत आदि-आदि।

कमरे के एक दूसरे किनारे पर एक बहुत बड़ा-सा दूरबीन था। उस दूरबीन के पास ही एक और छोटा-सा शेल्फ था, जिसमें अँगरेजी एस्ट्रानमी, या ज्योतिषशास्त्र के तथा नक्षत्र-विज्ञान-सम्बन्धी देशी-भाषाओं के भी ग्रन्थ, आकाश-मण्डल के नक्शे, चार्ट आदि रक्खे हुए थे। कमरे के एक कोने में सङ्गमरमर के फलक के ऊपर काले पत्थर के अक्षरों में लिखा था—

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय,
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय,
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय॥

अभ्यागतों को कमरे भर में कहीं कोई भी देव-मूर्त्ति न दिखाई

पड़ी। इससे वे चकितभाव से जिज्ञासामयी दृष्टि से पुण्डरीकाक्ष के मुँह की ओर ताकने लगे।

पुण्डरीकाक्ष ने विनीतभाव से कहा—इस कमरे में मै देश की सभी जातियो की उपासना के पात्र एक-मात्र भगवान् की उपासना करने का प्रयत्न किया करता हूँ। भगवान् का दिया हुआ उजाला और वायु जिससे काफी मिल सके और विश्वमन्दिर की शोभा किसी प्रकार भी आच्छादित न रह सके इसी मतलब से इस कमरे को मैंने शीशे से वनवाया है। जब कभी धूप या हवा के कारण कष्ट मालूम पडने लगता है तव ये पर्दे गिराकर आड कर देता हूँ। रात्रि में आकाश निर्मल रहने पर मैं बैठे-बैठे देखता रहता हूँ कि विश्वेश्वर किस प्रकार के अद्भुत ढंग से निरन्तर गेद खेलते रहते है। विस्मय के आवेश में आकर उनकी यह विचित्र क्रीड़ा देखते-देखते मै मुग्ध हो जाता हूँ। इस प्रकार का ध्यान ही मेरा पूजा-पाठ है, वन्दना है, स्तुति है। इसी से मेरा चित्त शुद्ध होता है, इसी से मेरी चित्तवृत्ति को संकीर्णता से विमुक्त होने में सहायता मिलती है।

वह कमरा देखकर तथा पुण्डरीकाक्ष की वाते सुनकर अतिथि लोग वहुत सन्तुष्ट हुए। प्रशसा से उनका हृदय पूर्ण हो उठा। श्रद्धा से उनका हृदय इतना अभिभूत था कि वे लोग मुह से कोई वात निकाल नही सके। चुपचाप ही कमरे से निकल आये।

पुण्डरीकाक्ष उन लोगो को साथ में लिये हुए पासवाले कमरे के सामने जाकर उपस्थित हुआ। उस कमरे का द्वार वन्द था। पुण्डरीकाक्ष के ज़रा-सा धक्का देते ही द्वार खुल गया और हजारो वत्तियो की ज्योति आ-आकर उन सवके मुख पर पडने लगी। आगन्तुक लोग उस कमरे की शोभा देखकर चकित हो गये। उन्हे ऐसा जान पडने लगा कि कमरे में ये जो हजारो बत्तियाँ जल रही है, ये सव मानो प्रकाश-फूल है, खिले हुए है। वे यह अनुभव करने लगे कि यह कोई परी-राज्य है, कोई स्वप्न-पुरी है या माया-मन्दिर है।

राजाबहादुर अपनी कन्याओ को लिये हुए पुण्डरीकाक्ष के पीछे-पीछे उस कमरे में प्रविष्ट हुए। सारा कमरा आइनो का बना हुआ था। आइनो से दीवारें बनी थी, आइनो से छत बनी थी, आइनो से ही खिडकियाँ और दरवाज़े बने थे। कमरे की फर्श तक मोटे शीशे के आइनो से बनी थी। कमरे की छत से बिजली के तीन झाड लटक रहे थे। दीवारो पर भी कई दीवारगीरे जल रही थी। उन सबका प्रकाश एक-एक आइने में प्रतिफलित होकर अगणित गुणा अधिक होकर चमचमा रहा था। कमरे की दीवारो पर, छत पर, फर्श पर जहाँ भी दृष्टि जाती, वहाँ केवल ज्योति ही ज्योति बिखरी हुई दिखाई पडती। इससे सारा कमरा झकझक कर रहा था। उस समय ऐसा मालूम पड रहा था, मानो समस्त नक्षत्र-मण्डल, समस्त तारे, दल बनाकर आकाश से उतर आये है और इसी कमरे में प्रविष्ट हो गये है। या यों कहिए कि कमरे की चारों दीवारो तथा फर्श पर और छत के नीचे के भाग में प्रकाश के फूल बहुत ही अधिकता के साथ खिले हुए है। मानो प्रकाश का, फव्वारा छूट रहा था और उसमे से निकल निकलकर ज्योति की धारा सर्वत्र फैल रही है। उस अवस्था में कमरे में प्रवेश करने पर राजाबहादुर आदि का दृष्टि-विभ्रम होना स्वाभाविक ही था। उनमें से कोई यह नही निर्णय कर पाता था कि मै सीधा खडा हूँ या मस्तक नीचे की ओर करके पैर ऊपर किये हुए हूँ? कमरे मे अकेला हूँ या कई आदमियों के बीच में हूँ? कहाँ हूँ? द्वार के पास हूँ, एक किनारे पर खडा हूँ या कमरे के मध्य मे हूँ, इस विषय मे भी उन सबको घोर सन्देह हो रहा था। कमरे का द्वार कौन-सा है और किस ओर है, इस बात का निर्णय करना तो उन सबके लिए एक प्रकार का गोरख-धन्धा ही था क्योंकि देखने मे मालूम पड रहा था, मानो हज़ारों दरवाज़े प्रत्येक दिशा में खुले हुए है। उस समय केवल चार आदमियों ने कमरे मे प्रवेश किया था परन्तु देखने में ऐसा जान पड रहा था, मानो हज़ारों नर-नारी यहाँ

आकर विराजमान है। उन सबकी प्रतिच्छाया अनन्त और असख्य हो उठी थी और जहाँ तक दृष्टि जाती वहाँ तक वह दिखाई पड रही थी। कदाचित् इसी प्रकार के दर्पण के किसी गृह में प्रवेश करने पर दुर्योधन का दर्प चूर्ण हुआ था।

कमरे में प्रवेश करके पहले कुछ समय तक राजाबहादुर आदि सभी लोग विस्मय से अभिभूत हुए बैठे रहे। किसी के मुँह से कोई शब्द नही निकल रहा था। परन्तु उसके बाद ही एना के कण्ठ से खिलखिला करके हँसी का फौवारा छूट पडा। सभी की आँखें उसके मुँह की ओर फिर गई, जान पडा कि लाख-लाख भौंरे कमल का मधुपान करने के लिए उत्कठित हो उठे है। एना ने हँसते-हँसते कहा---यह कैसा बढिया कमरा बनवाया है आपन! वाह, कैसा मजा है!

पुण्डरीकाक्ष ने कहा---आइए, अब भोजन के लिए चलिए। भोजन ठण्डा होता जा रहा है।

सभी लोग विस्मय से विह्वल होकर चारो ओर दृष्टि दौडाने लगे। वे सब यही जानना चाहते थे कि भोजन के लिए कहाँ प्रबन्ध किया गया है। पहले-पहल कमरे में प्रवेश करने पर उन लोगो की दृष्टि वहाँ पर की गई रग-बिरगी रोशनी पर ही पडी थी। बाद को उन लोगो ने विस्मय-विमुग्ध होकर अपनी अगणितगुणा बढी हुई छाया पर विस्मय-विमूढ दृष्टि लगाई। परन्तु अब उन लोगो ने देखा कि पासवाले कमरे मे फर्श पर फूलो का बिस्तर लगा है। बिस्तर कोई इतना छोटा भी नही है। कमरे का बहुत-सा अश वह घेरे हुए है। वर्षा-ऋतु में खिलनेवाले कदम्ब, केवडा, कमल तथा अन्यान्य प्रकार के छोटे-बडे मनोहर फूलो से सारा स्थान ढँका है और उन सबकी मनोहर सुगन्ध से समस्त वायु-मण्डल आमोदित है।

पुण्डरीकाक्ष ने जैसे ही एक स्विच दबाई, विभिन्न प्रकार के रगो के खाने और फूल-पत्ती तथा बेल-बूटा आदि कटे हुए चार प्रकाश के छाया-रूपी चौके फर्श पर आ पड़े। रगीन प्रकाश की वह छाया देखने पर,

जिस पर कि खाने कटे थे, ऐसा अनुभव हुआ कि मानो कोई यहाँ गलीचे के चार आसन बिछा गया है।

पुण्डरीकाक्ष ने मुस्कराते हुए कहा—आज आप लोगो को इसी प्रकाश के आसन पर बैठकर भोजन करना होगा। आप लोग इन पर बैठने की कृपा कीजिए।

कौतुक का अनुभव करते हुए सभी लोग जाकर चुपचाप एक छाया-चित्र पर खडे हुए। वहाँ खडे होते ही प्रकाश के रग का बेल-बूटा उनमें से प्रत्येक के शरीर पर जाकर पडा। इससे इन सभी के शरीर और मुख पर इस प्रकार की विचित्रता आगई, मानो इन लोगो ने शरीर भर में भिन्न-भिन्न रगो के गोदने गोदवा रक्खे है। एना ने पहले तो दूसरो के शरीर की विचित्रता देखी; किन्तु बाद को पास ही टँगे हुए आइने में अपनी छाया देखी और अपना वह विचित्र रूप देखते देखते खिलखिलाकर हँस पडी।

पुण्डरीकाक्ष ने एक और स्विच दबाई। तुरन्त ही फूलो के बिस्तरे के बीच मे चार बहुत ही उज्ज्वल बत्तियाँ जल उठी। इन बत्तियो के उज्ज्वल प्रकाश में लोगो के शरीर के ऊपर की वर्णच्छटा बहुत कुछ लुप्त होकर फीकी पड गई। अब उन लोगो ने देखा कि वहाँ फूलो के जो आसन लगे हुए है, उनके बीच-बीच मे सफेद पत्थर की थालियाँ, कटोरे और गिलास आदि सजाकर रक्खे हुए है और उन सबमें कायदे से सजा-सजाकर तरह-तरह की खाद्य सामग्रियाँ रक्खी हुई है। नीचे की ओर उजाला नही पहुँच पाता था, इससे ये सब चीजें अभी तक नही दिखाई पड रही थी, अब नीचे की बत्तियाँ जल उठने पर झकझकाकर दिखाई पडने लगी।

फूलो के आसन पर एक ओर बैठे राजाबहादुर और उनके पास बैठी मेना। उन पिता-पुत्री के आमने-सामने एना और पुण्डरीकाक्ष बैठे। थाल की ओर देखते ही एना ने कहा—क्या किया है आपने यह? कितना भोजन परोसा गया है? उस दिन तो हम लोगो से आप ही खूब

वढ-वढकर कह रहे थे कि मेरे लिए जो भोजन-सामग्री जुटाई गई है उसे मैं क्या, दशानन भी नही खाकर समाप्त कर सकते। उस दिन आपको कुम्भकर्ण की याद नही आ सकी थी। इधर आज आपने यह जो इतना भोजन थालो में लाद रक्खा है इसे भला कोई खा सकेगा? ज़रा बतलाइए तो कि आपने यह आयोजन हिडिम्बा के लिए किया है या घटोत्कच के लिए?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—भक्त देवता के भोजन के लिए कितने प्रकार के उपकरण एकत्र करता है। देवता तो उस भोग पर केवल दृष्टिपात भर करके उसे प्रसाद के रूप में परिणत कर देते है। मैंने भी केवल भोग लगा दिया है, आप लोग इन सबमें से जिस किसी भी चीज़ में हाथ लगा देंगे, उसी से मैं समझूँगा कि मेरा परिश्रम सार्थक हो गया, मेरे दरिद्र के घर की भी यह तुच्छ सामग्री धन्य होगई।

एना ने फिस-फिस करके पुण्डरीकाक्ष के कान में कहा—वाक्य-वागीश, बातो में आपसे कोई भी पार न पायेगा।

राजावहादुर ने समझ लिया कि हम लोगो ने जो उस दिन निमन्त्रित करके भोजन पुण्डरीकाक्ष को कराया था, उसका यह उलटा जवाव है। उसने भी तय कर लिया है कि वदला चुकाने में हम एक हाथ आगे ही रहेंगे। इसी लिए वे कुछ वोले नही, चुपचाप भोजन करने लगे। मुँह में ग्रास डालकर उन्होने कहा—सब चीज़ें चख-चखकर देख लेनी चाहिए, कण-कण खाते-खाते ही पेट भर जायगा।

पिता की देखा-देखी मेना ने भी भोजन करना आरम्भ कर दिया। परन्तु एना हाथ सिकोडे ही वैठी रह गई।

पुण्डरीकाक्ष ने पूछा—आप तो थाल में हाथ ही नही डाल रही है?

एना ने कहा—ठहरिए। पहले ज़रा गिन कर देख लूँ कि कितने प्रकार का भोजन वना है।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—गिनने की आवश्यकता नहीं है, मै ही बतलाये देता हूँ। कुल मिलाकर सौ प्रकार का है।

वातचीत और हँसी-मजाक मे भोजन समाप्त हुआ। धोवी के यहाँ से इस्तिरी करके तुरन्त के आये हुए दगदगाते हुए सफेद कपडे पहने चार नौकर हाथ धुलाने के लिए तैयार थे। वे सब एक-एक गमछा, एक-एक वट्टी नया सावुन और एक-एक नया तौलिया लिये हुए खडे थे। उन सबने सबका हाथ धुलाया। तब वे लोग नीचे की बैठक में आकर बैठे। वहाँ नौकरो ने चाँदी की दो तस्तरियाँ लाकर रख दी, जिनमे पान और मसाला सजाकर रक्खा हुआ था। कस्तूरी से सुवासित अम्वरी तम्वाकू चढाकर राजा-वहादुर के सामने फिर रक्खी गई।

जरा देर की वातचीत के वाद राजावहादुर ने कहा—अब तो चलना चाहिए। भोजन के वाद विस्तरे की शरण लिय विना निर्वाह नहीं है।

पुण्डरीकाक्ष उठा और ढाका का सोने-चाँदी के तार का वना हुआ इत्रदान लाकर सबके सामने रख दिया। उसमे वहुत कीमती और उत्कृष्ट श्रेणी का महमहाता हुआ इत्र रक्खा था। सब लोगो ने उँगली डुवा कर जरा-ज़रा-सा इत्र लिया और उठकर खडे होगये।

मेना ने पुण्डरीकाक्ष से कहा—चलिए, ज़रा-सा वुआ जी से आज्ञा ले आये।

पुण्डरीकाक्ष मेना और एना को साथ मे लिये हुए वुआजी के पास गया।

वुआ ने पूछा—भोजन होगया विटिया? तुम लोगो के भोजन के आयोजन के लिए पुण्डरीकाक्ष कितना चिन्तित था। तुम्हे क्या-क्या चीज़ें अच्छी मालूम पडेगी, यह वह निश्चय नही कर पाता था, इससे कलकत्ते भर मे जितने प्रकार की चीज़ें मिल सकती है, उन सभी को एकत्र करने का उसने प्रयत्न किया है। तुम लोगो ने कुछ खाया तो है न विटिया?

मेना ने कहा—बुआ जी, शिष्टाचार प्रदर्शित करके पूछने की कोई आवश्यकता नही है। जितने प्रकार के खाद्य पदार्थ परोसे गये थे, उन सबमें से चुटकी-चुटकी निकालकर मुँह में डालने पर भी एक आदमी के खाये न खाया जाता। अच्छा, तो अब हम चलती है बुआ जी?

बुआ ने कहा—अच्छी बात है। बिटिया, अब चलो। बडी रात हो गई है। पुण्डरीक, जाकर इन लोगो को पहुँचा आओ।

एना हँसती हुई बोली—नही, पहुँचाने जाने की ज़रूरत नही है। हम लोग रास्ता खोजकर ठीक जगह पर पहुँच जायँगी।

पुण्डरीकाक्ष सबको साथ में लिये हुए जाकर उनके फाटक तक पहुँचा आया। अन्त में विदा लेने के लिए जब उसने मस्तक झुकाया और दोनो हाथ जोडकर मस्तक से लगाये हुए सबको प्रणाम किया, तब एना ने प्रफुल्ल-मुख से कहा—आज आपके घर में जो कुछ देखा और जो-जो चीज़ें खाईं, वे सब हमारे लिए चिरस्मरणीय रहेगी।

एना के मुख से प्रशसा के ये वाक्य सुनकर पुण्डरीकाक्ष कृतार्थ हो गया। वह जब लौटकर घर आया तब उसके हृदय में आनन्द की इस प्रकार की प्रबल तरगें उठी कि मानो नशे में चूर हो गया, उसके पैरो के नीचे से पृथिवी हट गई, उसके शरीर का सारा भार मानो जाता रहा, वह हलका होकर शून्य आकाश में उड़ उड़कर विचरण-सा करने लगा।

बारहवाँ परिच्छेद

दान और दान का बदला

पुण्डरीकाक्ष ने जिस दिन गृह-प्रवेश किया, उसके दूसरे ही दिन साँझ को वह राजाबहादुर के घर पर जा पहुँचा। साथ में वह उनके ऋण के सम्बन्ध के सारे कागज-पत्र भी लेता गया था। पहुँचते ही उसने आफिसवाले कमरे में जाकर राजाबहादुर से मुलाकात की।

पुण्डरीकाक्ष को देखते ही राजाबहादुर ने प्रसन्नभाव से उसका स्वागत किया और मुस्कराते हुए कहा—आओ, आओ! कल से हम लोग बराबर तुम्हारे ही सम्बन्ध में बातें कर रहे हैं। भगवान् की कृपा से तुम्हे इस प्रकार का अतुलित ऐश्वर्य मिल गया है, साथ ही इन्द्रजाल-रचना करने की तुममें अद्भुत रुचि और क्षमता है, कल से यही एकमात्र हम लोगो की चर्चा का विषय बन बैठा है। तुम्हारे हाथ में यह सब क्या है?

पुण्डरीकाक्ष उठकर खडा हो गया। राजाबहादुर के पास जाकर उसने उनका चरण-स्पर्श किया और चरणो के समीप वह सब कागज-पत्र रखकर कहने लगा—सेवा मे कुछ तुच्छ भेट ले आया हूँ, कृपा-पूर्वक वह स्वीकार करनी होगी।

पुण्डरीकाक्ष कौन-सी वस्तु भेट में ले आया है, यह जानने के लिए राजाबहादुर को कौतूहल हुआ। झुककर उन्होने पैर के पास से उन कागजो को उठा लिया और उन्हे खोलकर एक बार दृष्टि दौडाते ही वे बोल उठे—ये तो मेरे ही लिखे हुए दस्तावेज और प्रोनोट है। ये सब तुमने कहाँ से एकत्र कर लिये?

पुण्डरीकाक्ष का मुखमण्डल उस समय प्रसन्नता से विकसित हो उठा था। उसने कहा वह सारा ऋण मैने चुका दिया है।

राजाबहादुर क्षण भर चुपचाँपे कुछ सोचते रहे। बाद को उन्होने कहा—यह तुमने बडा अच्छा किया। सत्यनिधन एटर्नी ने मुझसे इस बात की चर्चा अवश्य की थी कि एक आदमी ने सारा ऋण खरीद लिया है। यह सुनकर पहले तो मैं घबरा उठा था। मेरे मन में यह बात आई थी कि सारा ऋण जब एक आदमी ने खरीद लिया है, तब वह किसी न किसी दिन आकर यह अवश्य कहेगा कि मेरे सारे रुपये चुका दो, अन्यथा उनके बदले में मैं तुम्हारी ज़मीदारी नीलाम करवा लूँगा।

ज़रा-सा विराम लेने के बाद राजाबहादुर ने कहा—सत्यनिधन ने उस समय तुम्हारा नाम नही बतलाया था। उसने मुझसे केवल इतना ही कहा था कि जिस आदमी ने यह ऋण खरीदा है, वह साइलक* की तरह का सूदखोर नही है। उसने यह भी कहा कि वह आपका शत्रु भी नही है, केवल हित-भावना से, बहुत-से महाजनो के तकाज़े और अपमान से आपको बचाने के ही विचार से, उसने सारा ऋण अकेले ही खरीद लिया है। परन्तु आज तक मैं यह नही जान पाया था कि वह खरीदार तुम्ही हो। यह बात यदि पहले मुझे मालूम होगई होती तो इतने दिनो तक निरर्थक चिन्ता का क्लेश मुझे न सहन करना पडता। खैर, यह बडा अच्छा हुआ कि सारे ऋण के तुम्ही महाजन होगये हो। अब मैं निश्चिन्त होकर तुम्हारा ब्याज और मूलधन धीरे-धीरे चुकाता रहूँगा। परन्तु ये सब दस्तावेज़ और प्रोनोट मेरे पास क्यो ले आये हो? ये सब तुम्हारे ही पास रहने चाहिए। इन्हें तुम रक्खे रहो।

---

*एक जहूदी महाजन, जिसने एक व्यापारी को वादे की अवधि समाप्त हो जाने पर रुपयो के बदले में शरीर का मांस काटकर देने को बाध्य किया था।

ज़रा-सा सकुचित-सा होकर पुण्डरीकाक्ष बोला---यह भी आपने अच्छा कहा। मैंने आपका सारा ऋण चुका दिया है तो क्या इसलिए कि महाजन बनकर आप पर रोब जमाऊँ? आपको चिन्ता से मुक्त करने के विचार से आपका ही होकर मैंने यह सारा ऋण चुकाया है। जितने भी दस्तावेज़ और प्रोनोट हैं, उन सब पर भरपाई लिखी हुई है, सूद असल सब वसूल दे दिया गया है। इसलिए आप तो ऋण से मुक्त हो गये हैं अब।

राजाबहादुर ने गम्भीर होकर कहा---हाँ, पहले के महाजनो से मै अवश्य ही ऋण-मुक्त हो गया हूँ, परन्तु तुम्हारा मै केवल इतने ही रुपयो के लिए नही ऋणी हूँ; बल्कि यह ऋण और भी कई प्रकार से बढ गया है।

पुण्डरीकाक्ष ने विनीत भाव से कहा---नही, नहीं, आपके ऊपर मेरा किसी प्रकार का भी ऋण नही है। आप पर किसी प्रकार की कृतज्ञता का भी भार नही है। आप कृपा-पूर्वक इन सबको ले लीजिए, तभी मै सुखी होऊँगा और समझूँगा कि मेरा सारा ऋण चुकता होगया।

पुण्डरीकाक्ष में इतनी अधिक सज्जनता है, यह देखकर राजाबहादुर चकित हो गये। उसके प्रति उनके हृदय मे श्रद्धा का भी बहुत अधिक भाव उदित हो आया। उन्होंने कहा---इतने रुपयो के दस्तावेज़ तुम मुझे मुफ्त में देने आये हो और स्वेच्छा से आये हो। तुम्हारी दान-शक्ति अपरिमित है। परन्तु तुम्हारा यह दान मै क्यो ग्रहण करूँ? मै तुम्हारा कौन हूँ?

पुण्डरीकाक्ष ने अपना लज्जित मुख नीचा करके धीरे से कहा---आप मेरे पिता के तुल्य है।

राजाबहादुर ने गम्भीर भाव से ही कहा---यदि मै तुम्हारे पिता के समान हूँ, तो मै तुम्हे एक उपदेश देता हूँ, उसे तुम स्मरण रक्खो। केवल दान ही करते रहने पर कुबेर का भी भाण्डार शून्य

हो जाता है। केवल व्यय करते रहने पर अन्नपूर्णा के भाण्डार में भी अभाव दिखाई पडने लगता है। तुम्हे कुछ रुपये मिल गये है। तुमने उन्हे इस प्रकार उपेक्षा के साथ व्यय करना आरम्भ कर दिया है। ऐसी दशा मे भला ये रुपये तुम्हारे पास कितने दिनो तक रुक सकेंगे ?

पुण्डरीकाक्ष ने फिर उसी प्रकार लज्जित भाव से कहा—आपसे सारी वातें कहने में मुझे सकोच मालूम पडता है। तो भी कहना पड रहा है कि यह जो कुछ व्यय मैंने किया है, यही मेरा अन्तिम व्यय है। यदि किसी दिन मेरे घर मे लक्ष्मी का पदार्पण होगा, तो वे ही अपने भाण्डार का भार ग्रहण करेंगी, उन्हे सव कुछ समर्पित करके मैं निश्चिन्त मन से अवकाश ले लूँगा।

राजावहादुर ने मुस्कराते हुए कहा—तो तुम्हारी उन लक्ष्मी का शुभागमन जव तक न हो जाय, तव तक प्रतीक्षा करते रहो। वाद को उनके आदेश के अनुसार कार्य्य करना। इस समय ये सव ले जाओ, कम से कम अभी इन्हे अपने ही पास रक्खो।

राजावहादुर की ये वाते सुनकर पुण्डरीकाक्ष लज्जा से गट-सा गया। मस्तक नीचा किये हुए उसने कहा—आपको दान करने की स्पर्द्धा से तो मैं यह सव ले नही आया। मैं आया हूँ चरणो में पुष्पाञ्जलि अर्पित करके प्रार्थना करने के लिए कि मेरी वहुत काल की सञ्चित आशा पूर्ण की जाय।

पुण्डरीकाक्ष की यह वात सुनकर राजावहादुर को वडा कौतूहल हुआ। उन्होने उत्सुक भाव से पूछा—कौन-सी तुम्हारी प्रार्थना और आशा है, जरा वतलाओ तो।

पुण्डरीकाक्ष ने लडखडाती हुई जवान से कहा—यदि आप अनुग्रह करके मुझे......

पुण्डरीकाक्ष अपनी वात समाप्त न कर पाया। यह देखकर उसके उपसहार के रूप में राजावहादुर ने कहा—अपनी कन्या दान कर दूँ ?

अपनी इस अभिलाषा की सूचना तो मैं तुम्हें पहले ही दे चुका हूँ। मेरी जहाँ तक धारणा है, मेरी कन्या को भी इसमे किसी प्रकार की आपत्ति न होगी। परन्तु कन्यादान करना होगा तो मैं ही तुम्हे दहेज़ दूँगा। मैं कन्या-विक्रय तो कर न सकूँगा?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—नही, नही, कन्या-विक्रय क्यो करेंगे? आपकी कन्या यदि कृपा करके मेरे घर जाने को तैयार हो तो अपने मन में यह धारणा लेकर चल सके कि मेरे पिता ऋण से मुक्त होकर निश्चिन्त हो गये हैं और जिसके घर मे उनका शुभागमन हो रहा है वह मेरे पिता का महाजन नही; वल्कि मित्र और आत्मीय हैं।

राजावहादुर ने दस्तावेजों को वढाकर पुण्डरीकाक्ष के सामने रख दिया और कहा—दान की इच्छा प्रकट करके ही तुमने अपने हृदय की उदारता और दयालुता का परिचय दिया है। इस प्रकार के परिचय से भी पहले हम तुम्हे अपने मित्र और आत्मीय के रूप में स्वीकार कर चुके हैं। इसलिए तुम उन्हे ले लो। इन्हे लेकर मैं अपनी ओर से तुम्हे दे रहा हूँ।

पुण्डरीकाक्ष ने सचमुच ही अत्यन्त दुःखित और क्षुब्ध होकर कहा—यदि ऐसी वात है तो प्रकारान्तर से आप यह कह रहे हैं कि मैं आपकी कन्या के योग्य नही हूँ। इस अवस्था मे मैं उन्हे प्राप्त करने की इच्छा न करूँगा, भले ही मेरा समस्त जीवन निरर्थक हो जाय। जिसका मैं सम्मान करता हूँ, जिसके प्रति श्रद्धा प्रकट करता हूँ और जिससे प्रेम करता हूँ, उससे मैं इस प्रकार की प्रार्थना कभी नही कर सकता कि वह एक अयोग्य व्यक्ति के साथ आजीवन के लिए वन्धन में आवद्ध हो जाना स्वीकार करे।

राजावहादुर का मुँह वन्द हो गया पुण्डरीकाक्ष की यह वात सुनकर। क्षण भर तक सोच-विचार करने के वाद उन्होंने कहा—अच्छा, तुम यदि ऐसा कह रहे हो तो शायद मुझे ले ही लेना पड़ेगा

इन्हे। परन्तु लेने का निश्चय करने से पहले ज़रा एना से भी पूछ लेना है कि इस सम्बन्ध मे उसकी क्या सम्मति है? उसके बाद मै अपने निश्चय की सूचना तुम्हे दूँगा।

पुण्डरीकाक्ष ने विनीत भाव से कहा--मैं आपसे मेना देवी के सम्बन्ध में बाते कर रहा हूँ। मेरी कामना मेना देवी को प्राप्त करने की है।

राजाबहादुर अत्यन्त ही आश्चर्य मे आगये। वे मानो अपनी श्रवण-शक्ति पर विश्वास नही कर पाते, इस प्रकार का-सा भाव व्यक्त करते हुए उन्होने पूछा--किसको? मेना को? मेरी बडी लडकी का नाम मेना है और छोटी का एना।

पुण्डरीकाक्ष ने धीमे स्वर से कहा--जी हाँ, मुझे यह मालूम है। मैंने भूल से नही कहा। आपकी ज्येष्ठा कन्या मेना देवी का ही पाणि-ग्रहण करने की मेरी कामना है।

पुण्डरीकाक्ष की इस बात से राजाबहादुर को इतना विस्मय हुआ कि वे पूरे मिनट भर तक मुँह से कोई बात ही नही निकाल सके। अवाक् होकर वे उसके मुँह की ओर ताकते रह गये। उन्हे सन्देह होने लगा कि पुण्डरीकाक्ष कही पागल तो नही हो गया है? यदि पागल न हो तो क्या कोई लाख-लाख रुपयो के दस्तावेज़ यो ही दे देना पसन्द करेगा या इस प्रकार आँखें बन्द करके ही रुपया पैसा फूँकता फिरेगा। इसके सिवा यह जो इतने दिनो से एना से प्रेम करके मेना से दूर-दूर रहता आया है और बाद को मेना के ही साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट कर रहा है, यह क्या, पागलपन का लक्षण नही है?

राजाबहादुर के मुखमण्डल पर विस्मय और सकल्प-विकल्प का भाव देखकर पुण्डरीकाक्ष ने कहा--मै यह जानता हूँ कि मै मेना देवी के योग्य बिलकुल ही नही हूँ। यदि वे या आप मुझे अयोग्य सिद्ध कर देते है तो इसके लिए मैं दुखी न होऊँगा। बात यह है कि मै बराबर

ही उन्हे अपनी पहुँच से बाहर समझता आया हूँ। मै यह समझता हूँ कि स्वप्न में भी वे मुझे नही मिल सकती, जीवन-पर्यन्त तपस्या करके भी उनके योग्य अपने को बनाने में समर्थ न हो सकूँगा। मेना देवी को मै पा सकूँ या न पा सकूँ, इससे कोई मतलब नही। ये दस्तावेज़ तो आपको लेने ही पडेगे। मै किसी प्रकार के लेने-देने के विचार से ये दस्तावेज़ आपको देने नही आया हूँ। आप मेना देवी के पिता है, आपकी मुझ पर दया रहती है, केवल इसी लिए आपको चिन्ता से मुक्त करने के विचार से मै इन सबको एकत्र करके ले आया हूँ।

राजाबहादुर ने मन ही मन यह निश्चय कर रक्खा था कि मेना का विवाह तो एक आदमी के साथ निश्चय हो ही चुका है, एना के ही विवाह के लिए एक योग्य वर की आवश्यकता है। यही बात सोचकर उन्होने पुण्डरीकाक्ष को अपने घर पर बुलाया था। उन्होने पुण्डरीकाक्ष के सम्बन्ध मे यह भी स्थिर कर लिया था कि इसी के साथ एना का विवाह कर दूँगा। उसे यह बतलाने का अभी तक उन्हे ध्यान ही नही हुआ कि मेना को प्राप्त करने की कामना वह न करे, एना की ही आराधना उसे करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त पुण्डरीकाक्ष ने जब से उनके यहाँ का आना-जाना आरम्भ किया है, तब से एना से उसकी घनिष्ठ प्रीति हो गई थी। वह उसके साथ खूब घुल-घुलकर बातें करता, आनन्दपूर्वक हँसता-खेलता। एना से उसका इस प्रकार का घनिष्ठतामय व्यवहार देखकर राजाबहादुर के मन मे कभी इस प्रकार की कल्पना भी नही उदित हो पाई कि किसी दिन पुण्डरीकाक्ष को मेना के प्रति आकर्षित होने से रोकना पडेगा। आज तो अकस्मात् इस प्रकार का आविष्कार हो उठा! पुण्डरीकाक्ष मेना का पाणिग्रहण करने का इच्छुक है!

राजाबहादुर फिर नीरव होकर चिन्तामग्न हो उठे।

पुण्डरीकाक्ष ने जब यह देखा कि राजाबहादुर चिन्ता में पडे हुए

है, तब उसने कहा——मैंने कोई अनुचित प्रार्थना की हो तो आप मुझे क्षमा कर दीजिए। मैं फिर कभी यह बात मुँह से न निकालूँगा। इसके सिवा यह बात आज तक आपको छोडकर मैंने न तो और किसी से कही है और न कभी कहूँगा। आप निश्चिन्त रहिए।

पुण्डरीकाक्ष विदा लेने के लिए उठकर खडा हो गया। उसने यह कहा तो अवश्य था कि मेना देवी को यदि मैं न भी पा सकूँगा तो मुझे किसी प्रकार का दुख न होगा, परन्तु उसने जब यह अनुभव कर लिया कि मेरी आशा भग हो गई, तब अनुत्साह से सूखकर उसका मुँह कान्तिहीन हो उठा। जोर देकर मुँह पर हँसी का जो भाव ले आने का प्रयत्न वह कर रहा था, वह बहुत ही करुण हो उठा। उसका मुस्कराहट का भाव ले आने का प्रयत्न उसी प्रकार निष्फल था जिस प्रकार कि बादल से घिरे हुए दिन में सूर्यास्त के समय धूप देखने की कामना करना सर्वथा निरर्थक सिद्ध होता है।

पुण्डरीकाक्ष की ओर ताककर राजाबहादुर व्यथित हो उठे। आवेग से काँपते हुए मृदु स्वर से उन्होंने कहा——अच्छा, तुम्हारे इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में मैं अपनी लडकी से बातें करूँगा। देखूँ, वह क्या कहती है? उसी की स्वीकृति या अस्वीकृति पर सब कुछ निर्भर है। मैं इस विषय मे बिलकुल ही असमर्थ हूँ, शक्तिहीन हूँ।

पुण्डरीकाक्ष के हृदय मे फिर सजीवनी आशा जाग्रत् हो उठी। उसने सोचा, तो अभी मेरी प्रार्थना अन्तिम रूप से अस्वीकृत नही हुई है। जीवन और मरण के बीच की-सी अवस्था मे आकर क्षीण आशा उसके हृदय मे डगमग करने लगी। विदा लेकर वह कमरे से निकल गया।

पुण्डरीकाक्ष आज एना और मेना के सम्मुख जाने का साहस नही कर सका। वह इस प्रकार भयभीत-सा होकर उस स्थान से निकलकर भागा, मानो उसने कोई बहुत बडा अपराध कर डाला है और शीघ्र ही उसके प्रमाणित हो जाने की आशङ्का है।

पुण्डरीकाक्ष जब आया था एना की दृष्टि तभी उस पर पड गई थी। वह तो उसी की प्रतीक्षा में बरामदे मे खडी थी। उसने देखा कि पुण्डरीकाक्ष और दिनो की तरह आज बराबर उसके पास ऊपर न जाकर उसके पिता के कमरे मे चला गया। बडी देर के बाद वह कमरे से निकला; परन्तु फिर भी ऊपर न जाकर वह घर के बाहर हो गया। और किसी दिन जब वह जाने लगता था, चलते-चलते भी कितनी बार मुँह उठा-उठाकर वह एना की ओर देख लिया करता था। परन्तु उसी पुण्डरीकाक्ष ने आज एक बार भी मुँह फेरकर नही देखा। पीछे फिरकर ताकने पर कही उसका सामना न पड जाय, इसी भय से मानो माथा नीचा करके भूमि मे दृष्टि गडाये हुए वह चला गया। क्यो? क्या हो गया है? यह मामला क्या है?

एना मेना के कमरे की ओर चली उसे इस घटना का हाल बतलाने के लिए। वह उसके कमरे के पास पहुँच भी नही पाई थी कि एक नौकर की आवाज़ उसे सुनाई पडी। नौकर कह रहा था——बडी दीदी रानी, राजाबहादुर आपको जरा देर के लिए नीचे बुला रहे हैं।

एना ने समझ लिया कि इस बुलावे के साथ पुण्डरीकाक्ष के आगमन और प्रस्थान का सम्बन्ध जुडा हुआ है। वह उतावली के साथ वहाँ से खिसककर चली गई; परन्तु मन ही मन इस बात का अनुमान करने लगी कि मेना कहाँ जाती है, क्या करती है, क्या कहती हैं और पिता जी ही क्या करते हैं या उससे क्या कहते हैं? छिपकर सुने बिना भी वह ये सारी बाते जान लेने की चिन्ता मे थी।

मेना ने पिता के पास जाकर देखा तो वे शान्त बैठे थे। उनके मुख पर गम्भीर चिन्ता की रेखा विराजमान थी।

कमरे में जाकर मेना खडी होगई। फिर भी कुछ क्षण तक राजा-बहादुर उससे कोई बात कह न सके। अन्त मे पुण्डरीकाक्ष जितने भी दस्तावेज़ और प्रोनोट दे गया था, उन सबको उठाकर उन्होंने

मेना के हाथ पर रख दिया। देखते ही मेना ने समझ लिया कि ये दस्तावेज़ है। देखकर वह घबरा उठी। सोचने लगी कि कही महाजनो ने रुपयो के लिए पिता जी को तग करना तो नही आरम्भ कर दिया ? यह भी सम्भव है कि उन लोगो के ऋण के कारण सारी ज़मीदारी बिकना चाहती हो यही दु सवाद देने के लिए पिता जी ने मुझे बुलाया हो।

उन दस्तावेज़ो को देखने के लिए मेना ने जैसे ही पिता की ओर से दृष्टि हटाई, राजाबहादुर ने धीरे एव गम्भीर स्वर से कहा—ये सब दस्तावेज मेरे ऋण के है। सारा ऋण चुका कर पुण्डरीकाक्ष इन्हे ले आये है। वे अभी ही इन्हे ले आये है। इन सबको उन्होने मुझे यो ही दे डाला है, इन्हे लेने के लिए बहुत अधिक अनुरोध और आग्रह किया है। इसके बदले में मुझसे कुछ प्राप्त करने की कामना उनकी नही है। वे यह सब मुझे मुफ्त ही दे डालना चाहते है ? परन्तु क्या मै इन्हे इस प्रकार ले सकता हूँ ? इतना बडा दान उनसे मै किस प्रकार ले सकता हूँ ? इसी लिए मैने उनसे पूछा कि इस दान के बदले में मै तुम्हे क्या दे सकता हूँ ? इस प्रश्न के उत्तर मे द्विधा से काँपते हुए कण्ठ से उन्होने कहा—मेरी कामना है कि मै आपकी ज्येष्ठा कन्या मेना देवी का पाणिग्रहण करूँ।

पुण्डरीकाक्ष के इतने बडे दान का सवाद सुनते-सुनते मेना का मुख आनन्द से विकसित होता जा रहा था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि पुण्डरीकाक्ष को इस प्रकार की अपरिमित उदारता प्रदर्शित करने का साहस कैसे हुआ ? मन ही मन उसकी इस उदारता की वह प्रशंसा भी कर रही थी। परन्तु पिता के मुख से जब उसने सुना कि पुण्डरीकाक्ष उसे ही प्राप्त करना चाहता है, तब उसका मुख, मृत्यु-दण्ड की आज्ञा पाये हुए अभियुक्त के समान रक्तशून्य और पीला हो उठा। वह विस्मयपूर्ण एव चकित दृष्टि से पिता की ओर ताकने लगी।

कन्या के मुख के भावो में जो परिवर्तन हो रहा था, उसे

ध्यानपूर्वक देखकर राजाबहादुर ने कहा––मैंने उन्हे किसी प्रकार का वचन नही दिया है। इस सम्बन्ध मे मेरी स्वीकृति या अस्वीकृति तुम्हारी ही सम्मति पर निर्भर है, यह बात मैंने उनसे स्पष्ट रूप से कह दी है। तुम तो यह जानती ही हो मेना कि हम लोगो की अवस्था आजकल कितनी सकटापन्न हो उठी है। इन हैंड नोटो और दस्तावेजो के वापस मिल जाने पर हम ऋण की अत्यधिक कष्टदायक चिन्ता से ही नही मुक्त हो जायँगे; बल्कि पिता-पितामह की ज़मीदारी भी हमे वापस मिल जायगी। परन्तु मुझे इस परम लाभ की उतनी चिन्ता नही है। तुम्हारे जीवन को सुखी और आनन्दमय बनाने की कामना मुझे इससे कही अधिक है। तुम यदि अपनी इच्छा से पुण्डरीकाक्ष के साथ विवाह करना पसन्द करो तभी मै इन्हे लूँगा। अन्यथा मै इन्हे पुण्डरीकाक्ष को वापस कर दूँगा। यह बात मैंने उनसे कह दी है। तुमसे मै यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि इस विषय मे तुम पूर्णरूप से स्वाधीन हो। यह बात यदि ज़रा भी तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध हो तो मुझसे कह देने मे सकोच न करना।

राजाबहादुर चुप होकर कन्या के मुँह की ओर ताकने लगे। मेना भी गम्भीर होकर बैठी रही। बात मुँह पर आते-आते रह जाती, वह बोल न सकती। यह देखकर राजाबहादुर फिर कहने लगे––तुम अच्छी तरह से सोच-समझ लो, तब अपने निश्चय की सूचना देना। तुम्हारे विवाह की बातचीत कुमीरखाली के ज़मीदार कन्दर्पकुमार के साथ बहुत दिनो से चल रही है। एक बार उनसे तुम्हारी मुलाकात भी हो चुकी है। यदि तुमने कल्पना से उन्हे अपना पति स्वीकार कर लिया हो या अपने भावी पति के रूप में उनसे प्रेम करने लगी होओ, तो भी मुझसे यह बात कह देने में सकल्प-विकल्प न करना।

क्षण भर के विराम के बाद राजाबहादुर फिर कहने लगे—रवि बाबू ने एक बार कहा है कि हमारे देश की स्त्रियाँ किसी आदमी को स्वामी समझकर नही प्यार करती। वे प्यार करती है अपने हृदय

में वर्त्तमान स्वामी नामक 'आइडिया' को, धारणा को। इस प्रकार का प्रेम दिखलाया है उन्होने अपने 'नौका डुवी'* नामक उपन्यास में कमला के चरित्र मे। और 'योगायोग' नामक उपन्यास में कुमुदिनी के चरित्र में। यदि तुम उसी प्रकार मन ही मन कन्दर्प को अपना पति स्वीकार कर चुकी होओ, तो वे ही तुम्हारे पति होगे। परन्तु यदि तुम्हारा हृदय स्वतत्र हो तो इस वात पर विचार करो कि इन दोनो मे किसके साथ विवाह करना तुम अधिक पसन्द करोगी।

मस्तक नीचा किये हुए मेना बहुत धीमे स्वर मे कहने लगी—मैंने इन दोनो व्यक्तियो में से एक को भी अपने हृदय में स्थान नही दिया है। मैंने यह सदा से स्थिर कर रक्खा है कि आप मुझे जिसे दान कर देंगे वही मेरा स्वामी होगा। उसी से मैं प्रेम करूँगी। यदि किसी कारण से मैं उससे प्रेम न कर सकूँगी तो भी उसके प्रति स्त्री का जो कर्त्तव्य है, उसका पालन करने में असावधानी न होने दूँगी। मेरे पुण्डरीकाक्ष के साथ विवाह कर लेने पर आप यदि चिन्ता से मुक्त हो सकें तो मैं प्रसन्नतापूर्वक उनके साथ विवाह कर लूँगी। आपका चिन्ता से मुक्त होना यदि मेरी ही सम्मति पर निर्भर है तो समझ लीजिए कि मैंने पूर्ण सम्मति दे दी है। मैंने तो कुमीरखाली के ज़मीदार को केवल एक दिन देखा है। वह भी कितने दिन पहले। इसके विरुद्ध इन्हे मैं कितने दिनो से देखती आ रही हूँ। वहुत दिनो से मेरी इनकी मेल-मुलाकात भी है। इनके हाथो मे यदि आप मुझे समर्पित करना चाहते हैं तो इसमें मुझे कोई आपत्ति नही हो सकती। क्या वावू जी, मैंने कभी आपकी इच्छा के विरुद्ध भी कोई कार्य्य किया है?

राजावहादुर ने मेना की ओर हाथ वढा दिया। मेना धीरे-धीरे जाकर पिता के पास खडी हुई। राजावहादुर ने कन्या को स्नेह-

---

* रवीन्द्र वावू के इस उपन्यास का हिन्दीरूपान्तर आश्चर्य ... मे इडियन प्रेस से प्रकाशित हुआ है।

पूर्वक पकडकर अपनी गोद के पास खीच लिया और कहने लगे–तुम मेरी अतिशय पितृभक्त कन्या हो, यह मै जानता हूँ बेटी, इसी लिए तो मुझे भय है कि कही मै तुम्हारे ऊपर अपनी इच्छा लादकर तुम्हारे सुखो का वलिदान न कर बैठूँ ?

मेना के नेत्रो में जल आ गया। वाष्प से आकुल कण्ठ से वह कहने लगी––नही बावू जी, आप मेरे लिए किसी प्रकार की चिन्ता न कीजिए। मेरे लिए आप जो भी व्यवस्था करेगे वही मेरे लिए शुभाशीर्वाद होगी।

कन्या के आँसुओ से आच्छादित नेत्रो की ओर ताकते हुए राजा-वहादुर ने पूछा––तो क्या पुण्डरीकाक्ष को यह शुभ समाचार सूचित करके उसे सुखी कर सकता हूँ ?

मेना के कण्ठ से वहुत ही क्षीण स्वर सुनाई पडा––हाँ।

मेना की इस स्वीकृति से राजावहादुर ऋण की चिन्ता से मुक्त हो गये, साथ ही कन्या के विवाह की भी व्यवस्था हो गई। इससे वे आनन्दित हो उठे। उन्होने सोचा कि मेना में इस समय जो इतनी गम्भीरता आ गई है, उसका कारण कन्या के द्वारा पिता के समीप प्रकट की जानेवाली, केवल लज्जा तथा सङ्कोच के आवरण के अतिरिक्त और कुछ नही है। उसके मुख पर गम्भीरता का जो भाव है, उसकी आड मे एक आनन्द का भाव अवश्य छिपा हुआ है। पुण्डरीकाक्ष-जैसे विभवशाली व्यक्ति के ऐश्वर्य्य की स्वामिनी वनना वह अपने लिए सौभाग्य की ही बात समझती होगी। इस प्रकार इस सम्बन्ध से मेना की अन्तरात्मा अवश्य सुखी होगी। राजावहादुर ने उसी समय यह भी सोच लिया कि कुमीरखाली के ज़मीदार कन्दर्पकुमार के साथ एना का भी विवाह किया जा सकता है, क्योकि इससे उसके असन्तुष्ट होने का कोई कारण नही है।

मेना पिता के पास से चली गई।

एना अभी तक अपने प्राण हथेलियो पर लिये हुए मेना के

लौटने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसका एक-एक क्षण बड़ी कठिनाई से व्यतीत हो रहा था। जैसे ही उसने मेना को लौटती देखा वह दौड कर दीदी के पास गई पूछने के लिए कि मामला क्या है? पुण्डरीकाक्ष आकर पिता जी के पास माथा नीचा किये हुए बैठा था और अन्त में उठकर वह चुपचाप चला गया। हम लोगो से मुलाकात किये बिना ही वह आज क्यो चला गया? पिता जी ने उसके जाते ही मेना को बुलवा क्यो भेजा था? और वे इतनी देर तक उससे कह क्या रहे थे? यही सब बातें एना जानना चाहती थी; किन्तु दीदी के सामने जाकर जैसे ही उसने उसके मुँह का भाव देखा, वह ठमककर खडी होगई।

उस समय मेना का मुख मुर्दे का-सा निस्तेज हो उठा था। उसकी ओर दृष्टि डालते ही एना चकित हो उठी। उसने जितनी भी बातें पूछने का निश्चय किया था, वे सभी उसे भूल गईं। उसने आकुलभाव से केवल इतना कहा—कहो दीदी, क्या हुआ? क्या कोई सङ्कट का विषय आगया है? तुम्हारी तबीअत तो ठीक है न? कुछ दर्द तो नही कर रहा है? तुम्हारा चेहरा इस प्रकार उतरा हुआ क्यो है?

मेना ने हँसने का प्रयत्न किया। परन्तु उसका वह प्रयत्न इतना करुण मालूम पडा कि एना काँप उठी। मेना ने कहा—नही, कोई सकट का विषय नही है; बल्कि आनन्द का ही विषय है। पुण्डरीक बाबू ने पिता जी का सारा ऋण चुकता करके सारे दस्तावेज़ और प्रोनोट इन्हे दे दिये है, मुफ्त में। उनके इस इतने बडे दान के बदले में पिता जी ने उन्हे भी कुछ देने का आग्रह प्रदर्शित किया। तब पुण्डरीक बाबू ने मेरे साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की।

एना के मस्तक पर मानो बिजली गिर पडी। चकित होकर मुहूर्त्त भर मेना के मुँह की ओर एक दृष्टि से निस्तब्धभाव से वह ताकती रही। उसे अपने कानो पर विश्वास नही हो रहा था।

मेना की इस बात मे सत्यता का लेश तक उसे नही मालूम पड रहा था। इस बात को वह कभी मन मे भी नही ला सकती थी कि पुण्डरीकाक्ष ने कभी इस तरह की असम्भव बात मुँह से निकाली होगी।

एना ने पहले तो यही सोचा कि दीदी मुझसे हँसी कर रही है। पुण्डरीकाक्ष ने मेरे ही साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की है। केवल मुझे चिढाने के लिए वे कह रही है कि उन्होने मेरे साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की है। वास्तविक बात इन्होने मुझसे छिपा रक्खी है। इससे वह हँसी मे ही यह बात उडा देना चाहती थी। परन्तु उसने जब दीदी के सूखे हुए और गम्भीर मुँह की ओर देखा तब वह इस विषय को इतना तुच्छ समझने का साहस न कर सकी। ज़र-सा अपने को सँभालते हुए इस दुसवाद के सम्बन्ध मे अपने कानो का सन्देह निवृत्त करने के विचार से गम्भीर भाव से ही उसने पूछा--कहो दीदी, क्या यह सच है ?

मेना ने करुण एव क्षीण कण्ठ से कहा--हाँ भाई, सच है।

एना मुहूर्त्त भर के लिए फिर निस्तब्ध हो गई। बाद को उसने कहा--तो क्या पिता जी ने उन्हे वचन दे दिया है ?

मेना ने कहा--नही, अभी तक उन्होने वचन नही दिया है। उन्होने मुझसे पूछ कर बतलाने को कहा है, इसी लिए उन्होने मुझे बुलाया भी था।

तीक्ष्ण दृष्टि से दीदी के मुँह की ओर ताकती हुई एना बोली--तो तुमने क्या कहा ?

यह प्रश्न करने के बाद एना इस प्रकार के व्यग्रतापूर्ण आग्रह के साथ दीदी की ओर ताकती रही कि मानो इस प्रश्न के उत्तर पर ही उसके जीवन का भविष्य निर्भर है।

मेना बहन की ओर न ताक सकने के कारण दूसरी ओर ताकती

हुई बोली---पिता जी की दुश्चिन्ता दूर हो जायगी, वे ऋण से मुक्त हो जायँगे, इसलिए मैंने स्वीकार कर लिया है।

मेना की यह बात सुनते ही एना एकाएक क्रोधमय स्वर में बोल उठी---और पिता जी के प्रति ममता दिखलाकर रानी नही बनोगी ? मन ही मन तुम्हें इस बात की इच्छा थी, तो बतलाने में लज्जा क्यो आ रही है। मै तो यह बात बहुत पहले से ही जानती थी ! ऐसा तुम केवल पिता जी को सुखी करने के ही लिए तो नही कर रही हो। साथ ही साथ तुम स्वय भी तो सुखी होओगी ! परन्तु तुम्हारे कुमीरखाली के ज़मीन्दार जो मुँह बाये ताक रहे है, उनके भाग्य की क्या व्यवस्था हुई ? लीप दिया उन्हे ? उस दिन जो ऐश्वर्य का आडम्बर देख आई हो, उसके कारण तो पिता जी के प्रति कृपा का सागर उच्छ्वसित हो उठेगा ही !

मेना का हृदय फाड-फाडकर रुलाई आ रही थी। मेना को ऐसी आशा नही थी कि उसके सामने इस प्रकार का भी प्रस्ताव आयेगा। परिस्थिति की प्रेरणा से उसे इस प्रकार का अत्यधिक और असाधारण आत्म-त्याग करना पडा था। परन्तु इस आत्म-त्याग के कारण उसे जो वेदना हुई थी, उसके कारण उसका हृदय व्यथित हो रहा था। उसे आशा थी कि एना से बातें करके इस असह्य मनोवेदना को बहुत कुछ शान्त करने में समर्थ हो सकूँगी। बात यह थी कि एना ही उसके लिए सब कुछ थी, चाहे वह उसे सहचरी समझती चाहे सखी समझती और चाहे बहन समझती। परन्तु एना से तो वह किसी प्रकार की सहानुभूति या सान्त्वना प्राप्त न कर सकी। सहानुभूति के बदले में उसे कितना निष्ठुरतामय और कठोर आघात मिला ! उससे मेना उस आघात से बहुत ही मर्माहत होकर धीरे-धीरे वहाँ से चली गई। अपने कमरे मे जाकर वह छिप गई। बिस्तरे पर बैठकर शून्य दृष्टि से एक ओर वह ताकती रही। मानो कठोर आघात के कारण उस समय उसकी चेतना ही

नष्ट हो उठी थी। आज वह बिलकुल ही अकेली थी, नितान्त ही असहाय थी।

एना भी दौड़ती हुई अपने कमरे मे गई। उसने बिस्तरे पर अपना शरीर डाल दिया। तकिये मे मुँह छिपाकर उमड़े हुए आँसुओ को रोकने के लिए वह निरर्थक प्रयत्न करने लगी।

इस प्रकार वह समय मेना और एना के लिए बहुत ही क्लेशकर था। इसके विरुद्ध पुण्डरीकाक्ष प्रसन्नता के मारे अपने आपे मे नही समा रहा था। राजाबहादुर का पत्र उसके पास उसी समय पहुँचा था। पत्र को शङ्का से काँपते हुए हाथ से उसन खोला। खोलते ही जब उसने देखा कि मेना ने उसके साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया है और राजाबहादुर ने भी अपनी स्वीकृति देकर उसे आशीर्वाद लिख भेजा है, तब उसके आनन्द का आवेग इतना प्रबल हो उठा कि वह हृदय मे उसके रोके नही रुकता था। उसी असह्य आनन्द में वह तुरन्त ही भूमि पर लोटकर भगवान् की स्तुति करने लगा। आनन्द के प्रबल आघात से पुण्डरीकाक्ष मे जो विह्वलता का भाव आया था, उसे किसी प्रकार कुछ दूर करके वह पूजा के कमरे में जाकर आसन पर बैठा। आज वह इतने आनन्द मे था, उसके हृदय में इस प्रकार की कृतज्ञता का भाव था कि वह अपने सारे तन-मन को भगवान् की दया के सामने निपतित कर देना चाहता था।

तेरहवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन साँझ को नियमित समय पर पुण्डरीकाक्ष राजाबहादुर के घर पर मनोविनोद के लिए आया। आज उसका हृदय आनन्द के मारे नाच रहा था। कल जब उसे राजाबहादुर की स्वीकृति का पत्र मिला था तब से लेकर आज साँझ तक अपने आपको सम्हाल रखने में उसे कितने अधिक अन्तर्द्वन्द्व का सहन करना पड़ा था, यह उसके अन्तर्य्यामी ही जानते होंगे। उसके मन में बार-बार यही बात आती कि दौड़ता हुआ मेना के पास पहुँचूँ और उसके चरणों के समीप लोटकर अपने हृदय का आनन्द और कृतज्ञता उसके समक्ष प्रकट कर दूँ। परन्तु उसे भय था कि तुरन्त ही पहुँचकर अधीरता प्रकाशित करने पर मेना को कहीं किसी प्रकार का असन्तोष न हो जाय। इसी लिए अभी तक वह रुका रहा। इतने समय में हृदय के आनन्द को पुण्डरीकाक्ष ने बहुत कुछ परिपक्व कर लिया, तब वह राजाबहादुर के यहाँ पहुँचा।

पुण्डरीकाक्ष ने पहले-पहल राजाबहादुर के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। उसे देखते ही राजाबहादुर हँसते हुए खड़े हो गये। उसे छाती से लगाकर उन्होंने आशीर्वाद दिया। बाद को उन्होंने कहा—जाओ, तुम ऊपर जाओ, वहाँ मेना-आदि हैं।

पुण्डरीकाक्ष इतने दिनों से इस घर में आया करता था, परन्तु मेना के सामने मस्तक उठाकर कभी निस्सङ्कोच-भाव से बातचीत वह नहीं कर सका। मेना को देखते ही पुण्डरीकाक्ष का हृदय आदर और सम्मान से इस प्रकार अभिभूत हो उठा करता कि मुँह खोलने का उसे साहस ही न होता।

पुण्डरीकाक्ष एना से अवश्य हँसी-मज़ाक किया करता था, वह भी मेना की अनुपस्थिति में ही। मेना के सामने आते ही पुण्डरीकाक्ष का मुँह बन्द हो जाया करता था। इससे आज जब मेना के सामने जाने की बात आई तब उसका हृदय धक-धक करने लगा। वह सोच रहा था कि मैंने जो यह विवाह का प्रस्ताव किया है, इसके कारण मेनादेवी के मन मे न जाने कैसा भाव आया हो। सम्भव है कि उन्होने मेरे सम्बन्ध में यह धारणा कर ली हो कि पुण्डरीकाक्ष बडा लोभी है, वह बडी ऊँची-ऊँची आकाक्षाये किया करता है।

पुण्डरीकाक्ष धडकते हुए हृदय से गिन-गिनकर एक-एक सीढी पर पैर रखते-रखते ऊपर पहुँच गया। और दिन उस समय एना बरामदे में खडी रहा करती थी। पुण्डरीकाक्ष के फाटक के पास पहुँचते ही वह मुस्कराती हुई उसका स्वागत करती और उसे बुला ले आती। उसका मुस्कराता हुआ मुख देखकर ही पुण्डरीकाक्ष इतने दिनो तक मेना के दर्शन के निमित्त आने का साहस कर सका है। आज उसे एना की सहायता और समर्थन की सबसे अधिक आवश्यकता थी। ऐसे अवसर पर एना कहाँ जाकर छिपी? आज तो एना बरामदे में उपस्थित थी नही?

पुण्डरीकाक्ष दबेपाँव से एक बार सारे बरामदे मे चक्कर लगा आया। परन्तु बैठक के कमरो मे से किसी मे भी उसे कोई न दिखाई पडा। किसी नौकर पर भी उसकी दृष्टि न पड सकी कि वह उसी के द्वारा अपने आगमन की सूचना मेना के पास भेज देता। परन्तु मेना को सूचना देने से ही पुण्डरीकाक्ष को क्या लाभ हो सकता था? एना की सहायता के बिना तो मेना के सामने भी वह नही जा सकता था, समीप जाना तो दूर की बात थी।

आज एना ने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि मैं किसी प्रकार भी पुण्डरीकाक्ष के सामने न जाऊँगी, उससे बातें न करूँगी, उसकी ओर दृष्टि उठाकर देखूँगी भी नही। उसने यहाँ तक निश्चय कर लिया

था कि आज मै कमरे से निकलूँगी ही नही। परन्तु पुण्डरीकाक्ष प्रतिदिन जिस समय आया करता था, वह समय जैस-जैसे समीप आता गया वैसे ही वैसे एना की अधीरता और उत्कण्ठा वढने लगी। फिर भी बिस्तरे को जोर से पकडे हुए वह पडी रही। उसने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि मै पुण्डरीकाक्ष के प्रति बहुत ही कठोर और कठिन होऊँगी। उसे इस प्रतिज्ञा का पालन तो करना ही था, इससे स्वभावत उसे किसी प्रकार अपने को रोकना पडा।

कुछ ही मिनट तक प्रतीक्षा करने के बाद एना यह अनुभव करने लगी कि मानो मुझे इस तरह पडे पडे एक युग वीत गया। अन्त में अधीरभाव से उठकर वह विस्तरे पर वैठ गई। एक बार बडी बहन के कमरे की ओर कान लगाकर ध्यानपूर्वक सुनने का उसने प्रयत्न किया कि उधर से किसी प्रकार का शव्द आता है या नही। बडी देर तक कान लगाये रहने पर भी उसे किसी प्रकार की आहट न मिली।

अब एना के मन मे यह बात आई कि हो न हो, पुण्डरीकाक्ष आया अवश्य है और दीदी उसमे घुल-घुलकर बातें कर रही है। मन मे यह बात आते ही क्रोध के मारे उसका सारा शरीर जल-सा उठा। झम से कूदकर वह चारपाई पर से उतर गई और बडी बहन के कमरे के द्वार के पास आकर खडी हुई। कमरे का द्वार उस समय खुला था। परन्तु उसके भीतर से मनुष्य का किसी प्रकार का भी शब्द और किसी प्रकार की आहट नही आ रही थी। अब एना का सन्देह बिलकुल ही जाता रहा। उसने निश्चय कर लिया कि दीदी आज मुझे बुलाये बिना ही प्रेमी के एकान्त-मिलन के लिए चली गई है।

एना ने मन में इस प्रकार का निश्चय कर तो लिया, किन्तु फिर भी सन्देह निवृत्त करने के लिए एक बार झाँककर उसने कमरे में देखा। मेना उस समय कपडे पहने हुए बिस्तरे पर निष्पन्द, निश्चल-भाव से वैठी थी। यह देखकर एना एक तीखा-सा व्यङ्ग

कसती हुई बोली——कहो जी, वासकसज्जा हो रही हो क्या ? सखी री श्याम नहिं आये !

मेना जिस प्रकार निष्पन्द निश्चल होकर बैठी थी, उसी प्रकार दोनो हाथ जोडकर वक्ष पर लगाये हुए वह बैठी रही। उसने मुँह फेरकर न तो एना की ओर देखा, न मुँह से कोई बात निकाली और न जरा-सा आह ही भरी। शायद वह उस समय अपने जीवन-विधाता से करुणा की भिक्षा माँग रही थी। वह जो इस प्रकार का भयङ्कर आत्म-त्याग करने जा रही थी, उसके अनुकूल बल प्रदान करने के लिए भग-वान् से प्रार्थना कर रही थी। उसे क्षण-क्षण पर यह अनुभव होता कि पुण्डरीकाक्ष अब आता होगा। वह आज मुझसे उस प्रकार की बाते करेगा, जैसी कि कोई भी पति अपनी पत्नी से किया करता है। अपनी भावी पत्नी समझकर वह मुझसे कितनी प्रेम की बातें करेगा। परन्तु मै अपनी मानसिक अवस्था को तो अभी तक इस रूप में नही ला सकी हूँ कि उसकी उन सब बातो को सहन करूँ और प्रसन्नभाव से उन्हें ग्रहण करूँ !

उस समय मेना के हृदय में वे बाते आने लगी, जो कि उसने पिता से कही थी। उसने कहा था कि जिस किसी को भी मै पति के रूप में ग्रहण करूँगी, उसी से प्रेम करूँगी। यदि किसी कारण से उससे प्रेम न भी कर सकूँ तो पति के प्रति पत्नी का जो कर्त्तव्य है, उसका पालन करने में मै किसी प्रकार की त्रुटि न होने दूँगी। परन्तु आज जब उस कठोर सत्य का सामना करने का अवसर आ गया तब तो उसका साहस ही जाता रहा। मेना के मन में बार-बार यह बात आने लगी——यदि कही मेरा हृदय प्रसन्नभाव से कर्त्तव्य-पालन भी न कर सका !

मेना यह भी अनुभव कर रही थी कि एना पुण्डरीकाक्ष से प्रेम करती थी। इसी लिए उसे मुझसे ईर्ष्या हो रही है और वह क्रोध मे आकर मेरे साथ रुखाई का व्यवहार कर रही है। परन्तु इससे बहन

के प्रति उसे जरा भी क्रोध नही आ रहा था। इसके विपरीत उसका हृदय ममता और समवेदना से ही परिपूर्ण हो उठता था। वह सोच रही थी कि बडी बहन होकर मैने छोटी बहन की आशा और प्रेम पर जो आघात किया है, उसके बदले में मेरे हृदय पर जो भी आघात पहुँचे, उसका तो मुझे सहन करना ही पडेगा। वह चाहती थी कि अपनी सफाई देकर एना को जरा-सी सान्त्वना देने का प्रयत्न करे। परन्तु ऐसा करने में भी उसे भय था कि एना इस प्रकार की बातें सुनते ही पुण्डरीकाक्ष से भी रुष्ट हो जायगी। यह सोचकर मेना बहन से सान्त्वना की भी कोई बात नही कह पाती थी। वह यह भी नही कह पाती थी कि कितनी अनिच्छा से इस प्रेम-शून्य विवाह के लिए मै अपनी स्वीकृति दे सकी हूँ, केवल पिता का मुँह देखकर।

मेना सोच रही थी कि मै चाहे कितना ही समझाकर कहूँ, लेकिन एना उसे उल्टा ही समझेगी, उसके हृदय का भ्रम दूर न होगा, इसलिए उसे समझाना निरर्थक है। इसके सिवा उस समय वह एक ऐसी सङ्कटमय अवस्था में थी कि मुँह से कोई बात निकालने का उसे साहस ही नही होता था। उसे भय था कि बोलने का प्रयत्न करने पर कही बातो के बदले में आँसुओं की धारा ही न प्रवाहित होने लगे।

इधर एना ने जब देखा कि मेना किसी बात का उत्तर न देकर निस्पन्दभाव से बैठी है, तब उसकी अन्तरात्मा और भी जल उठी। वह बोल उठी—ऐसा दारुण-विरह है—

कन्त पाहुन विरह दारुण,
सघने खर शर हन्तिया।
मत्त दादुरि, डाके डाहुकी,
फाटि याओ त छातिया।

मेना की आँखें फाड़-फाड़कर जल के बिन्दु टपकने ही वाले थे।

उसके जी में आ रहा था कि वह दौडती हुई जाय और बहिन का गला पकडकर रोती हुई उससे अनुरोध करे कि तू मेरे प्रति इतनी निष्ठुर न हो। परन्तु अपने हृदय को पत्थर की तरह कडा किये हुए वह स्थिर होकर बैठी ही रह गई। बहन की श्लेषमय बातें उसके हृदय को विदीर्ण करके उसे रक्त से रञ्जित-सा किये दे रही थी, किन्तु बाहर से वह कोई भी ऐसा भाव नही प्रकट कर रही थी, जिससे कि उसकी चञ्चलता व्यक्त हो सके।

इस प्रकार बार-बार ताने देने पर भी एना को दीदी की ओर से किसी प्रकार का उत्तर नही मिला, तब वह और भी अधिक क्रुद्ध हो उठी। पुण्डरीकाक्ष के अभी तक न आने का क्या कारण है, यह बात जानने की भी एना को अत्यधिक उत्कण्ठा हो आई। मेना से और कुछ न कहकर वह चली गई यह देखने के लिए कि पुण्डरीकाक्ष आया है या नही।

एना जिस समय पूर्ववाले बरामदे में आई, उस समय पुण्डरीकाक्ष टहलते-टहलते दक्षिणवाले बरामदे में चला गया था। कोने की आड में पड जाने के कारण एना न तो पुण्डरीकाक्ष को देख सकी और न पुण्डरीकाक्ष ही एना को देख सका। बरामदे तथा दोनो बैठको में जब कोई भी नही दिखाई पडा तब एना बरामदे के एक कोने में जाकर खडी हुई। उस कोने में खडा होकर देखने पर फाटक की साँस से थोडी-सी सडक और पुण्डरीकाक्ष के मकान का थोडा-सा भाग दिखाई पडता था। एना वही खडी होकर मस्तक उठाये देख रही थी। इतने में टहलते-टहलते पुण्डरीकाक्ष आकर उसके पीछे खडा हो गया।

पीछे पैर की आहट मिलते ही एना ने जैसे ही घूमकर देखा, मुस्कराते हुए पुण्डरीकाक्ष से उसका सामना हो गया। चोरी में एकाएक पकडे जाने पर मनुष्य जिस तरह चकित हो उठता है, अँधेरी रात में घर से अकेले निकलने पर आदमी के मन मे यदि यह

शङ्का आ जाय कि भूत से मेरा सामना हो गया है, तो उसका शरीर जिस प्रकार काँप उठता है, ठीक उसी प्रकार एना का भी शरीर काँप उठा। वह उतावली के साथ चकित भाव से वहाँ से भागने का प्रयत्न करने लगी। पीछे की ओर लौटकर वह चली।

एना के नेत्र और मुँह देखकर तथा उसे विना कुछ कहे-सुने चली जाती देखकर पुण्डरीकाक्ष ने समझ लिया कि मामला कुछ गड़बड़ है। परन्तु फिर भी उसने पहले की ही तरह मजाक करने का प्रयत्न करते हुए कहा--क्रोध देवि सहर, महर। भक्त से विमुख न होइए। अपराध किया है, तो सरकार के सामने हाजिर हूँ।

एना झटपट घूम पड़ी। पुण्डरीकाक्ष की ओर तीक्ष्ण एव निष्ठुर दृष्टि से ताककर रूखे स्वर में वह बोली--जो बाहु-पाश में बाँधकर दण्ड देंगी, उन्हे मै बुलाये देती हूँ। भीष्म ने तो इच्छा-मृत्यु स्वीकार कर ही ली है, अब आपको सामने शिखण्डी खड़ा करके वाण चलाने की आवश्यकता न पड़ेगी।

एना जैसी तेजी के साथ पुण्डरीकाक्ष की ओर मुँह फेरकर खड़ी हुई थी, वैसी ही तेजी के साथ उसकी ओर से उसने फिर पीछा कर लिया और वह तेजी के साथ पैर बढ़ाती हुई वहाँ से चली गई।

पुण्डरीकाक्ष विह्वल होकर वही खड़ा रहा।

एना वहाँ से चलकर सीधे बहन के पास पहुँची। इस बार भी वह बड़ी रुखाई के साथ ताना देती हुई बोली,---दीदी, जाओ न! तुम्हारे श्याम नागर आ गये है। केलि-कदम्ब की छाया मे वे राधा-राधा की टेर लगाते हुए वशी बजा रहे है। जाओ, अब अभिसार में निकल क्यो नही पड़ती हो।

यह बात समाप्त करते-करते एना की आँखे डबडबा आईं। वह उतावली के साथ अपने कमरे में गई। बिस्तरे मे मुँह छिपाकर वह लेट गई।

मेना ने इतने पर भी हाथ-पैर नही हिलाया। वह वैसी की वैसी लेटी रही। पता नही, किसने उस पर जादू चलाकर उसे पत्थर की बना दिया था। उसकी जीवनीशक्ति मानो उस जादू के कारण स्तम्भित हो गई थी।

इधर एना जब चली गई तब बेचारा पुण्डरीकाक्ष बरामदे में फिर टहलने लगा। परन्तु इस प्रकार अकेले टहलते-टहलते वह क्लान्त-सा हो उठा। क्षण-क्षण पर वह उत्सुकभाव से भीतर की ओर ताकता। कभी वह मेना के आगमन की प्रतीक्षा करता तो कभी सोचता कि अब एना आ रही है। परन्तु आज का प्रत्येक मुहूर्त उसे निराशा से व्याकुल होकर ही व्यतीत करना पड रहा था।

मनुष्य का स्वभाव है कि जब उसे किसी की प्रतीक्षा करनी पडती है तब एक-एक मिनट का समय बहुत कष्टकर हो जाता है, बिताये बीतता ही नही। पुण्डरीकाक्ष के सम्बन्ध मे भी उस दिन यही बात थी। मिनट भर प्रतीक्षा करने के बाद उसे ऐसा जान पडता कि मै युग-युगान्तर से तपस्या कर रहा हूँ, देवता को प्रसन्न करने के लिए, किन्तु देवता की कृपा प्राप्त करने का कोई लक्षण ही नही दिखाई पड रहा है।

टहलते-टहलते पुण्डरीकाक्ष जब थक गया और उसे मेना तथा एना में से कोई भी आती न दिखाई पडी तब वह हताश होकर लौटने का विचार करने लगा। परन्तु जरा ही देर के बाद फिर उसके मन में यह बात आई कि जाने से पहले मेना या एना के पास किसी के द्वारा सूचना भेज देनी चाहिए। चुपचाप चोर की तरह भाग जाने में उसे लज्जा आ रही थी। इधर एना ने जिस प्रकार की भाव-भङ्गी दिखलाई थी और उसके प्रति जिस तरह का व्यवहार किया था, उसके कारण उसकी प्रतीक्षा करने मे भी पुण्डरीकाक्ष को लज्जा आ रही थी। केवल लज्जा ही नही, बल्कि भय भी मालूम पड़ रहा था।

पुण्डरीकाक्ष सङ्कल्प-विकल्प में पड़ा ही था कि सौभाग्यवश एक नौकर वहाँ आ पहुँचा। वह बैठक में रक्खी हुई चीज़ों की गर्द झाड़-कर उन्हें साफ करने आया था। पुण्डरीकाक्ष ने उस नौकर से कहा—तुम अपनी बडी दीदी रानी से जाकर कह आओ कि पुण्डरीकाक्ष बाबू आये हैं।

नौकर जिस काम के लिए आया था, उसे छोडकर चला गया। वह मेना के कमरे के द्वार के पास गया और बाहर से ही पुकार कर कहने लगा—दीदी रानी, सामने की सगमरमरवाली कोठी के बाबू साहब आये है।

नौकर लोग पुण्डरीकाक्ष को 'सगमरमरवाली कोठी के बाबू' कहा करते थे। उसका टेढा नाम उच्चारण करते उनसे नही बनता था।

अब मेना से स्थिर न रहा गया। वह मन ही मन कहने लगी—नौकर की मार्फत बुलावा आया है। इसमे स्वामी होने का जो अधिकार है, वह प्रमाणित हो गया। यह अधिकार प्रमाणित करने के ही लिए तो हुक्म लेकर नौकर भेजा गया है न! ऐसी दशा में अवहेलना करने से तो अब काम चलेगा नही। यह सोचकर मेना धीरे-धीरे उठी। कठपुतली जिस प्रकार तमाशा करनेवाले के हाथ के तागे के सहारे पर चलती है, उसी प्रकार वह भी निर्जीव-सी होकर चली।

मेना जाकर पुण्डरीकाक्ष के सामने खडी हुई। उसके मुँह की ओर ताकते ही पुण्डरीकाक्ष का कलेजा धक-से हो उठा। वह सोचने लगा—क्या यह मेना है, या मेना की छाया है! अथवा किसी ने मेना की सङ्गमरमर की मूर्ति लाकर यहाँ खडी कर दी है? एक रात्रि मे ही मेना में कितना आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है!

मेना स्वभाव से ही गम्भीर थी। वह बोलती बहुत कम थी। किन्तु उसके मुखमण्डल मे इस प्रकार की एक देदीप्यमान आभा थी कि उसे देखते ही मन मुग्ध हो जाता था। उसका मौन-भाव से

समीप बैठा रहना भी चित्त के लिए एक रसायन था। किन्तु इस एक गत रजनी मे ही कौन-सा ऐसा रजनीचर आया कि वह सारा का सारा मेना का प्राण-रस पान कर गया, वह एकदम से शुष्क हो गई !

पुण्डरीकाक्ष हक्का-बक्का होकर पाषाण-प्रतिमा के समान खडा रहा। उसने मेना को बुला भेजा था इसलिए कि अपने सौभाग्य की सूचना देकर उसके प्रति हृदय मे जो कृतज्ञता का भाव है, उसे व्यक्त करे, साथ ही अपनी हृदयेश्वरी के रूप में उसकी पूजा करे। आज वह कितने उत्साह, कितने आनन्द के साथ यहाँ आया था। किन्तु वह सब उसे भूल गया। मेना की मूर्ति देखते ही उसके हृदय मे किसी प्रकार का भी उत्साह अवशिष्ट न रह गया। वह आकर पुण्डरीकाक्ष के सामने खडी थी, इधर पुण्डरीकाक्ष को इतना भी ध्यान न रहा कि वह कम-से-कम उससे शिष्टाचार की दो चार बाते तो करे।

मेना पुण्डरीकाक्ष के सामने आकर खडी थी उसी की आज्ञा से, और पुण्डरीकाक्ष ने उससे बात तक न की। वह केवल विह्वल दृष्टि से मेना के मुँह की ओर ताकता भर रह गया। उसकी इस प्रकार की अवस्था देखकर मेना का हृदय एक प्रकार की व्यग्रता का-सा अनुभव करने लगा। क्षण भर तक तो वह प्रतीक्षा करती खडी रही, बाद को बोली—आइए, कमरे मे बैठिए।

पुण्डरीकाक्ष यदि मेना का कण्ठ-स्वर सुन पाता तो वह यह अनुभव करता कि इतने दिनो के बाद मेरे हाथ में स्वर्ग आ गया है। आनन्द के मारे वह अपने आपको भूल जाता, वह अनुभव करता कि मेरे कानो में स्वर्ग की किसी अप्सरा का स्वर पड रहा है। परन्तु आज पुण्डरीकाक्ष के कानो में जो कण्ठ-स्वर पडा है, वह क्या मेना का था ? वह कण्ठ-स्वर सुनकर पुण्डरीकाक्ष ने तो यह अनुभव किया कि मानो कोई अशरीरी आत्मा परलोक से बातें

कर रही है और जिस स्वर में बातें कर रही है, वह तैरकर आँसुओ के सागर को पार करता हुआ आ रहा है।

मेना ने एक बार पुण्डरीकाक्ष को फिर बुलाया। परन्तु पुण्डरीकाक्ष पहले की ही तरह स्थिर भाव से मौन धारण किये खडा रहा। मेना मुहूर्त्त भर तो प्रतीक्षा करती रही, बाद को धीरे-धीरे बैठक में जाकर उसने प्रवेश किया और वहाँ अकेली ही स्थिर होकर खडी रही।

कुछ क्षण के बाद पुण्डरीकाक्ष की चेतनता लौट आई। उसने भी अपराधी के समान काँपते हुए चरणो से जाकर बैठक में प्रवेश किया। एक काफी लम्बा-चौडा हाल था। उसके ठीक मध्य में खडी थी मेना। उसके सामने ही जरा-सा दूर हटकर पुण्डरीकाक्ष भी खडा हो गया। अब मेना को ही फिर मुँह खोलना पडा। उसने कहा—बैठिए।

इस बार पुण्डरीकाक्ष का भी कण्ठ खुल गया। उसने कहा—जी हाँ। पहले आप तो बैठिए। यह क्या प्रणयिनी या भावी पत्नी के साथ का प्रेम-सम्भाषण था? मुँह से निकल जाने के बाद यह बात स्वय पुण्डरीकाक्ष के ही कानो को बेतुकी मालूम पडने लगी। इस प्रकार के प्रेम-सम्भाषण को मेना ने भी बेतुका ही समझा।

मेना बैठ गई। पुण्डरीकाक्ष भी दूर ही उदासीन भाव से बैठ गया। फिर कुछ क्षण तक दोनो मौन धारण किये रहे।

मेना दो-दो बार बोल चुकी थी। इससे पुण्डरीकाक्ष ने भी हृदय का समस्त साहस सञ्चित करके कह डाला—आपने अनुग्रह करके मेरे मर्म्मर मन्दिर की अधिष्ठात्रीदेवी बनना स्वीकार कर लिया है, यह मेरा परम सौभाग्य है, जन्मजन्मान्तर की तपस्या का परिपक्व फल है।

पुण्डरीकाक्ष ने निश्चय किया था कवित्व-मय शब्द 'मर्म-मन्दिर' का प्रयोग करने का, परन्तु वह शब्द मुँह से न निकाल सका, कह गया मर्म्मर-मन्दिर।

मेना की आकृति पर किसी प्रकार का परिवर्तन नही हुआ। विवाह की बात छिडने पर अन्य नवयुवतियो के कपोलो तथा नेत्रो एवं ग्रीवा में जिस प्रकार की लज्जा की लालिमा दौड जाती है, उसका मेना मे आभास तक न मिला। मुर्दे के-से प्रभाहीन मुख से उसने कहा—पिता जी ने मुझसे आपकी इच्छा का हाल बतलाया। स्वय पिता जी की भी इच्छा....

मेना का कण्ठ-स्वर धीरे-धीरे शून्य मे विलीन हो गया, अपना वाक्य वह समाप्त न कर सकी। किन्तु उसके मुँह से जितने शब्द निकल गये, उन्ही के कारण पुण्डरीकाक्ष चिन्ता मे पड गया। वह सोचने लगा—मेना ने मेरी इच्छा और अपने पिता की इच्छा की बात तो कही, लेकिन स्वय अपनी इच्छा के सम्बन्ध में उसने कुछ नही कहा। आखिर उसकी इच्छा का भी तो पता लगना चाहिए? जो सबसे मुख्य है, उसी का कोई पता नही चलता!

अब पुण्डरीकाक्ष को याद आ गई एना की बात—भीष्म ने तो इच्छा-मृत्यु स्वीकार कर ही लिया है—। वह सोचने लगा—तो क्या इस विवाह के लिए स्वीकृति देना मेना की इच्छा-मृत्यु है! क्या पिता को ऋण-मुक्त कर देने के लिए उसका यह आत्म-बलिदान है! यह सम्भावना मन में आते ही पुण्डरीकाक्ष काँप उठा। वह सोचने लगा—मेना से यदि मैंने प्रेम किया है तो उसे सुखी करने के लिए! किन्तु इस प्रकार उसकी अनिच्छा होने पर भी उससे विवाह करके मैं उसे दुःख देने जा रहा हूँ! उसे वन्दिनी बनाने जा रहा हूँ!

मेना की इस बात के उत्तर में पुण्डरीकाक्ष बहुत-सी बातें कहने की इच्छा कर रहा था। परन्तु मुँह से वह एक भी बात न निकाल सका। वह मस्तक नीचा किये हुए चुपचाप बैठा रहा।

मेना पुण्डरीकाक्ष को चुप देखकर बडी ही अधीरता का अनुभव कर रही थी। इधर मेना की नीरवता के कारण पुण्डरीकाक्ष की भी यग्रता बढती जा रही थी। उस समय उन दोनो ही को किसी

तीसरे व्यक्ति के आगमन की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था। वे इस वात की आकाक्षा कर रहे थे कि एना और राजावहादुर में से यदि कोई आ जाता या कोई नौकर ही आ जाता और हम दोनो के वीच मे जो इस प्रकार की वर्फ की चट्टान पड गई है, उसे पिघला जाता तो कितना अच्छा था। उन दोनो ही के वीच में आँसुओ के अगाध सागर की लवणाम्वु-राशि अपनी तरङ्गें आन्दोलित कर रही थी। उसके व्यवधान को दूर करके उन दोनो का एक दूसरे के समीप आना तभी सम्भव था जव कि कोई तीसरा व्यक्ति आकर उनके वीच में सेतु का काम करता।

मेना और पुण्डरीकाक्ष के सौभाग्य से उनकी रक्षा का साधन आकर उपस्थित हो गया, सीढी पर राजावहादुर के जूतो का शव्द सुनाई पडने लगा। उन दोनो ने भी अव वडी देर की व्याकुलता के वाद जरा-सी शान्ति की साँस ली।

और दिनो की अपेक्षा राजावहादुर आज वहुत जोर-जोर से अपनी चट्टियो का शव्द करते हुए आ रहे थे। सीढियो पर पैर भी वे वहुत धीरे-धीरे, ठहर-ठहर कर रख रहे थे। उनकी चट्टियो का जोडा मानो यह कहता हुआ आगे वढ रहा था—चक्कवाअवहु आमन्तेहि सहचर, ण उअत्थिदा रअणी! अर्थात् हे चक्रवाक-वधू (चकई), अव तुम अपने सहचर के साथ का सम्भाषण समाप्त कर लो, क्योकि अव रात्रि आकर उपस्थित हो गई।

राजावहादुर ने यह समझ रक्खा था कि पुण्डरीकाक्ष को ऊपर गये काफी समय हो चुका है। इस वीच में मेना से उसकी वहुत-सी वातें हो गई होगी। वहुत सम्भव है कि उनकी इस मिलन-सभा में एना भी आकर सम्मिलित हो गई हो। यह सोचकर उन सवको एक स्थान पर वैठे देखकर सुखी होने के विचार से वे ऊपर आ रहे थे। राजावहादुर के मन मे यह वात भी आई कि सम्भव है इन प्रेमिक-प्रेमिका की मिलन-सभा में एना न सम्मिलित हुई हो।

इसलिए उन्हें सावधान करने के विचार से वे धीरे-धीरे और चट्टियाँ खटखटाते-खटखटाते सीढियो पर चढ रहे थे।

इधर मेना और पुण्डरीकाक्ष को राजावहादुर का यह विलम्ब असह्य हो रहा था। वे सोचते थे कि वे किसी प्रकार कमरे में आते तो हमें शान्ति मिल जाती।

राजावहादुर ने आकर कमरे में प्रवेश किया। उन्होने देखा तो मेना और पुण्डरीकाक्ष वहाँ एक दूसरे से वहुत दूर-दूर बैठे थे, एना वहाँ नही थी। कमरे में पैर रखते हुए उन्होने मुस्कराते हुए कहा—तुम लोग यहाँ अकेले ही हो! मैंने समझा कि शायद एना भी होगी! एना कहाँ है?

कन्या और भावी जामाता की बातचीत तथा प्रणय-निवेदन के अवसर पर आकर राजावहादुर कुछ सकुचित-से हो उठे। वहाँ से निकल भागने का वहाना वनाने के लिए उन्होने कहा—देखूँ, मैं ज़रा एना को बुला ले आऊँ।

राजावहादुर चले गये। अव कमरे मे फिर मेना और पुण्डरीकाक्ष अकेले ही रह गये। परन्तु इतने समय में पुण्डरीकाक्ष ने कुछ साहस मचित कर लिया था। इससे वह किसी प्रकार मेना से पूछ ही बैठा—क्या आपने अनिच्छा होने पर भी केवल मुझे सुखी करने तथा मेरे परम सौभाग्य की सूचना देने के विचार से अपनी स्वीकृति दी है?

मेना ने बडी कठिनाई से अपने हृदय की आह दबाकर कहा—पिता जी ने मेरी स्वीकृति चाही थी।

पुण्डरीकाक्ष इस उत्तर का क्या अर्थ लगाता? मेना पिता को अपनी स्वीकृति दे चुकी है और पुण्डरीकाक्ष को भी उसके पिता से इस स्वीकृति की सूचना मिल चुकी है, ऐसी दशा में मेना से इस प्रकार का प्रश्न क्यो किया जा रहा है, क्या इसी आशय से मेना ने पुण्डरीकाक्ष को इस प्रकार का उत्तर दिया, अथवा उसके उत्तर का यह आशय था कि पिता जी ने मेरी स्वीकृति चाही, इसलिए

उनकी इच्छा के समीप मैंने अपनी स्वाधीनता का वलिदान करके स्वीकृति दे दी ।

राजावहादुर फिर चट्टियाँ फटफटाते हुए लौट आये और कमरे में प्रवेश करने से पहले ही उन्होंने यह कहना आरम्भ किया—एना के मस्तक में पीडा हो रही है, वह लेटी हुई है। देखा तो उसकी आँखें भी सुर्ख हो आई है। आज-कल वडे जोर का इन्पलूएजा फैल रहा है, कही उसे ज्वर न हो आवे।

पुण्डरीकाक्ष और मेना दोनो ही चुप रहे, किसी ने कोई वात नही कही। राजावहादुर ने उनके इस प्रकार मौन धारण कर रखने का यह अर्थ लगाया कि अभी इनके विवाह की नई-नई वात है और यह पहला ही दिन है कि ये लोग इस प्रकार मिले है, इसलिए लज्जा प्रकट करना इनके लिए स्वाभाविक ही है। यह सोचकर वे वही वैठ गये। परन्तु वे भी यह नही खोज पाते थे कि किस तरह वात छेडी जाय ? जरा देर तक मौन रहने के वाद उन्होंने कहा—पुण्डरीकाक्ष, तुम अभी ही न चले जाना, जलपान कर लेना, तव जाना। मैं जलपान की सामग्री लाने को कह आता हूँ।

राजावहादुर की इस वात में पुण्डरीकाक्ष ने अपनी रक्षा के लिए एक उपाय खोज निकाला। वह तो उसी समय वहाँ से चले जाने में अपने लिए परित्राण की वात समझता था। इससे उतावली के साथ उठकर वह खडा हो गया और कहने लगा—जी नही, अव मैं इस समय जलपान न कर सकूँगा। मुझे कुछ कार्य है, इससे इस समय आज्ञा दीजिए।

पुण्डरीकाक्ष ने नमस्कार किया। परन्तु उसने नमस्कार किसको किया, राजावहादुर को या मेना को, यह ठीक-ठीक न मालूम पड सका।

पुण्डरीकाक्ष विदा होकर चला। परन्तु और दिनो की तरह आज उसका हृदय आनन्द के सागर में गोते नही लगा रहा था, वल्कि किसी एक प्रकार के अभाव एव विषाद ने उसके समस्त हृदय को

आच्छादित कर रक्खा था। उसके इस विषाद और चिन्ता का प्रधान कारण था उसकी और मेना की आज की बैठक में एना की अनुपस्थिति। उसके हृदय में वार-वार यही प्रश्न उदय होता कि आज की हम लोगो की सभा में आकर एना ने उसे क्यो नहीं शोभा और जीवनदान किया ?

पुण्डरीकाक्ष की इस चिन्ता का एक वहुत वड़ा कारण था। पुण्डरीकाक्ष आज तक कभी सरल और स्वाभाविक ढङ्ग से मेना से वातें नही कर सका था। प्रतिदिन एना ही उन दोनो की मध्यस्थ होकर उनके मिलन में सहायता देती आई है। आज जो पुण्डरीकाक्ष इस प्रकार लज्जित और सकुचित हो उठा था उसका एकमात्र कारण एना का वहाँ न होना ही था। वह यदि होती तो वातचीत करके, हँसी-ठट्ठा करके, उन दोनो ही को उभाड रखती, किसी को खामोश न होने देती। वास्तव में एना ही पुण्डरीकाक्ष की समस्त वाणी की अधिकारिणी थी, वही तो उसके हृदय की वातो को प्रकट करने-वाली थी, वही तो उसके प्रणय-निवेदन की प्रतिनिधि थी। आज उस एना की अनुपस्थिति के ही कारण तो इतना गडवड हुआ। पुण्डरीकाक्ष में इतना दम कहाँ कि वह सोचकर समय की दो वातें मुँह से निकाल सके! उसका तो मेना के सामने पहुँचते ही हृदय का द्वार वन्द हो जाता है, जिह्वा स्तम्भित हो जाती है। परन्तु एना आज आई क्यो नही ?

पुण्डरीकाक्ष वार-वार सोचकर भी एना के न आने का कोई कारण नही ढूँढ पाता था। राजावहादुर ने जो यह कहा कि एना के मस्तक में पीड़ा हो रही है, यह वात भी उसके मन में जम न सकी। वह सोचने लगा कि जिस समय मैंने उसे देखा था, उस समय तो कोई ऐसा लक्षण मालूम नही पड रहा था कि एना को किसी प्रकार की पीडा हो रही है। तव क्या इतने ही ज़रा-से समय में उसे इस प्रकार की पीड़ा होने लगी कि वह यहाँ आने के लायक न रह सकी ?

पुण्डरीकाक्ष का ध्यान एना की आज की बातो पर भी गया। वह सोचने लगा—आज मुलाकात होने पर एना ने जो बाते की थी, उनमे और दिन की बातो की तरह का हास्य का पुट तो था नही। आज की बातो में तो पुण्डरीकाक्ष को कुछ तिक्त और कटु रस का-सा स्वाद मिला था। इससे वह सोचने लगा कि एना के मिजाज़ में इस प्रकार की गर्मी क्यो आ गई ?

पुण्डरीकाक्ष आज मन पर एक बहुत बडा भार लादकर घर की ओर चला। नीचे उतरते ही उसने देखा तो एना बगीचे में सगमरमर के एक चबूतरे पर बैठी थी। चबूतरे के आस-पास जो पेड-पौधे लगे हुए थे उनकी आड मे अपने शरीर का बहुत-सा भाग वह छिपाये हुए थी। एना की ओर दृष्टि जाते ही पुण्डरीकाक्ष हँस पडा। उसके मन का बहुत-कुछ भार मानो अकस्मात् उतर-सा गया. उसका मन बहुत-कुछ हलका मालूम पडने लगा।

पुण्डरीकाक्ष हँसा, किन्तु एना ने अपना मुँह फेर लिया, यद्यपि वह पुण्डरीकाक्ष का जाना देखने के ही लिए शायद बगीचे में जाकर बैठी थी। पुण्डरीकाक्ष कही उसे न देख ले, इसी विचार से उसने अपने आपको पेड-पौधो की आड मे यथाशक्ति छिपाने का भी प्रयत्न किया था।

एना के इस प्रकार मुँह फेरने की ओर ध्यान न देकर पुण्डरीकाक्ष उसकी ओर बढ़ गया और उसके समीप जाकर बोला—कहो जी छोटी घरैतिन, आज इस अधम अधीन के प्रति इस प्रकार करुणाहीन क्यो हो ?

एना ने कर्कश स्वर में कहा—आज-कल कोई भी भला आदमी बहुविवाह नही करता। भला एक ही घरैतिन को सँभाल लीजिए, छोटी घरैतिन की आवश्यकता अब नही है।

एना एकाएक उठकर दमदमाती हुई वहाँ से चली गई। पुण्ड-रीकाक्ष कैसा विह्वल-सा हो गया। उसकी समझ में ही कोई बात न आई। गोरखधन्धे में पड़कर भटभटाता हुआ वह अपनी कोठी के उदर मे जाकर छिप गया। ——

चौदहवाँ परिच्छेद

पुण्डरीकाक्ष के चित्त मे समस्त दिन खिन्नता बनी ही रही। उसे ऐसा मालूम पड रहा था कि मानो उसने कोई बहुत ही मूल्यवान् वस्तु खो दी है। उस दिन उसका जीवन बिलकुल ही शुष्क, बिलकुल ही नीरस हो पडा था। जैसे-जैसे साँझ का समय समीप आता जा रहा था, वैसे ही वैसे पुण्डरीकाक्ष का चित्त बहुत ही उद्विग्न होता जा रहा था। मेना को उसने प्राप्त कर लिया था, अब विवाह करके उसे घर में ले आना भर बाकी था। इस अवस्था में भी वह उसका चित्त प्रसन्न क्यो नही हो रहा था!

पुण्डरीकाक्ष को अभी-अभी मेना के पास जाना होगा। जाकर वह उससे कहेगा क्या? मेना के सामने पहुँचकर छेडने योग्य एक बात भी तो उसे खोजने पर नही मिल रही थी। पहले भी वह मेना के सामने सहमकर बैठा रहा करता था। परन्तु उन दिनो में एना की मध्यस्थता के कारण वह किसी प्रकार बातचीत कर ही लिया करता था। इधर एना के असहयोग के कारण वह चिन्ता में पड गया था। पुण्डरीकाक्ष सोच रहा था कि यदि कल की ही तरह एना आज भी न उपस्थित रह सकी तो?

मेना के प्रति पुण्डरीकाक्ष के हृदय मे जो एक आदरपूर्ण आकर्षण-था, जो एक श्रद्धा-समन्वित अनुराग था, वह इस प्रकार का था, जैसा कि भक्त के हृदय में देवता के प्रति सेवा का भाव होता है। उसके इस अनुराग को ठीक प्रेम की आसक्ति नही कहा जा सकता। एना को पुण्डरीकाक्ष मानवी के रूप मे देखता था, उसे वह आत्मीय के रूप में देखता था। यही कारण था कि एना को सामने करके उससे पुण्डरीकाक्ष ने जो-जो बातें कही थी, वे मेना के ही लिए कही थी

किन्तु उन बातो को वह इसी कारण से मुँह से निकाल सकता था कि उसके सामने एना होती थी। मेना की ओर मुँह करके तो वह कभी उस तरह की बात कहने के लिए ज़बान तक नही हिला सकता था।

पुण्डरीकाक्ष मेना के साथ विवाह करने का प्रस्ताव कर बैठा। अब उसके लिए यह आवश्यक हो गया कि वह उसके पास प्रतिदिन जाया करे। परन्तु जाने का समय जैसे-जैसे समीप आता जाता वैसे ही वैसे पता नही क्यो उसके हृदय मे कम्पन उठता जाता था। जाऊँ या न जाऊँ, इसी चिन्ता के कारण द्विविधा में पडा हुआ पुण्डरीकाक्ष अपनी छत पर टहल रहा था। मेना की छत की ही ओर उसकी दृष्टि लगी हुई थी। वह उस समय इस बात के लिए लालायित था कि क्या ही अच्छा होता कि एना आ जाती और प्रसन्न-भाव से मुस्कराती हुई मुझे बुलाती।

पुण्डरीकाक्ष के हृदय मे जिस समय ये सब बाते आ रही थी, ठीक उसी समय उसे राजाबहादुर का एक पत्र मिला। उस पत्र में लिखा था——प्रिय पुण्डरीकाक्ष, तुम साँझ को आओगे, यह आशा मुझे है। तो भी शायद किसी कारण से न आ सको, इससे आज आने के लिए मैं विशेष रूप से अनुरोध कर रहा हूँ। आज रात को तुम यहीं भोजन भी करना। यहाँ आने पर एक सज्जन से मैं तुम्हारा परिचय करा दूँगा। तुम अवश्य, अवश्य आना।

यह पत्र मिलते ही पुण्डरीकाक्ष की जान में जान आ गई। अब उसे राजाबहादुर के यहाँ जाने का साहस हो आया। अब यह बात नही रह गई कि वह केवल मेना के दर्शन की अभिलाषा मे वहाँ जा रहा है। अब तो उसे इस बात का सहारा हो गया कि मैं स्वेच्छा से नही, बल्कि राजाबहादुर के अनुरोध से जा रहा हूँ। वह भी इस-लिए कि एक नये आदमी से परिचय होगा और कम-से-कम उससे कुछ बाते करने का अवसर मिलेगा। मन को इस प्रकार की सान्त्वना

मिल जाने पर वह नीचे आया और चलने के लिए तैयारी करने लगा।

राजावहादुर के यहाँ पहुँचकर पुण्डरीकाक्ष ने देखा तो सव लोग ऊपरवाली वैठक मे जमे थे। राजावहादुर थे, मेना थी, एना थी, भास्कर था और एक नया आदमी था। इस आदमी के शरीर का रग बहुत साफ था। नाक कुछ ऊँची थी। गोला-सा चेहरा था। खूब साफ-सुथरा, बना-ठना। देखने से ही जान पडता था कि यह कोई वडा आदमी है। वेश-भूषा वडे कायदे की और कीमती थी। परन्तु सिर से पैर तक सब कुछ विलायती ही था। यह सारा ठाट-वाट देखने पर जान पडता था कि मानो जन्मकाल से ही यह लक्ष्मी के उल्लू के परों की छाया में ही रहकर इतना वडा हुआ है।

पुण्डरीकाक्ष ने जिस समय वैठक मे प्रवेश किया, उस समय वह अपरिचित व्यक्ति शिकार-सम्बन्धी वाते कर रहा था। किस प्रकार एक सिंह ने गोली खाकर उसके एक हाथी पर आक्रमण किया था और हाथी को उसने घायल कर दिया था, इसी बात का वर्णन विस्तार के साथ चल रहा था। पुण्डरीकाक्ष के पहुँचने पर उसने केवल एक दृष्टि से उसे देख लिया और फिर उसकी उपेक्षा करके वह अपनी वातों में लगा। परन्तु उस शिकार की कहानी मे व्याघात डालते हुए राजाबहादुर ने कहा——आओ, आओ, पुण्डरीकाक्ष! कन्दर्प, तुमसे इनका परिचय करा दूँ। ये हमारे पडोसी है। सामने जो सगमरमर की कोठी दिखाई पड रही है, वह इन्ही की है। इनका नाम है श्रीमान् पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड और पुण्डरीकाक्ष, ये है कुमीरखाली के ज़मीदार श्रीमान् कन्दर्पकुमार राय चौधरी। ये वहुत वडे शिकारी है। शिकार का ही हाल ये वतला रहे है।

पुण्डरीकाक्ष ने कन्दर्प को नमस्कार किया। कन्दर्प ने भी अनिच्छा से ही उसके नमस्कार का उत्तर दे दिया। पुण्डरीकाक्ष

की ओर उसने ज़रा-सा देखा तक नही। इस ज़रा-से व्यवधान के वाद अपना शिकार का हाल उसने फिर छेड दिया।

इस गप-शप में ज़रा-सा विराम होते ही एना झट वोल उठी—चलिए भास्कर वावू, हम-तुम वगीचे में टहल आवें। साँझ का समय है, घर के भीतर घुसकर वैठा रहना अच्छा नही मालूम पडता।

यह वात कहते ही कहते एना एकदम से उठ खडी हुई। भास्कर की ओर एक वार ताक दृष्टि के सङ्केत से ही उसने कमरे से अपने साथ में निकल पडने के लिए उसका आह्वान किया।

जिस दिन पुण्डरीकाक्ष को निमन्त्रण देकर भोजन कराया गया था, उस दिन भास्कर को निमन्त्रण देने मे भूल हो गई थी। इससे उस दिन विशेप उपलक्ष्य में निमन्त्रित किये गये व्यक्ति के साथ भोजन करना उसने अस्वीकार कर दिया था, यद्यपि ऐसे वह प्रति-दिन ही राजावहादुर के यहाँ भोजन किया करता था। उस दिन की भूल के कारण आज का निमन्त्रण भास्कर को वहुत पहले से दे दिया था। केवल इतना ही नही, वल्कि उसे भी वुलाकर इस सभा में वैठने को कहा गया था।

धनिको की इस सभा में वैठने मे भास्कर कुछ उद्विग्नता का-सा अनुभव कर रहा था। परन्तु फिर भी एक किनारे पर शान्त-भाव से आसन जमाये हुए वह कन्दर्पकुमार की लम्वी-चौडी वातें सुन रहा था। यहाँ से भागने का उसे कोई उपाय सूझता नही था। इससे उसने यह समझ लिया था कि विधाता ने आज का नौ-दस वजे तक का यह कर्मभोग ललाट मे टाँच रक्खा है। परन्तु एना के इस प्रकार वुलाने से उसे छुटकारा मिल गया।

भास्कर इतने दिनो से राजावहादुर के यहाँ रहता आया था, किन्तु आज पहला अवसर था जव कि एना ने स्वेच्छा से उससे वातें की थी। आज तक मेना या एना ने कभी अपनी ओर से भास्कर से किसी प्रकार की वातचीत नहीं की। स्वय भास्कर ने ही कार्यवश कई

वार मेना के पास जाकर उससे वाते की थी, एना से वातें करने का उसे कभी कोई अवसर ही नही मिला। भास्कर ने इसके लिए प्रयत्न भी नही किया। वह सोचता था, कही कोई यह न समझ बैठे कि घर का नौकर होकर भी यह वरावरी करने का दावा करता है। परन्तु आज एना ने स्वय उसे पुकारकर उससे वाते की, इससे भास्कर को वडा आश्चर्य, किन्तु साथ ही साथ कौतूहल भी हुआ। वह एना के साथ ही साथ उठ खडा हुआ।

राजावहादुर ने जव यह देखा कि एना और भास्कर उठकर चले जा रहे है, तव वे कहने लगे--हाँ कन्दर्प, वगीचे में जाकर तुम लोग घूम-फिर आओ, तव तक मै पूजा-आदि से निवृत्त हो लूँ।

कन्दर्प भी उठकर खडा हो गया। मेना की ओर सङ्केत करके उसने कहा--अच्छी वात है, चलो, वगीचे मे ही ज़रा देर तक घूमा-फिरा जाय। इधर आज पूर्णिमा भी है।

मेना उस समय द्वैविध्य मे पडी हुई थी। उठूँ या नही, उठकर जाऊँ भी तो किसके साथ जाऊँ, कन्दर्प के साथ या पुण्डरीकाक्ष के साथ, यह वात वह नही निर्णय कर पाती थी। इससे वह आना-कानी कर रही थी। परन्तु कन्दर्पकुमार तो किसी प्रकार का सङ्कोच करनेवाला था नही। अत्यन्त ही परिचित आत्मीय के समान मेना की पीठ पर हाथ रखते हुए उसने कहा—चलो, चलो, उठो न।

राजावहादुर ने उस समय तक कन्दर्पकुमार से यह नही कहा था कि पुण्डरीकाक्ष के साथ मेना के विवाह की वात पक्की हो गई है। साथ ही पुण्डरीकाक्ष से भी वे यह न कह सके कि इस युवक के साथ मेना का विवाह वहुत दिन पहले ही एक प्रकार से स्थिर हो चुका था। इसका एक कारण तो यह था कि आज कन्दर्प-कुमार विना किसी प्रकार की सूचना ही दिये आ पहुँचा था। उसकी वातचीत से कुछ इस प्रकार का भी आभास मिला कि वह यहाँ

कुछ दिन तक रहना चाहता है। राजाबहादुर सोच रहे थे कि कन्दर्प के यहाँ कई दिनों तक रहने के कारण पता नही, उसका और मेना का सम्पर्क कैसा हो उठे। कन्दर्प को पहले से ही बात दी जा चुकी है, इससे सम्भव है कि मेना का और उसका प्रेम प्रगाढ हो गया हो। यदि ऐसी बात हुई तो पुण्डरीकाक्ष के साथ उसके विवाह की जो बातचीत हुई है, वह शायद भग कर देनी पडे। दूसरा कारण यह था कि पुण्डरीकाक्ष और मेना का विवाह स्थिर होते ही मेना और एना का चेहरा ही न जाने कैसा हो गया? इस सम्बन्ध में उन दोनों बहनों का मनोभाव क्या है, यह बात भली भाँति जाने बिना राजा बहादुर पूर्णरूप से कुछ स्थिर करना उचित नही समझते थे।

ऐसी भयङ्कर चिन्ता के समय वृद्ध राजाबहादुर को एकाएक पत्नी की याद आई। वे सोचने लगा कि इस अवसर पर यदि इन कन्याओं की माता जीवित होती तो वे आसानी ये इनका मनोभाव जान लेती। पुण्डरीकाक्ष ने राजाबहादुर के जो दस्तावेज लाकर उन्हे दिये थे, उनके कारण वे उसके आभारी अवश्य हो उठे थे, परन्तु उनके अन्तःकरण में बार बार यह बात आती कि मेना का विवाह कन्दर्प के ही साथ करना उचित और शोभाजनक होगा। कन्दर्प की चोटी के सिरे से लेकर पैर के नाखून के सिरे तक बराबर कुलीनता के लक्षण भरे पडे है। मेना-जैसी कन्या के उपयुक्त वर वही है, पुण्डरीकाक्ष नही। बात यह है कि नारी जाति की मर्य्यादा तथा महत्त्व के लिए जितनी बातें आवश्यक है, वे सभी मेना में भरी पडी है। ऐसी आदर्श कन्या के लिए कुलशील-सम्पन्न वर भी तो चाहिए। पुण्डरीकाक्ष एकाएक धनवान् हो उठा है अवश्य, किन्तु उसकी देह और मन पर लक्ष्मी के तेज का रग अभी तक अच्छी तरह से चढा नही।

कन्दर्प ने मेना की पीठ पर हाथ रखकर जब उससे चलने का तकाजा किया तब मेना ने एक बार जिज्ञासामयी दृष्टि से पिता की ओर देखा। उसे इस प्रकार ताकती देखकर राजाबहादुर

ने कहा—हाँ मेना, जाती क्यों नही हो ? तुम लोग जाओ, जरा-सा घूम-फिर आओ।

पिता की ओर से दृष्टि हटाते ही मेना ने पुण्डरीकाक्ष की ओर ताककर देखा। वह उस समय अपनी मछली की-सी आँखों से करुण-भाव से उसी की ओर ताकता हुआ बैठा था। उसकी दृष्टि में किसी प्रकार का रोष या आकाक्षा का भाव नही था, यद्यपि मेना उस समय उसकी वाग्दत्ता वधू थी और उस पर अकस्मात् किसी दूसरे आदमी को दखल जमाते देखकर उसका क्रुद्ध होना तथा मेना को स्वय अपने साथ ले जाने का आग्रह प्रदर्शित करना पुण्डरीकाक्ष के लिए स्वाभाविक था।

मेना पत्थर की मूर्ति के समान जड-सड होकर उठी और कन्दर्प के साथ-साथ कमरे से निकलकर चली गई। परन्तु अभी तक पुण्डरी-काक्ष का आसन नही डिगा। सवके चले जाने पर भी जव वह वहाँ का वही जमा रहा तव राजावहादुर ने कहा—पुण्डरीकाक्ष, जाओ न, तुम भी इन लोगो के साथ घूम-फिर आओ।

पुण्डरीकाक्ष अव उठकर चला। परन्तु उन लोगों के साथ जाने में उसे न तो किसी प्रकार का उत्साह था और न उसके हृदय में इस वात के लिए किसी प्रकार का आग्रह था। वह यह भी नहीं अनुभव कर रहा था कि मुझे इनमे से किसी के साथ जाने का किसी प्रकार का अधिकार है। वह तो राजाबहादुर के कहने से इस प्रकार उठकर चला, मानो कोई समझदार और ज्ञानकारी बालक अपने किसी वड़े की आज्ञा का पालन कर रहा हो।

पुण्डरीकाक्ष जव कमरे से निकलकर वाहर आया तव वहाँ कोई था नही, सव लोग वगीचे में चले गये थे। पुण्डरीकाक्ष के हृदय मे इस बात की प्रवल इच्छा हो रही थी कि विना किसी से कुछ कहे-सुने चुपचाप यहाँ से चला जाऊँ और अपनी कोठी की आड में छिप रहूँ। परन्तु इस प्रकार चुपचाप भाग जाने का साहस उसमें नही

था। बडे ही सङ्कोच के साथ धीरे-धीरे ऊपर-से उतरकर वह बगीचे में गया। उसके मन में बार-बार यही बात आती कि मुझे यहाँ आने का कोई अधिकार ही नही था। इतने बडे आदमी के घर में पैर रखना भी मेरे जैसे आदमी के लिए अनधिकार चेष्टा है।

कोठी के पिछवाडे एक बहुत ही बडा बगीचा था। छत्तीस बीघों में वह बगीचा फैला हुआ था। उसमें कितने रास्ते थे, कितने कुज थे, कितने लता-गृह थे, कितने तरह-तरह के फलो के वृक्षों के बगीचे लगे हुए थे। ये सभी अलग अलग टुकडों में बँटे हुए थे। सारा बगीचा बहुत ही सुरुचि-पूर्ण ढग से सजाया गया था।

बीच में तालाब था, जिसमें एक छोटी-सी नौका बँधी हुई थी। सफेद, लाल और नीले रंग के उसमें कुमुद खिले थे। तालाब पर सग-मरमर का एक चबूतरा बँधा हुआ था। उस चबूतरे के एक बग़ल एक छोटी-सी अशोक-वाटिका थी। उस अशोक-वाटिका में दो ऐसे वृक्ष थे, जो एक-दूसरे से मिले हुए-से थे। उन दोनों वृक्षों में एक हिंडोला टँगा हुआ था। उस हिंडोले पर आ-आकर कभी-कभी लडकियाँ झूलती और मनोविनोद किया करतीं। फूल और फल के बगीचे ऐसे कौशल से लगाये गये थे, कि बगीचा किसी भी ऋतु में फल-फूल से खाली नही रहता था। ऋतु के अनुसार तरह-तरह के फूल और तरह-तरह के फल उस बग़ीचे को सुशोभित और समृद्धिशाली कर रखते थे।

बग़ीचे में प्रवेश करते ही पुण्डरीकाक्ष ने देखा कि मैना और कन्दर्प एक ओर चले जा रहे है। एना और भास्कर टहलते-टहलते पुण्डरीकाक्ष की ही ओर आ रहे थे। परन्तु एना ने जब देखा कि पुण्डरीकाक्ष ठेल-कर एक किनारे कर दिया गया है और गोल से बिछुडा हुआ वह अकेला ही टहल रहा है तब वह हँसी। एना को इस प्रकार हँसती देखकर पुण्डरीकाक्ष का मन बिलकुल ही टूट गया।

पुण्डरीकाक्ष के समीप आते ही एना झटपट दूसरी ओर घूम गई

और उसे सुनाते हुए ऊँची आवाज़ से कहने लगी---चलिए भास्कर बाबू, हमतुम उस ओर चलकर टहले, जिस ओर कोई नही है ।

दो जोडें पुण्डरीकाक्ष की दृष्टि से परे होकर आड मे चले गये। आज मानो एना विद्रोहिणी हो गई थी। उसने भास्कर का साथ किया था और शायद इसलिए किया था कि पुण्डरीकाक्ष अपने-आपको तिरस्कृत समझे। पुण्डरीकाक्ष यद्यपि बहुत सीधा और छल-प्रपञ्च-रहित आदमी था, परन्तु यह बात उसे भी समझने को बाकी न रह सकी।

पुण्डरीकाक्ष ने चोर की तरह एक लतागृह मे प्रवेश किया। उसी में वह छिपा हुआ बैठा रहा। बैठने के ही लिए खूब गढकर लगे हुए एक पत्थर पर बैठे-बैठे वह सोचने लगा---इस मण्डली के अनुकूल मै अपने आपको किसी प्रकार भी नही बना पाता हूँ। पहले-पहल जब मै इन लोगों के सम्पर्क में आया हूँ तब तो मुझे इस प्रकार का बेतुकापन, इस प्रकार की असङ्गति नही मालूम पड रही थी। कहाँ का कौन-सा ऐसा पुर्जा यहाँ आकर बिगड गया कि मेरा इजन यहाँ एकाएक रुक गया। जो विधाता मेरे सौभाग्य को इतनी दूर ढोकर उठा ले आये, वे अब घाट के बिलकुल समीप लाकर भरी हुई नौका क्यों डुबाना चाहते है ? सभी लोग बडी सरलता के साथ मेना और एना से मिलते-जुलते है, उनसे बातें करते है। यहाँ तक कि घर का नौकर भास्कर भी उनका साथी और समकक्ष बन बैठा है। तब भला मुझे ही क्यों उनके दल में स्थान नही मिल सका ? मै क्यों इस तरह गोल के बाहर निकाल दिया गया हूँ ?

बेचारे पुण्डरीकाक्ष ने अपने भाग्य-फल पर विचार करते-करते वहाँ कितने क्षण व्यतीत कर दिये, इसका उसे ध्यान नही था। एकाएक उस कुज में आदमी के प्रवेश करने की आहट मिलने के कारण उसकी चेतनता लौट आई। उसने देखा तो मेना और कन्दर्प थे।

पुण्डरीकाक्ष जिस पत्थर के आसन पर बैठा हुआ था, वह लताओं की आड़ मे था और घनी पत्तियों के कारण बिलकुल ढका हुआ

था। इससे मेना और कन्दर्प उसे देख नही सके। ऐसे एकान्त स्थान में किसी तीसरे व्यक्ति के भी होने की सम्भावना है, इसकी कल्पना भी उन दोनों के हृदय में नही उदित हो पाई। इधर इस युगल-मूर्ति के आविर्भाव के कारण पुण्डरीकाक्ष बहुत ही उद्विग्नता का अनुभव करने लगा। परन्तु इस विचार से कि कही मेरे उठकर यहाँ से चलने का उद्योग करने पर इन लोगो के एकान्त मिलन में व्याघात पडेगा, उसे अपनी सारी उद्विग्नता मन की मन में ही छिपा रखनी पडी। इच्छा न होने पर भी वह हाथ-पाँव समेटे हुए निश्चल-भाव से वही बैठा रहा। पुण्डरीकाक्ष यह भी सोच रहा था कि दो युवक-युवतियों का एकान्त मिलन देखना उचित नही है, परन्तु उसे कोई ऐसा मार्ग नही दिखाई पड रहा था, जिससे होकर वह निकल भागे।

पुण्डरीकाक्ष ने सोचा कि इस समय यदि मै यहाँ से चलता हूँ तो इन लोगों को यह मालूम हो जायगा कि मैंने इनका एकान्त में आना देख लिया है। इससे शायद मेना को लज्जित होना पड़े। इसके सिवा इन लोगों में किस प्रकार का सम्पर्क है और मेना का स्वभाव कैसा है, यह बात जानने का अवसर जब अनायास आ गया है, तब इसे ही क्यो हाथ से जाने दूँ?

उस कुञ्ज में पुण्डरीकाक्ष स्थिर होकर शान्त भाव से बैठा ही रहा। उसके कानों में अब मेना और कन्दर्प के शब्द पहुँचने लगे। कन्दर्प कह रहा था,—मेना, मेरी इच्छा है कि अब इसी श्रावण में विवाह करके मै तुम्हें अपने यहाँ ले चलूँ। हमारे-तुम्हारे विवाह का निश्चय हुए कितने दिन हो गये। तुमने जो यह प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि बी० ए० पास किये बिना मै विवाह ही न करूँगी, इसी कारण हम दोनों के मिलन में विलम्ब हो रहा है। इस अनावश्यक विलम्ब के कारण हम दोनों का जीवन कितना निस्सार, कितना विड-म्बनामय है! इस बार तो तुम बी० ए० पास कर ही लोगी, फिर

विलम्ब करने की क्या आवश्यकता है? इस श्रावण मे ही हम लोगों का विवाह हो जाय। ठीक है न?

मेना ने गम्भीर भाव से कहा—यह मैं कुछ नही जानती हूँ, पिता जी ही इस बात का उत्तर दे सकते है। आपको जो कुछ कहना हो, वह पिता जी से कहिए।

जान पड़ा कि कन्दर्प ने मेना का हाथ पकड लिया। पुण्डरीकाक्ष वृक्ष की आड़ में होने के कारण देख नही सका, परन्तु उसने सुना ज़रूर। मेना कह रही थी कि मेरा हाथ छोड दीजिए, हाथ न पकडिए। कन्दर्प ने कोमल स्वर मे कहा—अब भी तुम मेरे प्रति इस प्रकार निष्करुण क्यों हो? मेरा नाम है कन्दर्प। किन्तु मैं कन्दर्प के वाण से विलकुल जर्ज्जरित हो उठा हूँ। मुझे एक चुम्बन दो।

मेना ने कठोर स्वर में कहा—आह, छोडिए। आप यह क्या कर रहे हैं। आपके मुख से मदिरा की गन्ध आ रही है। आपने मदिरा-पान किया है।

पुण्डरीकाक्ष को यह जान पडा कि शायद कन्दर्प मेना का चुम्बन करने का प्रयत्न कर रहा है। बैठ ही बैठे उसके शरीर से तर-तर पसीना चूने लगा।

पुण्डरीकाक्ष को ऐसा मालूम पडा कि कन्दर्प अपने इस प्रयत्न मे बाधा पाकर कहने लगा—तुम्हारे अधरों मे जो सुधा भरी पडी है, उसे प्राप्त न कर सकने के ही कारण तो मुझे मदिरा-पान करना पडता है। अधरसुधा का पान करने देने में तुम इस प्रकार की कृपणता क्यों कर रही हो? दो दिन के वाद तो हमारा-तुम्हारा विवाह हो ही जायगा। ऐसी दशा मे दो दिन बाद जो बात होनेवाली है, वह यदि दो दिन पहले ही हो जाय तो उसमे क्या हानि है? इससे तो तुम्हारा सतीत्व नष्ट होने का है नही! इतना कहकर कन्दर्प हो हो करके हँस पडा। उसके साथ ही एक धक्कम-धक्के की आवाज़ पुण्डरीकाक्ष के कानो में पहुँची।

जन्मकाल से दरिद्रता के ही बीच में पुण्डरीकाक्ष का पालन-पोषण हुआ था। छुटपन से ही वह देखता आ रहा था कि अधिकाश लोग उसे तुच्छ समझकर उसके सम्पर्क से दूर ही दूर रहते आये हैं। पिता की देखादेखी वह स्वय भी सबको समान दृष्टि से देखता और सभी का सम्मान करता आया है। डर के मारे किसी के पास फटकने या मस्तक उठाकर किसी की बराबरी करने का साहस उसने कभी नही किया। बाद को पुण्डरीकाक्ष ने जब नौकरी करनी शुरू की तब भी एक साधारण-सा क्लर्क होने के कारण सबसे दब-दबकर ही वह रहा करता था, उस समय भी वह कभी इतना साहस नही कर सका कि सीधी निगाह से किसी से बातचीत कर सके। सभी की घुडकियाँ खाते हुए सभी की आज्ञा का पालन करने के लिए उसे बाध्य होना पड़ा है। इससे उसके हृदय मे यह बात भली भाँति जम गई थी कि मै सभी से तुच्छ, सभी से हीन हूँ।

पुण्डरीकाक्ष के हृदय में अपने सम्बन्ध में जो इस प्रकार की भावना बद्धमूल हो गई थी, उसके कारण उसमें किसी प्रकार की तत्परता उत्पन्न ही नही हो पाई। उसमें न तो कभी इस प्रकार की भावना उत्पन्न हो पाई कि जब मन मे किसी प्रकार का कार्य करने की इच्छा उत्पन्न हो तब झटपट वह उसे कर चले और न उसे इसी बात का अभ्यास था कि आवश्यकता के समय कार्य्याकार्य का निर्णय करके अपनी कार्यपद्धति तुरन्त स्थिर कर ले। स्वतन्त्र इच्छा से किसी प्रकार का कार्य करने का तो उसका कभी का अभ्यास ही नही था।

पुण्डरीकाक्ष को इस बात का पूर्णरूप से ज्ञान हो गया था कि मेना के आपत्ति करने पर भी कन्दर्पकुमार उससे छेडछाड कर रहा है और वह उस पर आक्रमण करने का उद्योग कर रहा है। परन्तु अपनी स्वाभाविक भीरुता के कारण वह तत्काल यह नही स्थिर कर सका कि ऐसी परिस्थिति में मेरा कर्त्तव्य क्या है? पुण्डरीकाक्ष ने जब कन्दर्प को देखा था, तभी से उसकी

चाल-ढाल और हर बात में उसका उपेक्षा का भाव देखकर वह उसके सामने कुण्ठित हो गया था। उसने यह समझ लिया था कि यह एक बडा आदमी है। इसका हर जगह बहुत बडा सम्मान है। इसके सामने मेरी गणना क्या है? इस कारण मेना और कन्दर्प में धक्कम-धक्का होने का शब्द सुनकर भी पुण्डरीकाक्ष यह नही स्थिर कर सका कि इस परिस्थिति मे मेरा कर्त्तव्य क्या है? मै उठूँ या न उठूँ, इसी सोच-विचार में वह पडा था, इतने में मेना का तीक्ष्ण स्वर सुनाई पडा---भास्कर बाबू, क्या आप इस बदमाश शराबी के हाथ से मुझे बचा सकते हैं?

एना उस समय बगीचे से निकल गई थी। जब उसने पुण्डरीकाक्ष को दल से पृथक् होकर अकेले झुड से पृथक् कर दिये गये पशु की तरह टहलते हुए देखा था तब निष्ठुर-भाव से हँसकर उसे झेपाती हुई भास्कर को लिये हुए दूसरी ओर चली गई थी। परन्तु पुण्डरीकाक्ष की दृष्टि के अन्तराल मे जाते ही अपनी कृत्रिम हँसी को वह स्थायी न रख सकी। एकाएक अत्यन्त ही गम्भीर होकर उसने भास्कर से कहा---भास्कर बाबू, मुझे क्षमा कीजिए। अब टहलने को मेरा जी नही चाहता है। मै घर लौटी जा रही हूँ। इतना कहकर वह दनदनाती हुई कोठी की ओर रवाना हुई। तब भास्कर ने कहा—क्या मै आपको कोठी पहुँचा आऊँ?

उसके उत्तर में भास्कर की ओर बिना देखे ही चलते-चलते एना ने कहा—जी नही, धन्यवाद। पहुँचाने की आवश्यकता नही है।

एना जब चली गई, तब भास्कर सोचने लगा कि आज कौन-सी ऐसी बात थी कि एना ने मुझसे अपने साथ चलने का अनुरोध किया, बाद को एकाएक साथ छोडकर चली भी गई। जाते समय वह इतना भी नही सहन कर सकी कि मै उसके साथ कोठी तक जाऊँ। बात कुछ भास्कर की समझ मे न आई। तब ज़रा-सा मुस्कराता हुआ मन ही मन वह अग्रलिखित श्लोक की आवृत्ति करने लगा---

स्त्रियाश्चरित्र पुरुषस्य भाग्य देवा न जानन्ति कुतो मनुष्या ।

भास्कर को वगीचे में टहलने की कोई विशेष इच्छा नही थी। इसके सिवा एना जव चली गई तव टहलने के लिए उसका कोई साथी भी नही रह गया। इससे उसने भी कोठी की ओर लौटने का निश्चय किया। परन्तु एना जिस ओर को गई थी, भास्कर उसकी विपरीत दिशा की ओर वेग से पैर वढाता हुआ चला। एना कही यह सन्देह न कर वैठे कि भास्कर मेरा अनुसरण कर रहा है, इस आशङ्का से वह घूमकर स्थान की ओर जाने लगा।

उस समय तक रात्रि हो चली थी। पूर्णिमा का दिन था। परन्तु आकाश पर ज़रा-ज़रा मेघ होने के कारण चन्द्रमा का पूर्ण प्रकाश नही फैल पाया था। तो भी मेघ के पतले-से आवरण को भेदकर धुँधली-सी ज्योत्स्ना पृथ्वी पर फैल गई थी। इस कारण वगीचे का अन्धकार पतला होकर उस तरल प्रकाश में मिल गया था और उसने एक अपूर्व शोभा धारण कर ली थी। उसी प्रकाश में लताकुञ्ज में आने-जाने के लिए जो ज़रा-सा अन्तर छोड दिया गया था, उसी से होकर मेना की दृष्टि भास्कर तक पहुँच गई थी उसने भास्कर को जाते देख लिया। तभी उसने उसे पुकारकर कहा—भास्कर वावू, क्या आप इस वदमाश शरावी के हाथ से मेरी रक्षा कर सकते है ?

एकाएक उसका नाम लेकर किसी के पुकारने की आवाज़ सुनकर भास्कर ठमककर खडा हो गया। लता-कुञ्ज की ओर कान लगाकर जव वह ध्यानपूर्वक सुनने लगा तव एक पटका-पटकी की आवाज़ उसके कान में आई, परन्तु वह कुछ देख न सका। तव वह एक साँस में दौडता हुआ जाकर कुञ्ज में घुस गया।

भास्कर के दौडकर आने की आहट पाते ही कन्दर्प ने मेना को छोड दिया और वह हटकर अलग खडा हुआ। इधर पुण्डरीकाक्ष ने जव मेना की भास्कर को पुकारने की आवाज़ सुनी तव उसके

भी मन मे आया कि उठकर दौडूँ, परन्तु मन की बात मन ही में रह गई, वह उठ न सका।

भास्कर ने समीप जाकर देखा तो मेना की चोटी ढीली होकर अस्त-व्यस्त हो गई थी। उसकी साडी भी ठिकाने से नही रह गई थी। कन्दर्प के आक्रमण से बच जाने पर हाँफती-हाँफती वह मस्तक पर साडी खीच रही थी।

लता-कुञ्ज मे पहुँचकर भास्कर ने कुछ कहा नही। परन्तु उसके पहुँचते ही कन्दर्प क्रोध से गरज उठा––दूर हो सूअर, भाग यहाँ से।

कन्दर्प अपना ज़मीदाराना रोब दिखाने का प्रयत्न कर रहा था। परन्तु उसकी यह बात समाप्त भी न हो पाई कि भास्कर का एक ज़ोर का घूँसा जाकर उसके मुँह पर पडा और वह चक्कर खाते-खाते दो हाथ की दूरी पर चला गया। वहाँ फूलों के पौधे और टब होने के कारण कन्दर्प भूमि पर नही गिरने पाया; उनसे टकराकर किसी प्रकार उसने अपने पैर सँभाल लिये। परन्तु भास्कर के घूँसे का जो मधुर स्वाद उसने प्राप्त किया था, उसके कारण मुँह से और कोई बात न निकालकर मार खाये हुए कुत्ते की तरह दुम दबाये लता-गृह से निकलकर वह चला गया। ज़रा-सा दूर निकल जाने पर कन्दर्प चिल्लाकर यह भी कह गया कि गुडा लगाकर तेरी खोपडी फोडवा कर न छोडी तब कहना। इसका बदला मै लेकर रहूँगा।

कन्दर्प के मुँह पर आ-आकर कितनी ही भद्दी-भद्दी गालियाँ ज़बान खोलने के लिए उसे व्यग्र करने लगी, किन्तु उनमे से एक को भी बाहर निकालकर भास्कर के कानों तक पहुँचा देने का साहस उसे न हो सका।

कन्दर्प के चले जाने पर भास्कर ने मेना से कहा––क्या मै आपको पहुँचा दूँ ?

मेना ने कहा––आप ज़रा-सा बाहर चलकर खड़े हो जाइए, मैं ठीक से कपड़े पहनकर आती हूँ।

भास्कर कुञ्ज से बाहर निकल गया। परन्तु पुण्डरीकाक्ष उस समय भी अपने को सबसे छिपाये बैठा था। हाय, हाय, अब वह क्या करे? कही यह समझकर कि यहाँ कोई नही है, मेना अपने कपडे एकदम से खोल न डाले? यह बात मन मे आते ही पुण्डरीकाक्ष ने आँखें मूँद ली, और वह अन्धा बनकर बैठा रहा।

मेना के साडी और जम्पर ठीक से सँभालकर बाहर आते ही भास्कर ने कहा—आपसे बहुत दिनों से एक बात कहने की इच्छा थी, किन्तु कहने का साहस नही कर सका। बात मुँह पर आ-आकर रह जाती थी। आज साहस करके उसे कह ही डालना चाहता हूँ। आप यदि आज्ञा दे, तो कहूँ।

मेना घर की ओर रवाना हो चुकी थी, परन्तु भास्कर की यह बात सुनते ही वह ठमककर खडी हो गई। कुछ आश्चर्य मे आकर उसने कहा—कहिए।

भास्कर ने कहा—मुझे यह मालूम था कि आप कन्दर्प की वाग्दत्ता वधू है, इससे मैंने इतने दिनों तक अपने मन की अभिलाषा मन ही में दबा रक्खी थी, उसे प्रकट नही कर सका। परन्तु आज की इस घटना से मैं जहाँ तक समझता हूँ, अब आप इस आदमी की पत्नी होना न स्वीकार करेगी। ऐसी दशा मे यदि आप मुझे ग्रहण करें तो मेरा—

मेना एकाएक क्रोध मे आ गई। कर्कश और तिरस्कारपूर्ण स्वर में वह बोल उठी—लोभी कही के! क्या आप समझते है कि उस लम्पट के हाथ से आपने जो मुझे बचा लिया है, उसके कारण मुझसे कृतज्ञता का मूल्य वसूल कर लेगे? इतने दिनों तक आपकी यह इच्छा कहाँ गई थी? अब आपको शायद मालूम हो गया है कि पुण्डरीकाक्ष बाबू ने पिता जी का सारा ऋण चुका कर उनकी जमीदारी उन्हें वापस करा दी है। इसमे अब आप भी आये है उस जमीदारी का आधा हिस्सा प्राप्त करने के लोभ से मुझे कृतार्थ करने!

यह वात कल आप क्यों नही कह सके ? यदि कल कहे होते तो मैं वहुत ही प्रसन्नता के साथ आपकी वात स्वीकार कर लेती, मुझे रुपयों के पीछे आत्म-विक्रय न करना पडता।

भास्कर को मानो किसी ने एकाएक इतने जोर की ठोकर मारी कि उसकी चेतना ही लुप्त हो गई। मुहूर्त्तभर वह निस्तब्ध भाव से खडा रहा। वाद को धीर और गम्भीर स्वर से उसने कहा—मै नही जानता था कि पुण्डरीकाक्ष वावू ने आपके पिता का ऋण चुका कर वदले में आपको प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की है। इसके सिवा यदि मुझे धन का लोभ होता तो मैं अपने पिता की जमीदारी छोडकर आप लोगों की दासता करने क्यों आता ? मेरी यह धारणा थी कि आप मुझसे प्रेम करती हैं। मेरे हृदय में भी आपके प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया था। इसी कारण यह अनुचित दु स्साहस प्रकट कर वैठा हूँ। क्षमा कीजिए, अव मैं जहाँ तक हो सकेगा, शीघ्र ही आपके यहाँ से चला जाऊँगा। प्रयत्न मुझे केवल इस वात का करना है कि आपके पिता के मन में किसी प्रकार का सन्देह न उत्पन्न हो सके। मैंने यह जो मूर्खता की है, इसका पता कभी और किसी को न चल सकेगा।

और कोई वात न कहकर तेजी से पैर वढाता हुआ भास्कर वहाँ से चला गया। मेना को घर तक पहुँचा देने की प्रतीक्षा अव वह न कर सका।

भास्कर के हटते ही मेना वही भूमि पर वैठ गई और वह सिसक-सिसककर रोने लगी।

पुण्डरीकाक्ष के कानों मे मेना के अन्तिम वाक्य के थोडे से शव्द गूंज रहे थे—यही वात कल क्यों नही कह सके ? उस दशा मे मैं प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेती, मुझे रुपयों के लिए अपने आपको वेचना न पडता।

पुण्डरीकाक्ष वैठे-वैठे सोच रहा था—हाय ! हाय ! अन्धा हूँ मैं।

मैंने केवल अपने ही सुख की ओर दृष्टिपात किया है। जिसको मैंने यह समझ रक्खा है कि मैं इससे प्रेम करता हूँ, उसके सुख की ओर मैंने दृष्टि ही नही डाली। मैंने रुपयों के बल पर प्रेम खरीदने की दुराशा की थी। जो मेना कल प्रस्ताव करने पर इस दरिद्र भास्कर को परम आनन्द के साथ वरण कर लेती, उसे मैंने रुपयों के जाल में फँसा रखने की इच्छा की है! हाय रे मूढ, हाय रे अन-भिज्ञ! प्रेम क्या पैसा देकर खरीदने की चीज़ है!

पुण्डरीकाक्ष अपने आपको बार-बार धिक्कारने लगा। अब किस प्रकार यह अदृष्ट की गुत्थी सुलझाई जाय, यही उपाय वह सोचने लगा।

मेना जो भास्कर को इस प्रकार एकाएक तीखी बात कह बैठी थी, उसका कारण उसके प्रति उसका अभिमान ही था। किन्तु अपने इस व्यवहार के लिए वह मन ही मन बहुत दुखी होने लगी। वह सोचने लगी कि क्यों इस प्रकार निष्ठुरतापूर्वक मैंने उनके ऊपर आघात किया।

मेना को भास्कर के प्रति जो इस प्रकार का अभिमान हुआ उसका भी कारण था। भास्कर के प्रति जो मन ही मन वह प्रेम करती आ रही थी, वह क्या भास्कर ने उसके नेत्रों की दृष्टि और मुख की प्रस-न्नता देखकर अनुभव नही कर लिया था? प्रेम क्या इस आभास-इंगित के अतिरिक्त भी किसी अन्य, अधिक स्पष्ट, वस्तु की प्रतीक्षा करता है आत्म-प्रकाश के लिए? भास्कर ने बात यदि समझ ली थी, तो क्यों नही उसने इससे पहले ही मेना का उद्धार कर लिया? भास्कर का इस प्रकार निश्चेष्ट रहने का अर्थ है कि उसकी प्रेमनिष्ठा में शिथिलता थी, प्रियपात्र के प्रति जो उसका कर्तव्य है, उसका पालन करने में वह उपेक्षा कर रहा था। ऐसी दशा में उसके प्रति मेना के मन में अभिमान का भाव उदित होना स्वाभाविक ही था।

ज़रा देर तक रोकर मेना ने हृदय का भार कुछ हलका कर लिया,

तब अपने आपको सँभालकर उसने आँख-मुँह पोंछा और उठकर खड़ी हुई। उठने पर चारों ओर ध्यानपूर्वक ताककर उसने देख लिया कि मुझे किसी ने रोते देखा तो नहीं ? अन्त में वह धीरे-धीरे घर की ओर चली।

बगीचे मे जिस समय कन्दर्प के साथ मेना का और भास्कर के साथ कन्दर्प तथा मेना का सघर्ष हो रहा था, उस समय एना लौटकर घर पहुँच गई थी। सबसे पहले पहुँचकर वह सीधे अपने कमरे में जा रही थी, इतने में रास्ते में ही उससे पिता से मुलाकात हो गई। उसे देखते ही राजाबहादुर ने कहा—एना, तुम इतनी जल्दी क्यो लौट आई हो ?

एना ने बहुत सक्षेप मे उत्तर दिया—यों ही।

राजाबहादुर ने कहा—एना, तुम जरा मेरे साथ तो आओ, तुम मुझे कुछ बातें करनी है।

आगे-आगे राजाबहादुर अपने कमरे मे गये, उनके पीछे-पीछे एना गई।

कमरे मे बैठकर राजाबहादुर ने एना को अपने पास बुलाया और उससे कहा—बैठ एना, मेरे पास आकर बैठ। तुझे मुझसे एक बात बतलानी होगी। तेरी मा तो है नही। वे यदि होती, तो वे ही सब कुछ कहती-सुनती, जो कुछ करना होता करती। परन्तु अब तो मै ही तेरे लिए मा हूँ, मै ही बाप हूँ। मुझसे किसी प्रकार की लज्जा न कर बेटी। तेरी दीदी के विवाह के लिए तो एक बडी अच्छी व्यवस्था हो गई है। अब तेरे लिए भी यदि कोई व्यवस्था कर पाता, तो अपने जीवन के कार्य्यों की चिन्ता से मुझे मुक्ति मिल जाती, मै निश्चिन्त होकर मर सकता।

क्षण भर के विराम के बाद राजाबहादुर फिर कहने लगे—मेना के साथ कन्दर्प के विवाह की बात बहुत दिनों से पक्की हो चुकी है। किन्तु एकाएक पुण्डरीकाक्ष उसके साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट कर बैठा। उससे मै अस्वीकार न कर सका। परन्तु आज कन्दर्प अपने

आप ही आ पहुँचा। अभी तक मैंने उससे बतलाया नहीं कि मेना के साथ पुण्डरीकाक्ष का विवाह निश्चित हो चुका है।

ज़रा-सा खिन्नता का-सा भाव प्रकट करते हुए राजाबहादुर एक क्षण के लिए रुक गये। उसके बाद उन्होंने कन्दर्प की प्रशसा करते हुए कहा—कन्दर्प बडा अच्छा लडका है। उसे अपना दामाद बनाने की मेरी इच्छा बहुत दिनों से है। इस समय यदि तू कन्दर्प के साथ विवाह कर लेती तो सारा सङ्कट टल जाता। कन्दर्प को भी सर्वथा हताश होकर न लौटना पडता। उसे क्या मैं तेरा—

एना अभी तक पिता की बातें चुपचाप सुन रही थी। किन्तु उनकी यह अन्तिम बात समाप्त भी न हो पाई कि क्रोध से भभककर कर्कश स्वर में वह बोल उठी—बाबू जी, तुमने मुझे क्या समझ रक्खा है? क्या तुम समझते हो कि सभी बातों में मैं दीदी का उच्छिष्ट ग्रहण करके सन्तुष्ट रहूँगी? जब कभी तुम गहना-कपडा ख़रीदकर ले आये हो, तो पहले दीदी ने अच्छा-अच्छा छाँटकर ले लिया है, बाद को उनका जूठन मुझे मिला है। यही बात अब विवाह के सम्बन्ध में होने जा रही है। अच्छा वर पसन्द कर लिया दीदी ने, जिसको उन्होंने छाँट दिया उसे मैं अपने गले बाँधूँ? रहने दीजिए, रहने दीजिए, मुझे आपसे कुछ न चाहिए, कुछ न चाहिए।

यह बात कहते ही कहते एना आवेश में आकर रो पडी। वह उठकर वहाँ से चली जा रही थी कि पिता ने उसे स्नेहपूर्वक पकडकर अपनी गोद में खीच लिया। एना पिता की गोद में मुँह छिपाये हुए सिसक-सिसकर रोने लगी। राजाबहादुर बहुत ही स्नेह के साथ और सान्त्वना के भाव से उसकी पीठ तथा मस्तक पर हाथ फेरने लगे।

एना ने आज जो इस प्रकार का विद्रोह का भाव प्रदर्शित किया, उसके कारण राजाबहादुर को बडी चिन्ता हुई। वे मन ही मन कहने

लगे—एना, मेरी एना, उसने तो आज तक कभी इस प्रकार की उद्धता के साथ मुझसे बातें नही की, वह कभी और तो मेरे ऊपर यह लाञ्छन नही लगा सकी कि मैं हृदयहीन हूँ, पक्षपाती हूँ। फिर आज वह एकाएक क्यों इस प्रकार मेरा तिरस्कार कर बैठी? किस विषय में मुझसे कैसी त्रुटि हो गई है? किस प्रकार की भूल करके मैंने अनजान में इसके कोमल हृदय पर आघात किया है? हाय, हाय! मैं वृद्ध, बालिकाओं के मन का रहस्य तो समझ नही पाता। पुरुष होने के कारण स्त्रियों के हृदय का रहस्य जानने का तो कोई उपाय मेरे पास है नही! राजाबहादुर एक नितान्त ही असमर्थ व्यक्ति की तरह विह्वल हो उठे।

आज इस सकट के समय राजाबहादुर के हृदय में पत्नी-वियोग की व्यथा ताजी हो आई। वे अधीर भाव से सोचने लगे—इस समय वे क्यों नही है? मुझे अकेला छोडकर स्वार्थपरायण की भाँति क्यो वे पहले ही चली गईं? वे यदि होतीं, तो स्वय ही अपनी कन्याओं के हृदय की बात कुछ अनुमान से और कुल लक्षण से जानकर उचित व्यवस्था करती। यह सब सोचते-सोचते व्यग्र होकर राजाबहादुर मन ही मन पुकार उठ—अरे, तुम आज कहाँ हो, अपने स्वामी और कन्याओं को छोडकर कहाँ चली गई हो?

कन्या को रुदन करती हुई देखकर वृद्ध को जो व्यथा हुई, और पत्नी-वियोग की तीव्र वेदना जो आज नई हो आई, उसके कारण वृद्ध के मन ही मन विलाप करने का बाह्य लक्षण प्रकट हुआ उनके नेत्रों से निकलकर बहती हुई अश्रुधारा के रूप मे। पिता के नेत्रों का जल टप-टप गिरकर कन्या के मस्तक पर स्नेह-सान्त्वना तथा शुभाशीर्वाद की वर्षा करने लगा।

बडी देर तक रोने के बाद एना झटपट उठी और कमरे से निकलकर चली गई। वृद्ध पिता अकेले ही व्यथित अन्तःकरण से स्तब्ध हुए बैठे रहे।

इधर उस लता-गृह में अकेले ही बैठे-बैठे वहुत-सा समय व्यतीत कर देने के बाद पुण्डरीकाक्ष ने जब देखा कि अव किसी की किसी प्रकार की आहट नही मिल रही है, तब वह बहुत धीरे-धीरे दबे पाँव से बाहर निकल आया। चोर की तरह एकान्त में छिपा रहकर जो उसने इतनी घटनायें देख ली, इतनी बातें सुन ली, इसका कही किसी को पता न चल जाय, इस भय से उसका हृदय थर-थर काँप रहा था।

पुण्डरीकाक्ष बहुत धीरे-धीरे चलकर राजाबहादुर की कोठी पर आया। आज यहाँ तक पहुँचने में उसने बडे क्लेश का अनुभव किया। उसके मन पर उस समय बहुत ही अधिक भार था। अनुत्साह एव उद्वेग के कारण वह अपना शरीर भी आगे की ओर नही बढा पाता था। कोठी पर आकर पुण्डरीकाक्ष ने देखा तो नीचे कोई नही था। इससे वह ऊपर गया एक-एक डग गिनते-गिनते सीढी के मोड-मोड पर रुकते-रुकते, ऊपर किसी का किसी प्रकार का शब्द या आहट सुनने में आती है या नही, यह सुनते-सुनते। ऊपर पहुँचने पर भी उसे कोई नही दिखाई पडा। बैठक सूनी थी, भाँय-भाँय कर रही थी। पुण्डरीकाक्ष को इससे बडी घबराहट मालूम पडने लगी। वह निमन्त्रित होकर इस घर में आया था, किन्तु जिसके घर पर आया, उसका कही पता ही नही था। अब न तो उससे जाते बनता था और न रुकते बनता था। जब कोई पूछने ही वाला न हो तब निराश्रय होकर आशा लगाये बैठे रहना कितना क्लेशकर है। विशेषतः ऐसी परिस्थिति में जब चित्त ठिकाने से न हो। पुण्डरीकाक्ष का मन यदि प्रसन्न होता, तो शायद उसके लिए यह प्रतीक्षा इस प्रकार कष्टकर न होती।

पुण्डरीकाक्ष धीरे-धीरे बरामदे में टहलने लगा। इस सिरे से वह उस सिरे पर जाता और उस सिरे से इस सिरे पर आता! इस प्रकार सारे बरामदे की वह कई बार परिक्रमा कर गया। उसके कानों को स्वय अपने पैरों की आहट भी भयङ्कर मालूम पड

रही थी। उसे ऐसा जान पडता कि इस प्रकार के पद-सञ्चारण के द्वारा मै एक शोकार्तपुरी की शान्ति भग करके अपराध कर रहा हूँ, इस प्रकार के एक भय ने उसके हृदय को अभिभूत कर रक्खा था।

बडी देर के बाद एक नौकर आया। चारों ओर घूमकर उसने देखा और फिर चला गया। उससे ज़रा देर बाद फिर एक नौकर आया। पासवाले कमरे में वह भोजन की व्यवस्था करने लगा। पुण्डरीकाक्ष उसी कमरे के सामने से होकर आ-जा रहा था। उसने गिनती की—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः आसन बिछाये गये। छ. गिलासों में जल रक्खा गया। बाद को छ छोटी-छोटी तस्तरियाँ आई। उनमें रक्खा था नमक, नीबू, नमक डालकर नीबू के रस में भिगोये हुए अदरख के टुकडे तथा अन्य प्रकार की चटनी अचार आदि। हर एक आसन के पास धुला इस्त्री किया हुआ एक-एक अँगौछा रक्खा गया। छहों आसनों के पीछे छ' बडे-बडे पीकदान रक्खे गये और दो सुराहियों में जल रक्खा गया। जल के पास एक-एक रिकाबी में सजाकर एक-एक नया साबुन, ज़रा-ज़रा-सा मैदा, ज़रा-जरा-सा बेसन और दो-दो खरके रख दिये गये। एक बार आकर नौकर ने हर एक आसन के पास एक-एक पानदान में पान और मसाला रक्खा। यह सारा आयोजन क्रम-क्रम से हो रहा था, एक के बाद एक करके सब सामग्रियाँ सजाई जा रही थी, और पुण्डरीकाक्ष देख-देखकर सोच रहा था— (१)

इसके बाद कई नौकर बहुत ही व्यस्त भाव से घूमने-फिरने लगे। बीच-बीच में वे सब एकत्र हो जाते और फिस-फिस करके न जाने क्या परामर्श करते। केवल एक बात पुण्डरीकाक्ष के कानों तक पहुँच सकी—तू ही क्यों नही जाता ? जाकर महाराज से पूछ आ कि भोजन तैयार हो गया है। क्या परसा जाय ?

पुण्डरीकाक्ष खाकर किसी प्रकार भाग पाता, तो उस बेंचारे को जीवनदान मिलता। इससे उसने जब यह सुना कि खाने को

तैयार हो गया है, तब उसे कुछ धैर्य्य हुआ। वह सोचने लगा कि तब तो अब जल्द ही पिंड छूट जायगा।

राजाबहादुर के खास खानसामा ने पहले उनके कमरे के समीप जाकर बाहर से ही जरा-सा खाँसने की-सी आवाज की, बाद को और भी समीप जाकर वह कहने लगा—खाने को तैयार हो गया है। क्या इसी समय परसना होगा?

एना को अपने कमरे में बुलाकर राजाबहादुर जिस तरह बैठे थे, उसके चले जाने पर भी वे अकेले वैसे ही बैठे रह गये थे। अब खानसामा की बात सुनने पर उन्हें होश हो आया। सचेत होकर वे सीधे बैठ गये और पूछने लगे—क्या मेना तथा बाबू लोग लौटकर बगीचे से आ गये?

खानसामा ने कहा—हाँ, वे सब लौटकर आये हैं। राजाबहादुर ने कहा—तो परसने को कह दो, मैं आता हूँ।

राजाबहादुर उठे। आँख-मुँह धोकर वे जरा कुछ ताजे हुए, तब कमरे से निकले। सारी कोठी उस समय मानो सूनी थी। कही से किसी प्रकार का शब्द या आहट नही आ रही थी। बिलकुल सन्नाटा था। मच्छड तक के भनकने की आवाज नही आ रही थी।

राजाबहादुर उतावली के साथ बैठक में गये। किन्तु वहाँ पैर रखते ही वे एकाएक रुककर खड़े हो गये। बैठक में कोई था ही नही। वे सोचने लगे कि वे लोग जब बैठक में नही हैं, तब कहाँ गये? बैठक से निकलकर वे बरामदे में आ गये। राजाबहादुर ने देखा कि पुण्डरीकाक्ष भूत की तरह अकेला ही बरामदे भर में टहलते-टहलते पैरों से वहाँ की छत में गड्ढे कर डालना चाहता है।

राजाबहादुर अवाक् होकर खडे-खड़े पुण्डरीकाक्ष की ओर ताकते रहे। बाद को टहलते-टहलते उसके समीप जाकर उन्होंने पूछा—और सब लोग कहाँ गये? तुम अकेले ही हो!

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—पता नही, कौन कहाँ है?

राजाबहादुर ने पूछा—तुम यहाँ कितनी देर से अकेले हो ?

पुण्डरीकाक्ष ने एक रूखी हँसी हँसकर कहा—घडी तो मैंने देखी नही। पाँच मिनट भी हो सकता है और पाँच घटा भी हो सकता है। क्योंकि जब मुझे कभी अकेले प्रतीक्षा करनी पडती है, तब थोडा-सा भी समय बहुत लम्बा मालूम पडता है।

पुण्डरीकाक्ष की इस बात से राजाबहादुर बहुत ही लज्जित हो उठे। लज्जित वे यह सोचकर हुए कि मेरी असावधानी के कारण निमन्त्रित व्यक्ति तथा भावी जामाता को अकेले उपेक्षित अवस्था में पडा रहना पडा। साथ ही साथ राजाबहादुर को आश्चर्य भी हुआ। वे सोचने लगे कि मेना यहाँ क्यों नही है ? या भास्कर और कन्दर्प ही यहाँ क्यों नही आये ?

राजाबहादुर ने एकाएक जोर का कोलाहल आरम्भ कर दिया। उन्होंने कहा—अरे, कौन-कौन यहाँ हो। दौडकर बिटिया रानी लोगों को तो बुला ले आओ। भास्कर बाबू को खबर दो कि खाने को तैयार है, कन्दर्प बाबू को भी खबर दो। दौडो, जल्दी करो। एक-एक आदमी एक-एक तरफ दौड पडो। जल्दी से सबको बुला ले आओ, सारा भोजन ठडा होकर पानी हुआ जा रहा है ! कैसी इन लोगों की बुद्धि है ! घर मे निमन्त्रण है और सब लोग अपने-अपने कमरे में घुसे बैठे है।

राजाबहादुर की यह तिरस्कार-वाणी दूसरों की ओर सङ्केत करके कही जाने पर भी स्वय उन्ही के ऊपर बरस रही थी।

वहाँ सबसे पहले पहुँचा भास्कर। उसे देखते ही राजाबहादुर ने कहा—मामला क्या है भाई, तुम लोग सबके सब अभी तक कहाँ थे ? पुण्डरीकाक्ष आकर कब से अकेले खडे है।

उसके बाद आई मेना। राजाबहादुर ने उसे भी मीठी फटकार बतानी शुरू की। उन्होंने कहा—यह कैसी बात है मेना ? तुम्हारी मा तो अब है नही, पिता भी वृद्ध है। घर का सारा भार तुम्हे अपने

ऊपर तो लेना ही पडेगा। अब क्या लज्जा करके भागती फिरने मे काम चलेगा वेटी! पुण्डरीकाक्ष और कन्दर्प है, तो इसमे लज्जा करने की कौन-सी वात है। उन्हें देखो-सुनो

मेना के मुँह की ओर दृष्टि जाते ही राजावहादुर चौंक पडे। तो क्या दो-तीन दिन हुआ मेना मर गई है और वह अब भूत-योनि मे आकर उठकर घूम-फिर रही है! भयभीत-से होकर उन्होंने पूछा—मेना, क्या तुम्हारी तबीअत खराव है?

मेना ने कोमल स्वर में धीरे से कहा—नही वावू जी, मुझे कुछ तो नही हुआ है।

राजावहादुर ने कहा—कही आँख से देखकर मा-वाप से भी वच्चो के शरीर का हाल समझने में भूल हो सकती है रे? कुछ न कुछ तेरी तबीअत अवश्य खराव है। समझ-बूझकर खाना-पीना विटिया। आज-कल चारों ओर इस तरह का इन्फ्लूएजा फैला हुआ है!

कन्दर्प आया। उसका भी मुख वर्षा के आरम्भकाल के नभ-स्तल के समान काला हुआ था। वहुत ही निष्प्रभ हो उठा था वह।

राजावहादुर ने अव यह निश्चित रूप से समझ लिया कि कही कोई न कोई उलझन अवश्य पड गई है, और उसकी गाँठ पर मेरी वृद्धावस्था की क्षीण दृष्टि नही पहुँच पाती। इससे उन्होंने कन्दर्प मे उसकी इस उदासी का कारण नही पूछा। उन्होंने नौकरों को पुकारते हुए कहा—चलो, कौन है यहाँ? महराज को परोसने को कहो, वडी रात हो गई है।

राजावहादुर उस समय सोच रहे थे कि यदि कही एकान्त में जाकर विचार करूँ तो वहुत सम्भव है इस गुत्थी का सूत्र मुझे मिल जाय।

कन्दर्प के वाद एना आई। एना का भी मुँह गम्भीर था। उसकी आकृति पर भी प्रसन्नता की रेखा नहीं दिखाई पड रही थी। परन्तु उसकी खिन्नता का कारण राजावहादुर को वहुत कुछ ज्ञात था,

इसलिए उसकी ओर अब उन्होंने कुछ विशेष ध्यान नही दिया।

एना यहाँ आने पर भी सबसे दूर ही दूर रही। बरामदे की रेलिंग पकड़े बाहर की ओर मुँह किये हुए वह खड़ी रही।

राजाबहादुर ने सबको बुलाते हुए कहा--आओ तुम लोग कमरे मे बैठो, तब भोजन परोसा जाय।

पहले-पहल राजाबहादुर कमरे में गये, बाद को मेना गई। कन्दर्प द्वार के पास खडा ही रह गया और जिस कमरे में भोजन परोसा जा रहा था, भास्कर उसी मे घुस गया। मानो वह देखने के लिए गया कि ठीक-ठीक परोसा जा रहा है या नही।

पुण्डरीकाक्ष धीरे-धीरे जाकर एना के पास खडा हुआ। एना ने उसकी ओर दृष्टि फेरकर देखा तक नही। पुण्डरीकाक्ष ने कहा--चन्द्रमा का कैसा सुन्दर प्रकाश फैला हुआ है?

एना का कण्ठ इस पर खुला नही। पुण्डरीकाक्ष ने फिर कहा--भोजन कर लेने के बाद क्या ज़रा-सा चन्द्रमा के इस प्रकाश में टहलने चलोगी?

"चन्द्रमा का प्रकाश मुझे अच्छा नही लगता।" यह बात एना ने ऊँचे स्वर मे तो नही कही, किन्तु कही रूखेपन के ही साथ।

पुण्डरीकाक्ष ने फिर पूछा--यदि चन्द्रमा का प्रकाश आपको अच्छा नही लगता तो और क्या अच्छा लगता है?

एना ने पहले की ही तरह उत्तर दिया--जाइए, मुझे कुछ नही अच्छा लगता।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा--आपको मेरी ज़रा-सी सहायता करनी होगी।

एना ने कहा--मुझे अवकाश नही है।

पुण्डरीकाक्ष ने बहुत ही विनम्रतापूर्ण और प्रार्थनामय स्वर में कहा--आपके अतिरिक्त और तो कोई मेरी सहायता करनेवाला है नही। आप मेरी ओर से अपनी दीदी से केवल एक बात कह दें।

एना ने कहा—आप स्वय क्यों नही जाकर अपनी बात कहते ? मैंने आपकी बात कहने का ठेका तो लिया नही है।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—ठेका लेने की बात नही है, यह मेरे ऊपर आपकी दया होगी। मुझे स्वय उनसे कोई बात कहने का साहस नही होता।

एना ने बहुत ही तीखे व्यङ्ग्य के साथ कहा—तो क्या आपकी सोहाग-रात में भी मैं जाऊँगी आपके प्रेम-निवेदन की प्रतिनिधि होकर ? न, यह मुझसे न होगा।

इतना कहकर एना वहाँ से हट गई।

बेचारा पुण्डरीकाक्ष वही रेलिंग के ऊपर शरीर का भार लादे हुए खडे-खडे बाहर की ओर अपनी लम्बी साँसें फेंकने लगा।

राजाबहादुर ने भीतर से पुकारा—पुण्डरीकाक्ष, एना, भोजन परोसा जा चुका है।

सब लोग खाने के कमरे मे गये।

दो पक्तियों में छ आसन लगाये गये थे। एक ओर राजा-बहादुर जाकर बैठे। और दूसरी ओर उतावली के साथ जाकर मेना उनके पासवाले आसन पर खडी हो गई। राजाबहादुर ने पुकारा—कन्दर्प, तुम इस ओर आकर बैठो, और तुम तीन आदमी सामने बैठ जाओ।

कन्दर्प जाकर मेना के पासवाले आसन पर जम गया। एना एक किनारे के आसन पर खडी होकर बीचवाले आसन की ओर इशारा करती हुई कहने लगी—भास्कर बाबू, इस आसन पर आप आ जाइए।

पुण्डरीकाक्ष ने यह अनुभव कर लिया कि एना मेरे पास नही बैठना चाहती। इससे वह दूसरी बगलवाले आसन पर बैठ गया। अब एना और पुण्डरीकाक्ष के बीच मे एक आसन ख़ाली रह गया, उस पर बैठने जा रहा था भास्कर। इतने में कन्दर्प एकाएक आसन से उठकर खडा हो गया और कहने लगा—तो क्या इस गुमाश्ते के साथ बैठकर

मुझे भोजन करना होगा? कुमीरखाली का ज़मीदार किसी के घर के गुमाश्ते के साथ बैठकर भोजन नही करता।

कन्दर्प की वात सुनते ही प्रत्यञ्चा टूटे हुए धनुष के समान भास्कर उठकर खडा हो गया। उसने गर्वपूर्ण स्वर मे कहा——मै भी किसी शरावी, दुराचारी के साथ बैठकर भोजन नही करता। और तुम्हे जो यह ज़मीदारी का घमड है, यदि मै चाहूँ तो कुमीर-खाली-जैसी तीन-तीन जमीदारियाँ आज ख़रीद सकता हूँ।

यह वात कहकर भास्कर कमरे से बाहर निकल गया। उसके साथ ही साथ कन्दर्प भी दूसरे दरवाजे से कमरे से निकल आया।

मिनट भर तक कमरे मे किसी की साँस चलने की आहट नही मिली। मानो कमरे मे विजली गिरी और वहाँ जितने भी प्राणी थे, वे सव वैसे के वैसे ही प्राण-त्याग कर गये। मिनट भर के बाद राजावहादुर ने नौकर को बुलाया। उससे उन्होंने कहा——महराज को बुलाकर कहो कि कन्दर्प वावू तथा भास्कर वावू का भोजन उठाकर ले जायँ और उनके कमरो मे दे आवे। तुम जाकर उनके लिए वही आसन आदि रख दो।

रसोइया आकर दोनों ही आदमियों की थालियाँ उठा ले गया। राजावहादुर ने इस घटना के सम्वन्ध मे किसी से किसी प्रकार की वातचीत नही की। पुण्डरीकाक्ष और मेना का मुख देखकर ही राजावहादुर ने यह समझ लिया था कि यह घटना इन लोगों को एकदम से आकस्मिक नही मालूम पड रही है। इसके सिवा इन दोनों के मुख पर जो विभिन्न प्रकार के भावों की छाप पडी हुई थी, उससे भी स्पष्ट ज्ञात होता था कि कोई न कोई दुर्घटना पहले ही हो चुकी है, यह घटना केवल उसका उपसहार भर है।

निमन्त्रण-सभा उठे हुए वाजार की तरह निमेष भर में श्रीहीन हो उठी। पुण्डरीकाक्ष और एना के वीच से आसन और थाली उठा ली गई, इससे यह विलकुल साफ-साफ मालूम पडने लगा कि ये दोनों आदमी दूर-दूर बैठे है।

भगवान् को अर्पित करके राजाबहादुर ने भोजन करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने और किसी से भी खाने के लिए अनुरोध नही किया। उनके मुँह मे ग्रास डालते ही प्रत्येक व्यक्ति का हाथ थाली में पहुँच गया। परन्तु किसके मुख में कितना आहार गया, यह बतलाना कठिन है। किसी ने किसी से न तो और खाने के लिए आग्रह किया और न किसी ने किसी से पूछा कि और किसी वस्तु की आवश्यकता है या नही। शिष्टाचार-प्रदर्शन के लिए किसी ने इस आयोजन के सम्बन्ध में किसी को किसी प्रकार की वाहवाही भी नही दी। किसी के मुँह से यह बात भी नही निकली कि बहुत अच्छी सामग्री बन पडी है, मैंने खूब खाया।

यह निमन्त्रण-सभा विवाह के प्रारम्भ में नान्दीमुख श्राद्ध के रूप में की गई थी, किन्तु इसने ऐसा रूप धारण कर लिया कि मानो किसी के श्राद्ध के उपलक्ष मे यह भोज दिया गया है। जरा देर के ही बाद सब लोग हाथ समेटकर बैठ गये। नौकरों ने जब देखा कि इन्होने खाना बन्द कर दिया है, तब वे लोग हाथ धुलाने लगे।

हाथ-मुँह धो लेने और कुल्लियाँ कर लेने के बाद ही पुण्डरीकाक्ष ने कहा—तो अब मुझे आज्ञा दीजिए।

राजाबहादुर ने कहा—जाओगे? अच्छी बात है, रात भी बहुत अधिक हो गई है।

पुण्डरीकाक्ष ने वहाँ से भागकर जान बचाई। जो लोग घर के थे, वे भी चुपचाप सीधे अपने-अपने कमरे में ही गये। वह रात इस घर और उस घर के दो आदमियों ने जागकर ही बिताई, चिन्ता के मारे उन्हें नीद ही नही आ सकी। इन छ आदमियों के भाग्य-सूत्र में एक साथ ही बडी करारी गुत्थी पड गई थी, यह किस प्रकार सुलझाई जा सकती है, यही इनमें से हर एक की चिन्ता का कारण था। यद्यपि यह कारण किसी को पूर्णरूप से ज्ञात था, किसी को आंशिक रूप से ज्ञात था और किसी को बिलकुल ही नही ज्ञात था।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

ग्रन्थि-मोचन

दूसरे दिन सबेरे उठते ही राजाबहादुर ने मेना को बुलाया। उन्होंने उससे कहा—मेना, इस समय ऐसे सङ्कट का विषय आ गया है कि मेरी बुद्धि ही नहीं काम दे रही है। सम्भव है कि कन्दर्प आज ही तुम्हारे साथ विवाह करने की बात छेड़े। उसे तो आज कुछ न कुछ निश्चित रूप से बतलाना ही पड़ेगा। मैंने उससे यह कहने का विच - किया था कि तुम्हारा विवाह अन्यत्र करने के लिए मैं बाध्य हुआ हूँ। तुम्हारे बदले में एना के साथ उसका विवाह कर दिया जा सकता है। मेरी जहाँ तक धारणा है, इस प्रकार के परिवर्तन में कन्दर्प को किसी प्रकार की आपत्ति न होती। बात यह है कि वह मेरी जमींदारी का आधा भाग चाहता है, विशेषत वे सब गाँव, जो उसके तालुके से मिले हुए हैं। वे गाँव तुम्हारे साथ विवाह करने पर भी उसे मिल सकते हैं, और वे ही एना के साथ विवाह करने पर भी मिल सकते हैं। इस कारण वह एना के साथ विवाह करने के लिए तैयार हो जाता। परन्तु मैंने जब एना की सम्मति जाननी चाही तब वह लगी फूट-फूट-कर रोने और आपत्ति प्रकट करने। उसने बड़े ज़ोर का विरोध प्रकट किया है। अब तुम क्या कहती हो? क्या तुम एना को ज़रा-सा समझा सकती हो?

मेना ने धीर और कोमल स्वर में कहा—वह आदमी मेना का स्वामी होने का पात्र नहीं है बाबू जी, वह मदिरा पान करता है। इसके अतिरिक्त ....

राजाबहादुर ने पूछा—इसके अतिरिक्त क्या?

मेना ने मस्तक नीचा किये हुए बहुत धीमे स्वर में कहा—वह दुराचारी है।

कन्या की इस बात से आश्चर्य में आकर राजाबहादुर ने कहा—यह बात तुम कह रही होगी भास्कर की बात सुनकर।

मेना ने पहले की ही तरह मृदु स्वर में कहा—नही, मुझे यह बात पहले ही मालूम हो गई थी।

राजाबहादुर ने मेना से और कुछ नही पूछा। उन्होंने उससे कहा—अच्छा, अब तुम जाओ।

मेना चली गई। तब राजाबहादुर ने भास्कर को बुलवाया। वह जब आया तब राजाबहादुर कुछ उदास-से हुए बैठे थे। उन्होंने उससे कहा—बैठो भास्कर, बैठो। ज़रा यह तो बतलाओ कि तुममें और कन्दर्प में जो झगडा हो गया, उसका कारण क्या है?

हँसने का प्रयत्न करते हुए भास्कर ने कहा—कोई वैसा कारण तो मालूम नही पडता। या तो वह ज़मींदारी के रोब मे आकर भडक उठा होगा, या मदिरा के नशे की झोंक में रहा होगा।

राजाबहादुर ने पूछा—तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ कि वह मदिरा-पान करता है?

भास्कर ने उत्तर दिया—कल उसके मुँह से मदिरा की गन्ध आ रही थी।

राजाबहादुर ने फिर पूछा—तुमने जो कन्दर्प पर दुश्चरित्र होने का आरोप किया है, उसका क्या कारण है? उसके चरित्र के सम्बन्ध की बातें तुम्हें कैसे मालूम हुई?

भास्कर के मुख पर झाँई पड गई। परन्तु इस प्रश्न को हँसी में उडा देने के विचार से उसने क्षण भर के बाद ही कहा—यह मेरा एक अनुमान है। या यों कहिए कि उसकी गाली के बदले में मैंने उसे भी गाली दे दी। जो मदिरा-पान करता है, वह यदि दुश्चरित्र नही है तो और क्या है?

राजाबहादुर ने फिर पूछा—और तुमने उससे यह कहा है कि मैं यदि चाहूँ तो तुम्हारी कुमीरखाली की तरह की तीन जमीदारियाँ आज ही खरीद सकता हूँ, इसका क्या अर्थ है ?

भास्कर फिर हँस पडा। वह कहने लगा—यह भी एक कोरा दम्भ था। जिस तरह उसने गर्व की बात की उसी तरह मैंने भी सेर की जगह सवा सेर चढा दिया। जो बाते अहङ्कार मे कही जाती हैं, उनका भी कही कोई अर्थ होता है ?

राजाबहादुर ने समझ लिया कि भास्कर वास्तविक बात प्रकट नही करना चाहता। जो बात इतने दिनो तक वह छिपाता आया है, उसी की छाया कल क्रोध के बस मे आकर उसने प्रकट कर दी। आज फिर उसे वह छिपाना चाहता है। किसी की कोई गुप्त बात सुनने का आग्रह करना उचित नही है, यह सोचकर उन्होंने भास्कर से और कोई प्रश्न नही किया। भास्कर भी राजाबहादुर को नमस्कार करके चला गया।

जरा ही देर के बाद राजाबहादुर के कमरे में आकर घुसा पुण्डरीकाक्ष। उसे देखते ही उन्होंने कहा—आओ पुण्डरीकाक्ष, बैठो।

पुण्डरीकाक्ष बैठ गया। राजाबहादुर उसकी ओर ताकने लगे। उसके मुख का भाव देखने से ही अनुमान होता था कि यह कुछ कहने आया है।

राजाबहादुर की दृष्टि का सामना पडते ही पुण्डरीकाक्ष सकुचित हो उठा। मस्तक नीचा किये हुए मृदु स्वर मे वह कहने लगा—मैं आपसे एक बात कहने आया हूँ।

पुण्डरीकाक्ष की ओर ताकते ही ताकते कौतूहल के साथ राजाबहादुर ने कहा—कौन-सी बात है ?

पुण्डरीकाक्ष बहुत ही नम्र भाव से कहने लगा—मुझसे एक भूल हो गई थी, उसी भूल को मैं सुधारने आया हूँ। पहले मैं यह जानता नही था कि मेनादेवी का किसी के लिए वाक्‌दान हो गया है। साथ

ही मुझे इस बात का भी ज्ञान नही था कि मन ही मन वे अन्य किसी से प्रेम करती हैं। इसी से मैं अपने मन के मोह मे आकर भूल से उन्हे माँग बैठा। परन्तु मैं आपसे बारबार निवेदन कर चुका हूँ कि आप जो मुझ पर कृपा करते है, मेरे प्रति जो स्नेह रखते है, उसके लिए मैंने जो तुच्छ भेट अर्पण करने की इच्छा प्रकट की है, उसके सम्बन्ध में मेरे मन में किसी प्रकार की वणिक्-वृत्ति नही है। बदले मे कसी प्रकार का लाभ उठाने की आशा से मैंने यह कार्य नही किया। मैं रुपये देकर आपकी कन्या को खरीदने की इच्छा करूँ, इस प्रकार की स्पर्द्धा मैं कभी नही कर सकता। उनके प्रति मेरे हृदय मे बडी श्रद्धा है, उनका मैं कभी अपमान नही कर सकता हूँ।

राजाबहादुर ने आश्चर्य मे आकर पूछा—तुम यह बात कैसे कह रहे हो ?

पुण्डरीकाक्ष कहने लगा—जब मैंने मेनादेवी को माँगा है, तभी से उनके मुख की प्रसन्नता का अपहरण कर लिया है। उन्हे दुःखित देखकर उनकी बहन भी विषादयुक्त और व्यथित हो उठी है। मैंने पहले-पहल आपके यहाँ जिस आनन्द के घेरे मे प्रवेश किया था, अपने असङ्गत और अज्ञानतापूर्ण लोभ के कारण मैं उस आनन्द-राज्य को खो बैठना चाहता हूँ। मेनादेवी के मन में यह बात आती होगी कि वे यदि मेरे साथ विवाह करने को न तैयार होंगी तो उनके पिता ऋण से मुक्त न हो सकेंगे, साथ ही ऋण से मुक्त हुए बिना उनकी चिन्ता न दूर हो सकेगी। परन्तु आप जानते है कि उनकी यह धारणा बिलकुल गलत है। मेरे साथ विवाह करने के सम्बन्ध मे उनकी स्वीकृति या अस्वीकृति से आपके ऋण-मुक्त होने का कोई सम्पर्क ही नहीं है। वह तो बिलकुल स्वतन्त्र विषय है। यह बात आप उन्हे समझा दीजिएगा। यदि उनके मन मे मेरे प्रति किसी प्रकार के बन्धन या बाध्यबाधकता का भाव है तो उसमे मैं उन्हे प्रसन्नतापूर्वक पूर्णरूप से मुक्ति दे रहा हूँ। अब वे अपनी इच्छा के अनुसार किसी के साथ भी विवाह करके

सुखी हो। इससे मैं भी सुखी होऊँगा। मेनादेवी को पा जाने पर मुझे जितना सुख मिलता, उन्हे सुखी देखकर उससे कम सुख न मिलेगा। मैंने उनके साथ विवाह करने के लिए जो प्रार्थना की थी, उसे वापस ले रहा हूँ। जो वर उनके मन के अनुकूल हो, उसी को आप उन्हे सम्प्रदान कीजिए।

भौह सिकोडे हुए कुछ चिन्ता का-सा भाव व्यक्त करते-करते राजा-बहादुर ने पूछा—तुम ये सब बाते क्यो कह रहे हो ? क्या मेना या एना ने तुमसे कुछ कहा है ?

पुण्डरीकाक्ष ने जोर से मस्तक हिलाते हुए कहा—नहीं, नहीं। उन लोगों ने कुछ कहा नही। परन्तु सयोगवश मुझे यह बात मालूम हो गई है कि वे एक-मात्र पितृ-भक्ति की प्रेरणा से ही अपने आपको बलि के रूप मे उत्सर्ग करने को उद्यत है। परन्तु मैंने यह भी जान लिया है कि आपने जिन्हे उनका वर निर्वाचित कर रक्खा है, वे कन्दर्प बाबू भी उनके लिए नितान्त ही अयोग्य है। जान पडता है कि मेनादेवी भास्कर बाबू को चाहती है। साथ ही भास्कर बाबू भी उनसे प्रेम करते है। इसके सिवा यह भी मालूम पडता है कि भास्कर बाबू किसी धनवान् के पुत्र है, किसी विशेष कारण से वे आपके आश्रय मे आ गये है।

राजाबहादुर ने कन्दर्प की निन्दा पहले मेना से सुनी, बाद को भास्कर से। अब आकर पुण्डरीकाक्ष ने भी उसकी निन्दा की। इन तीनों ही व्यक्तियों ने उससे सावधान होने की सलाह दी। इससे राजा-बहादुर को इस बात का दृढ रूप से निश्चय हो गया कि कन्दर्प ने कल अवश्य कोई न कोई ऐसा आचरण किया है, जिससे इसके स्वभाव का हाल इन तीनों ही व्यक्तियों को मालूम हो गया। इस सम्बन्ध मे अब उन्हे किसी प्रकार का सन्देह नही रह गया। परन्तु मेना भास्कर से और भास्कर मेना से प्रेम करते है ? यह कैसे सम्भव है ? वे दोनो एक मकान मे रहते है, एक-दूसरे की देखा-सुनी भर होती है, उनमे से कभी

किसी को किसी मे बातचीत करते या किसी प्रकार की घनि ठता प्रकट करते तो मैंने देखा नहीं ? यह सशय मन ही मे लिये हुए उन्होंने पुण्डरीकाक्ष से पूछा—भास्कर मेना से प्रेम करता है और मेना भी भास्कर से प्रेम करती है, यह बात क्या तुम्हे उन दोनों मे से किसी ने बतलाई है ?

पुण्डरीकाक्ष को यद्यपि वास्तव मे यह सवाद उन दोनो के ही मुख से ज्ञात हुआ था, परन्तु फिर भी उन्होंने उससे तो बतलाया नहीं था, इससे उसने अर्द्धसत्य और अर्द्धमिथ्या बात मस्तक हिलाते हुए कही—नहीं, नहीं। उन दोनों ने मुझसे कुछ नही कहा। मैं और तरह से जान पाया हूँ।

राजाबहादुर बड़े सङ्कट में पड गये। ये जितनी भी बातें कही गई, वे सब उनकी समझ मे ही नहीं आ रही थीं। उनके समक्ष यह सारा मामला किसी बहुत ही गूढ रहस्य से ढका हुआ था। वे सोचने लगे कि सभी लोग तो आ-आकर एक न एक नई बात कहते है, पर तु कोई भी उस बात के समर्थन के लिए कोई कारण नहीं प्रदर्शित करता, कोई प्रमाण नही उपस्थित करना चाहता। चिन्तित भाव से उन्होंने फिर पूछा—तुमने किस तरह जान लिया कि भास्कर धनवान् वश का लडका है ? क्या उसने इस सम्बन्ध मे तुमसे कुछ कहा था ?

पुण्डरीकाक्ष दो-दो बार भास्कर के ही मुँह से सुन चुका था कि यदि मैं चाहूँ तो आज ही धनवान् हो सकता हूँ। परन्तु इस बात का भी आधा अश छिपाते हुए उसने कहा—स्वतन्त्र रूप से मुझसे उन्होंने कुछ नहीं कहा। कल रात को तो उन्होंने हम सब लोगों के सामने ही कहा था कि यदि मैं चाहूँ तो जमींदारी खरीद सकता हूँ। इसी से मुझे अनुमान होता है कि वे अवश्य किसी धनवान् के घर के हैं।

राजाबहादुर ने पुण्डरीकाक्ष के मुख की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से ताकते हुए कहा—किन्तु सम्भव है कि कल की बात भास्कर की केवल कोरी डींग ही रही हो ?

पुण्डरीकाक्ष ने मुस्कराते हुए कहा—भास्कर बाबू को तो आप इतने दिनो से देखते आ रहे हैं। उनके व्यवहार में कितना सयम है ! कितने गम्भीर आदमी है वे ! ऐसी अवस्था में वे डींग हाँक सकते है, क्या आपको इस बात का विश्वास होता है ?

"हाँ, बात तो ठीक है। तब ?" क्षण भर तक सोच-विचार करने के बाद राजाबहादुर ने कहा—ये सारी बातें बतलाकर तुमने हमारे वास्तविक मित्र का काम किया है। मै मेना और भास्कर का मनोभाव जानने के लिए पूर्णरूप से प्रयत्न करूँगा। पहले तो ध्यानपूर्वक उनका रग-ढग देखकर वास्तविकता का परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा, और यदि इस प्रकार सफलता न मिली तो उनसे पूछूँगा भी। परन्तु तुम्हे तो भैया, वे दस्तावेज़ वापस लेने ही होंगे। तुमने मेरा समस्त ऋण चुकाकर जिस सहृदयता का परिचय दिया है, वही तो मेरे लिए परम लाभ है। यदि तुम मेरे समस्त ऋण के एक-मात्र महाजन होकर रहो तो मुझसे कभी तकाज़ा न करोगे, मेरा कभी अपमान न करोगे और कभी अत्यन्त निष्करुण होकर हमें नि स्व करने का भी प्रयत्न न करोगे। मै तुम्हारे कई प्रकार के ऋणों से बँधा हुआ हूँ, उनके साथ ही एक यह ऋण भी पडा रहे। यदि मैं चुकता कर सका तो अच्छा ही है, यदि मुझसे न हो सका तो मेरे बाद मेरी कन्याये पिता का ऋण चुकाने की कोशिश करेगी।

पुण्डरीकाक्ष का मुख बिलकुल ही सूख गया। उसने व्यथित स्वर में कहा—आप यदि ऐसा करते है, आप यदि वे दस्तावेज़ मुझे वापस देते है, तो ऐसे करने का अर्थ होगा मेनादेवी की धारणा को दृढ बनाना—अर्थात् मैंने उन्हे प्राप्त करने के ही लिए लोभ की वशी फेकी थी। परन्तु मै आपसे पहले भी कह चुका हूँ और अब भी कह रहा हूँ कि ये दस्तावेज़ जो महाजनों के यहाँ से निकाल ले आया हूँ, वह केवल इसी मतलब से कि मेनादेवी और एनादेवी के पिता चिन्ता से मुक्त हो जायँ। इसके सिवा मेरा और कोई ऐसा अभिप्राय

नही था, जिसे मैंने मन में छिपा रक्खा हो। किसी प्रकार का अदला-बदला करने का विचार मन में लेकर मै आप लोगों का अपमान करने नही आया।

राजाबहादुर ने जब देखा कि पुण्डरीकाक्ष मेरी इस बात से दुखी हो रहा है, तब वे बहुत शीघ्र ही अपनी भूल का सशोधन करने का-सा भाव दिखलाते हुए कहने लगे—नही, नही, यह बात मै इस मतलब से बिलकुल नही कह रहा हूँ। परन्तु प्रश्न यह है कि इतना बडा दान मै ग्रहण कैसे करूँ? ज़रा तुम मेरे दृष्टिकोण से भी तो इस सम्बन्ध मे विचार करके देखो।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—अच्छा, यदि दान के बदले में ही दान लेने की बात हो तो भी तो आप इसे स्वीकार कर सकते है। मैं जब कारागार में था तब मेरी निराश्रित बुआ की सहायता करके आपने हमारा बहुत बडा उपकार किया था। उस उपकार के कारण कृतज्ञता का निदर्शन-स्वरूप यह जो साधारण-सा प्रत्युपकार मै आपका करना चाहता हूँ, उसे यदि आप स्वीकार कर लेते तो मेरे ऊपर जो इतना बडा ऋण चढा हुआ है, उससे छुटकारा पाने का अवसर मुझे किसी प्रकार मिल जाता।

राजाबहादुर ने हँसकर कहा—तुम्हारी सदाशयता से पार पाने का कोई उपाय नही है। अच्छी बात है, तब तुम मुझसे और कुछ ग्रहण करो। एना शायद तुमको मन ही मन चाहती है। इससे तुम एना को ग्रहण कर लो।

इस प्रस्ताव से पुण्डरीकाक्ष मन ही मन प्रसन्न हो उठना चाहता था। वह सोचने लगा कि इस प्रकार इस घर से सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर मै मेनादेवी का आत्मीय होकर रह सकूँगा। परन्तु हृदय के आनन्द और आग्रह का दमन करते हुए उसने कहा—नहीं, नही, बदले मे कुछ लेकर अपनी कृतज्ञता की मर्यादा और माहात्म्य मे बट्टा न लगाऊँगा। मै और कुछ माँगने का साहस नही करता। मेरी प्रार्थना

के साथ जब रुपये का सम्पर्क जुड गया है तब मैं आपकी किसी भी कन्या को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करने से डरता हूँ।

पुण्डरीकाक्ष की यह बात सुनकर राजाबहादुर गम्भीर हो उठे। उन्होंने कहा—तो मुझे भी कुछ समय दो, मैं हर एक पहलू को सोच-विचारकर देख लूँ।

पुण्डरीकाक्ष उठा। राजाबहादुर को प्रणाम करके वह विदा हो गया। वहाँ से चलकर वह गया भास्कर के पास। राजाबहादुर भी कमरे से उठकर अपनी कन्याओं के पास गये।

भास्कर ने जब पुण्डरीकाक्ष को अपने कमरे मे प्रवेश करते देखा तब वह चकित हो गया। कुछ विरक्त भाव से ही उसके प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए वह उठकर खडा हुआ, किन्तु मुँह से वह कुछ बोला नही।

पुण्डरीकाक्ष के मुख पर प्रसन्नता की रेखा विराजमान थी। मुस्कराते हुए उसने भास्कर का हाथ पकड लिया और कहने लगा—भाई, मैं अवस्था मे तुमसे बडा हूँ, इससे मैं तुम कहकर पुकारता हूँ, उसके लिए बुरा न मानना। मैं अभी-अभी राजाबहादुर के पास से चला आ रहा हूँ। मैं बिना सोचे-विचारे एक बेतुका काम कर बैठा हूँ, इसके कारण कल रात से ही पश्चात्ताप के मारे व्याकुल हो रहा हूँ। अब मैं अपनी उस भूल को सुधारने के लिए शक्ति भर प्रयत्न करूँगा। तुम्हे कृपा करके मेरी ज़रा-सी सहायता करनी पडेगी।

पुण्डरीकाक्ष की इन बातों का अर्थ भास्कर की समझ मे न आ सका। इससे नीरव भाव से उसके मुँह की ओर वह ताकता रह गया। जरा ही देर के विराम के बाद पुण्डरीकाक्ष ने फिर कहना आरम्भ किया मैंने मेनादेवी के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया था। वह प्रस्ताव मैं अभी वापस लिये आ रहा हूँ। इस प्रकार मैंने उन्हे इस बात के लिए स्वाधीन कर दिया है कि वे अपने अभिलषित वर का वरण कर सके। अब मेरी आग्रहपूर्ण प्रार्थना है कि तुम उनके साथ विवाह कर लो।

इससे वे सुखी होंगी। तुम भी सुखी होओगे। तुम धनवान् कुल के लडके हो। पता नही, किस कारण से दरिद्रता का वरण किये हो। सम्भव है कि अपने आपको दरिद्र समझकर तुम मेनादेवी के साथ विवाह करने में सङ्कोच का अनुभव करते होओ। परन्तु इसके लिए चिन्ता नहीं है। तुम उन्हें चढाव देकर विवाह कर सकते हो। चढाव मे देने लायक कुछ वस्तुएँ मै ले आया हूँ, वे तुम्हें लेनी होगी।

पुण्डरीकाक्ष की ये वाते सुनकर भास्कर विस्मित हो उठा था। परन्तु उसे इतना भी अवसर न देकर कि वह अपना विस्मय दूर करके कुछ कह सके, पुण्डरीकाक्ष कमरे से निकल गया। सायवान मे उसकी 'कार' खडी थी। उसके पास ही उसके अर्दली और ड्योढीदार खडे थे। उन्हे उसने इशारे से बुलाया। उसके इशारा करते ही वे दोनों वडे-वडे सूटकेस लिये हुए पुण्डरीकाक्ष के पीछे-पीछे भास्कर के कमरे मे गये।

पुण्डरीकाक्ष ने नौकरों से कहा कि ये सूटकेस यही रखकर तुम लोग चले जाओ।

नौकर लोग चले गये। पुण्डरीकाक्ष ने सूटकेसों को खोला। उनमें से उसने गहनों के कई केस निकाले, चाँदी-सोने के वर्तन-आदि निकाले और वह सब भास्कर के विस्मित नेत्रों के सामने रखकर कहा—ये सब मेनादेवी तथा एनादेवी के ही गहने है। ये वर्तन-आदि भी इसी घर के है। राजावहादुर को ऋण के भार से व्यग्र जानकर उन दोनों वहनों ने यह सब उन्हें दे दिये थे। इनका विक्रय करने के लिए राजा-वहादुर जौहरी की दूकान पर गये। सौभाग्यवश उस समय मै वहाँ बैठा था। जोहरी को अधिक मूल्य देकर मैने यह सब खरीद लिया था, इसलिए कि मेनादेवी के विवाह में चढाव के रूप मे दूंगा। अव यदि मेरी ओर से तुम चढ़ाव दे दोगे तो मुझे सुख मिलेगा।

इतनी देर के वाद अपने विस्मय का सवरण करके भास्कर ने कहा—इन सवमे तो वहुत-सा रुपया लगा है। आपने ही राजा-वहादुर का सारा ऋण चुकता कर दिया है। इसके सिवा इतने रुपयों

नष्काम भाव से उसके सारे सुखों की व्यवस्था करना ही प्रेम का उच्च आदर्श है।

पुण्डरीकाक्ष के निष्काम प्रेम का परिचय पाकर तथा उसकी असाधारण उदारता देखकर भास्कर मुग्ध हो गया। प्रशसापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर ताकते हुए उसने कहा—आपने यह किस तरह मालूम किया कि मेनादेवी मुझसे प्रेम करती हैं या मैं मेनादेवी से प्रेम करता हूँ? आपके हृदय में जो इतना अद्भुत और असम्भव सन्देह उत्पन्न हो गया है, इसका कारण क्या है? मेनादेवी एक धनवान् जमीदार की कन्या है और मैं उनका केवल एक साधारण-सा कर्मचारी हूँ। अपने हृदय में भला मैं किस तरह इस प्रकार की दुराशा पल्लवित होने दूँगा या वे ही इतनी हीनता क्यों स्वीकार करने लगी?

पुण्डरीकाक्ष ने हँसकर कहा—प्रेम की दृष्टि से ही प्रेम पकड मे आता है। इसके सिवा प्रणय के देवता अन्धे है। वे पात्रापात्र का विचार नही करते। यदि ऐसी वात न होती तो मेरे-जैसे दरिद्र आदमी के हृदय में जमीदार की कन्या के प्रति अनुराग कैसे उत्पन्न हो जाता?

भास्कर ने कहा—आप यह वार-वार कह रहे हैं कि मैं मेनादेवी का सम्मान करता हूँ, उनके प्रति मुझे श्रद्धा है और मैं उनसे प्रेम भी करता हूँ। इस अवस्था में दूसरे के साथ उनके विवाह का पैगाम लगाने में आपको कष्ट नही हो रहा है, यह मुझे अत्यन्त असाधारण और आश्चर्यजनक-सी वात मालूम पड रही है।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—हमारे देश के प्रणय-देवता अन्धे है। परन्तु स्वय प्रजापति वडे ही सावधान पहरेदार है। उनकी अधीनता में रहनेवाले पहरेदारो में पहला नम्वर है मनु का, दूसरा नम्वर है रघुनन्दन (वगाल के एक स्मृतिकार) का और तीसरे नम्वर में है पञ्चाङ्ग, ग्रह-नक्षत्र आदि जाने क्या-क्या? मनु अपना सहितारूपी अस्त्र लिये हुए और रघुनन्दन अपना उद्वाह-तत्त्व ऊपर उठाये हुए कह रहे हैं—प्रणय अन्धा होकर किसी से भी किसी की प्रीति करा सकता

है, परन्तु खबरदार, यदि ब्राह्मण के साथ ब्राह्मणी का, क्षत्रिय के साथ क्षत्रिय का, कायस्थ के साथ कायस्था का, वैश्य के साथ वैश्या का और शूद्र वर्ण की हजारों 'उपजातियों' में से यदि समान उपजाति के पुरुष और स्त्री में प्रणय न हुआ तो उसे हम नाजायज़ करार देंगे, उस पर स्वीकृति नही दे सकते। यदि किसी के भाग्य खुल गये और करुणामय विधाता की अनुकम्पा से जाति के दायरे के भीतर ही प्रणय हो गया, तब भी तो कम बाधक नही है। ये पञ्चाङ्ग है तो यह जन्मपत्र है, ये ग्रह है, नक्षत्र है, वर्ण है, अरिष्टाष्टक है, सप्तशलाका है! ये सब कितने झगडे-झंझट है। इतने बाधा-विघ्न ठेलकर अपने मन के अनुकूल वर या वधू का पाणिग्रहण करना कोई ऐसी वैसी बात तो है नही। हमारे देश में कितने ऐसे सौभाग्य-शाली व्यक्ति होंगे जो अपने प्रियपात्र के मिलन के लिए इन सबको भी अनुकूल बना सकें। यह सयोग की बात है कि मै राजाबहादुर का सजातीय निकला। परन्तु गोत्र का झमेला पड सकता था, जन्मपत्र का मिलान ठीक नही हो सकता था! इससे भी विवाह में बाधा पड सकती थी। मै समझ लूँगा कि इन्ही सबमे से किसी-न किसी-एक कारण से मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण नही हुई। परन्तु यदि मै मेनादेवी को सुखी कर सका तो चिरकाल के लिए मेरे मन को एक प्रकार की प्रसन्नता होगी, मेरी गणना तुम दोनों के एक प्रिय बन्धु के रूप मे सदा होती रहेगी।

भास्कर ने बहुत ही सम्मान और श्रद्धा के साथ कहा--आपके महत्त्व की सीमा नही है। परन्तु मैंने तो मेनादेवी के साथ विवाह करने की मूर्खतापूर्ण दुराशा मन मे पाल नही रक्खी है। इधर आपने मेरे सामने जो यह प्रलोभन लाकर रखा है, उसके सम्बन्ध मे सोच-विचार कर दो-चार दिन के बाद मै अपना मत प्रकट करूँगा। आज इसी समय अपना यह अपार अनुग्रह ग्रहण करने का आग्रह आप न कीजिएगा।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा--अच्छा, तुम सोच-विचार लो। परन्तु

समझ रक्खो कि ये सारे सोने-चाँदी के पात्र तथा अलङ्कार तुम्हारे ही लिए मेरे पास रक्खे हुए है। तुम जब चाहो, तभी मेनादेवी को उनकी यह हाथ से निकली हुई सम्पत्ति उन्हें सौपकर हर प्रकार से सुखी कर सकते हो।

पुण्डरीकाक्ष ने उन सब वस्तुओं को सन्दूक मे फिर बन्द कर लिया। तब नौकरों को बुलाकर उसने उन्हे गाडी पर रखवाया और राजा-बहादुर के घर से विदा हो गया।

जिस समय पुण्डरीकाक्ष मेना के साथ विवाह करने के लिए भास्कर को राजी करने का प्रयत्न कर रहा था, ठीक उसी समय राजाबहादुर भी मेना से इस सम्बन्ध मे बातचीत कर रहे थे। उन्होंने बडे प्यार से मेना को अपने पास बुलाकर बैठाला और कहने लगे—क्यों रे मेना, तू भास्कर से प्रेम करती है? उसके साथ विवाह करना चाहती है? यदि ऐसी बात है तो आज तक तुमने मुझसे क्यों नही कहा?

मेना के विषादमय तथा प्रभाहीन नेत्र एकाएक बाघिन के नेत्रों की तरह भयङ्कर होकर जल उठे। कडकती हुई वह बोली—किसने कही है तुमने यह बात? शायद भास्कर बाबू ने कहा होगा? बिलकुल झूठी है यह बात? वह अर्थलोलुप धूर्त मुझे व्यर्थ मे बदनाम कर रहा है!

कन्या के शरीर पर हाथ फेरते हुए राजाबहादुर ने कहा—छि बेटी, बिना समझे-बूझे किसी को कोई कडवी बात न कहनी चाहिए। भास्कर बडा भला आदमी है। स्वभाव का वह गम्भीर है। उसने मुझसे कुछ कहा नही। इसके सिवा वह पैसे का लोभी तो है नही। वह किसी बडे आदमी का लडका है। कोई विशेष कारण आगया होगा, जिससे कि घर-द्वार छोडकर परदेश में पडा नौकरी कर रहा है। तुमने सुना नही? कल वह कह रहा था कि कन्दर्प की-सी जमींदारी मैं जब चाहूँ तब खरीद सकता हूँ। क्रोध के समय आदमी कभी-कभी बहुत लम्बी हाँक जाता है। परन्तु इस बात को ध्यान मे रखते

हुए भी भास्कर का चरित्र देखकर यह नही कहा जा सकता कि उसकी वह बात कोरी डीग थी।

मेना के सामने भास्कर ने कल दो-दो बार इस बात का इशारा किया था कि मैं एक धनवान् आदमी हूँ। एक बार उसने यह इशारा स्वय मेना को किया था और एक बार कन्दर्प को। इससे पिता की बात सुनते ही भास्कर की गर्वोक्ति उसे स्मरण हो आई। इससे मेना ने यह अनुभव किया कि पिता जी का अनुमान ठीक भी हो सकता है। मन मे यह बात आने पर उसे बहुत कुछ शान्ति मिली। व्यथापूर्ण दृष्टि उठाकर पिता की ओर ताकती हुई वह बोली—तब इस तरह की बात तुमसे किसने कही ?

राजाबहादुर ने कहा—पुण्डरीकाक्ष को कही से इस बात की टोह मिली है कि तुम प्रीति के आकर्षण से उसके साथ विवाह करने के लिए नही तैयार हुई हो। तुम उसके दान के बदले मे अपने आपको केवल इसलिए बलिदान करने जा रही हो कि मैं ऋण से मुक्त हो जाऊँ। इसी लिए वह आज सवेरे ही आया था और विवाह का जो प्रस्ताव उसने कर रक्खा था, उसे वापस ले लिया है। इस प्रकार तुम्हे वह पूर्णरूप से स्वाधीन और मुक्त कर गया है। मेरे जो दस्तावेज़ ख़रीदकर उसने मुझे दिये थे, उन्हे मैं उसे लौटाल रहा था, परन्तु उसने लिया नही। वह कहता था कि तुम्हारे बदले मे तो वह सब उसने मुझे दिया नही था, बल्कि तुम्हारे पिता की चिन्ता दूर करके तुम्हे सुखी और प्रसन्न देखने के लिए दिया था। वही मुझसे यह भी कह गया है कि तुम्हारा हृदय भास्कर के प्रति प्रीति से आकर्षित हो उठा है।

मेना फिर कर्कश स्वर मे बोल उठी—यह अवश्य भास्कर बाबू की कारसाज़ी है। वे यह जान गये है कि पुण्डरीकाक्ष बाबू बहुत ही बडे है, उदार प्रकृति के आदमी है! इससे कह सुनकर उसने उनसे विवाह का प्रस्ताव वापस करवा दिया और उन्ही को पैगाम

लगाने के लिए भी नियुक्त कर दिया। तुम उन सवसे कह दो कि मैं उनमें से किसी के साथ भी विवाह नही करना चाहती हूँ, इसलिए वे मुझे वार-वार अपमानित न करे।

मेना वहुत ही शान्त और धीर लडकी थी। वह सदा ही गम्भीर भाव से रहा करती थी। राजावहादुर ने उत्तेजित होकर इतने जोर-जोर से वोलते उसे कभी नही देखा था। उसे क्रोधित देखकर डर के मारे वे शान्त हो गये, उससे कोई और वात उन्होंने नही पूछी। परन्तु जो गुत्थी पड गई थी, वह किस तरह सुलझाई जाय, इसका भी कोई उपाय वे न निकाल सके। इससे दु खित और उद्विग्न होकर वे वहाँ से उठ गये।

मेना जैसे बैठी थी वैसे ही बैठी रही। वह उस समय चिन्ता-सागर मे एकदम से डूबी हुई थी।

राजावहादुर ने अपने आफिस के कमरे मे जाकर कन्दर्प को बुलवा भेजा। आने पर उन्होंने उससे कहा—देखो कन्दर्प, मेरी यह वहुत दिनों से अभिलाषा थी कि मै मेना के साथ तुम्हारा विवाह करूँ। परन्तु मेरी कन्या अव वडी हो गई है, पढी-लिखी है, उसमें अव इतना विवेक आ गया है कि वह अपने हित-अहित का विचार कर सके। हर एक विपय में अव उसकी स्वतन्त्र रुचि-अरुचि भी हो गई है। कल से मुझे ऐसा जान पड रहा है कि मेना के हृदय मे तुम्हारे प्रति वैसा अनुराग नही उत्पन्न हो पाया है। ऐसी अवस्था में उस पर दवाव डालकर विवाह के लिए उसे सम्मत करना उसके पिता के लिए उचित न होगा। मुझे इस वात का दु ख है कि यह सम्वन्ध भग करना पड रहा है। परन्तु यदि तुम स्वय ज़रा-सा सोचकर देखोगे तो यह मालूम हो जायगा कि वर-वधू यदि दोनों ही की इच्छा न हुई तो वह विवाह दो मे से एक के लिए भी सुखकर न होगा।

ज़रा देर तक मौन रहने के वाद कन्दर्प ने कहा—मेना को यदि

मेरे साथ विवाह करना स्वीकार न हो तो मैं एना के साथ भी अपना विवाह कर सकता हूँ।

राजाबहादुर ने इस बार भी दृढता के ही साथ कहा——नहीं, उन दोनों में से एक के साथ भी तुम्हारा विवाह होने की सम्भावना नहीं है। यह इरादा तुम अपने दिल से निकाल दो।

कन्दर्प एकाएक आवेश में आकर कहने लगा——आप इस प्रकार अपमानित करके मुझे अपने घर से निकाल देंगे, यह मैं नहीं जानता था। मुझे यदि ऐसा मालूम होता तो मैं आपके यहाँ आकर न ठहरता। आपके गुमाश्ते ने आकर मेरी कोई न कोई शिकायत अवश्य आपसे की होगी। अच्छी बात है, उसको मैं देख लूँगा। गुडे लगाकर उसकी हड्डियाँ तोडवाये बिना मैं न रहूँगा। खैर, अब मैं आपके यहाँ नहीं रहना चाहता। मैं अब यहाँ से चलता हूँ, कलकत्ता होटल में रहकर अपना काम-काज समाप्त कर लूँगा, तब घर जाऊँगा।

गाडी मँगवाकर कन्दर्प उसी समय चला गया। राजाबहादुर ने उससे बहुत कहा-सुना और इस बात का अनुरोध किया कि कम-से-कम इस समय वह भोजन कर ले तब जाय। परन्तु क्रोध के मारे कन्दर्प भन्नाया हुआ था। वह किसी प्रकार भी ठहरने को तैयार न हुआ।

एना ने जैसे ही कन्दर्प को जाते देखा, वैसे ही वह दौडती हुई मेना के पास गई और कहने लगी——दीदी, तुम्हारे एक वर तो विमुख होकर बिदा हो गये, अब तुम्हारे मानस-सरोवर के पुण्डरीक के प्रस्फुटित होने में कोई बाधा नहीं रह गई है। उठ पडो, आनन्द से नाचना शुरू कर दो।

मेना ने प्रसन्नतापूर्ण मुस्कराहट के साथ कहा——भाई एना, तूने ठीक भाँपा है। इस समय सचमुच मुझे आनन्द के मारे नाचने की इच्छा हो रही है। परन्तु वह इसलिए नहीं कि मेरे मानस-सरोवर के पुण्डरीक प्रस्फुटित होंगे। बल्कि इसलिए कि पुण्डरीकाक्ष बाबू

मुझे विवाह के बन्धन से मुक्ति दे गये हैं। वे मुझे पूर्ण स्वाधीनता दे गये हैं। आज मैंने बन्दिनी की अवस्था से मुक्ति प्राप्त की है।

आश्चर्य के मारे एना चौंक उठी। उसने कहा—ऐं, तुम यह क्या कहती हो? क्या सचमुच?

मैना ने कहा—हाँ, यह बिलकुल सच है। पिता जी अभी ही मुझे यह शुभ सवाद दे गये हैं। पुण्डरीकाक्ष बाबू यह ताड गये हैं कि उनके प्रति प्रेम न होने पर भी मैं उनके साथ विवाह करने के लिए केवल इसलिए तैयार हो गई हूँ कि उन्होंने पिता जी का सारा ऋण चुका दिया है। इस प्रकार असहाय अवस्था में पडकर जो मैं अपने आपको बेचने जा रही थी, इससे वे मुझे छुटकारा दे गये हैं। इसके साथ ही उन्होंने ऋण के दस्तावेज़ और रुक्के भी वापस नहीं लिये, यद्यपि पिता जी ने ऐसा करने के लिए उनसे बडा अनुरोध किया है।

एना तथा मैना के मुख पर पुण्डरीकाक्ष के प्रति प्रशसा का भाव उदित हो आया। एना ने कहा—दीदी, यह उजड्ड आदमी इतने विशाल हृदय का है, यह तो पहले हम लोग जानती नहीं थीं! उससे मैं बहुत रुष्ट हो गई थी। तुम्हारे ऊपर भी मुझे बडा क्रोध आया था। वह तुम्हें खरीदने की इच्छा क्यों कर करे या तुम्हीं अपने आपको इतने सस्ते मे क्यो बेचने लगी हो? यह अच्छा हुआ।

मैना हँसती हुई बोली—एना भाई, दो दिनों के बाद आज तुम्हारे मुख पर मुस्कराहट आते देखकर मेरी ग्लानि दूर हो गई। मैंने जानबूझकर तेरे प्रिय का अपहरण कर लिया था। मैं तो यह अच्छी तरह जानती हूँ कि तू पुण्डरीकाक्ष से प्रेम करने लग पडी थी। इसी लिए तो तुझे मुझ पर क्रोध आ गया था, तू मुझसे बुरा मान गई थी। परन्तु अब तू यह समझ पाई होगी कि मैं कितना दुष्कर और कठिन कार्य करने को तैयार थी केवल पिता जी को सुखी करने के लिए! पिता जी को ऋण की चिन्ता से मुक्त करने के लिए तेरे सुख का बलिदान करके मुझे स्वय अपने आपको बलिदान करने के लिए उद्यत होना पडा था। इधर

तेरे मन में यह बात बैठ गई थी कि मैं पुण्डरीकाक्ष की सम्पत्ति के लोभ से उसके साथ विवाह करने को तैयार हुई हूँ। परन्तु तुझे मैं यदि सुखी न देख पाती तो क्या मैं सुख-सम्पदा के मध्य मे रहकर भी किसी प्रकार का आनन्द प्राप्त कर पाती ? उस अवस्था में तो सारा ऐश्वर्य मुझे विष-सा मालूम पडता।

एना दीदी की पद-धूलि ग्रहण करके बोली—दीदी, मैं बहुत ही स्वार्थपरायण हूँ। इसी से मैं यह नही समझ पाई हूँ कि तुम कितना बडा त्याग करने जा रही हो और उस त्याग का कितना माहात्म्य है ? इसी लिए तुम्हारे प्रति मुझसे अनुचित व्यवहार हो गया है। तुम्हारे स्नेह में एक दिन के लिए भी मैंने जो अविश्वास किया है, इसके लिए मुझे जीवन भर लज्जित और अनुतप्त रहना पडेगा। तुम मुझे क्षमा करो।

मेना ने एना को अपनी गोद में खींच लिया। दोनों हाथों से उसे पकडे हुए स्नेहमय तथा कोमल स्वर में वह कहने लगी—तू ही मुझे क्षमा करना भाई! अब यदि तू कहती हो तो मैं तेरे लिए पैगाम लगाऊँ। पिता जी ने पुण्डरीकाक्ष से कहा था कि मेना के साथ यदि तुम विवाह नही करना चाहते हो तो यदि एना स्वीकार करे तो उसी के साथ कर लो। इस पर पुण्डरीकाक्ष ने क्या कहा है, तुम जानती हो ? उसने कहा है कि मेरे साथ रुपये का जजाल लग गया है, इसलिए मैं अब किसी के साथ भी विवाह करने की इच्छा प्रकट करने का साहस नही कर सकता। इस साहसहीन हो गये भीरु को उत्साहदान करके उसके मन मे साहस का सञ्चार करने का भार मैं ग्रहण करूँगी।

एना ने कहा—नही दीदी, तुम्हें कुछ भी कष्ट न करना होगा। तुम्हे इसलिए भी कुछ नही बोलना चाहिए कि वह व्यक्ति तुमसे बहुत डरता है। तुम्हारे प्रति वह बडी भक्ति करता है। इससे तुम जो कुछ कहोगी उसे वह तुम्हारा आदेश समझकर मान लेगा। इसलिए पहले मैं इस बात की परीक्षा करूँगी कि वह मुझसे प्रेम करता है या नही, बाद को मैं ही साहसवान् बना लूँगी।

मेना ने हँसते-हँसते कहा—मैं आशीर्वाद करती हूँ कि तेरी मनो-वाञ्छा पूर्ण हो, तुम दोनों सुखी होओ।

एना ने भी हँसते-हँसते कहा—किन्तु दीदी, मेरी अपेक्षा वह तुमसे सदा ही अधिक प्रेम करता रहेगा। इससे मुझे कुछ ईर्ष्या होगी, यह मैं पहले से बताये रखती हूँ।

आज बहुत दिनों के बाद दोनों बहनें इस प्रकार एक दूसरे के मुँह की ओर ताकती हुई शुभ्र और अजस्र हास्य-धारा से एक दूसरी को अभिषिक्त कर सकी हैं।

सोलहवाँ परिच्छेद

भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र

दोपहर के बाद से ही पुण्डरीकाक्ष का मन मेना आदि के यहाँ जाने के लिए छटपटाने लगा। परन्तु आज वह अपने मन को बार-बार समझाने लगा—अब क्यों व्यर्थ मे जाकर लज्जित होने मे आवे और दूसरे को चिढाया जाय। जो कुछ होना था वह तो हो चुका। ये थोडे से दिन मेरे लिए स्वप्न-राज्य के-से थे, मुझे एक झूठे आनन्द में भुलाये हुए थे। अब वह स्वप्न भग हो गया है, तब क्यों उसी स्वप्न की स्मृति को खीचते हुए घूमते फिरे! ये थोडे से दिन ऐसे थे, जब कि मै मेनादेवी के पास तक पहुँच सका हूँ। मेरे इस अकिञ्चन जीवन के लिए इतना ही यथेष्ट है। इसके बाद सडक के एक किनारे पर मेरा खडा रहना तो कोई बन्द न कर सकेगा। मै सदा व्याकुल प्रतीक्षा में खडा रहा करूँगा, जब वे जायँगी तब मेरे मन और नेत्रों को कृतार्थ करती जाया करेंगी। यदि उनका विवाह हो गया और वे दूसरी जगह चली गई तो वही जाकर रहने मे भी तो मेरे लिए कोई रुकावट नही हो सकती। खाने का सहारा भगवान् ने कर दिया है। मुझे और कोई बन्धन है नही, फिर चिन्ता किसलिए करूँ? मै उनके पीछे-पीछे छाया की तरह घूमता फिरूँगा, छाया की तरह चरणों के साथ ही लगा रहूँगा, कभी अधिक समीप तक पहुँचने की इच्छा न करूँगा, इच्छा करने पर पहुँच भी न पाऊँगा।

सावन का महीना था। रह-रहकर पानी की बूँदे पड रही थी। राजाबहादुर के बगीचे से केवडे और जूही के फूलो की सुगन्ध भीगी हुई हवा के साथ-साथ आ रही थी, पुण्डरीकाक्ष अपने दोमंजिले

उठ पडा। वरसाती कोट पहनकर तथा हाथ मे एक छाता लेकर वह निकल पडा। उसके जी मे आया कि रास्ते-रास्ते में भीगते-भीगते घूमकर मन को शान्त तथा शरीर को श्रान्त कर आऊँ।

घर के वाहर आते ही पुण्डरीकाक्ष के पैर वढना चाहते थे मेना आदि के घर की ओर। उनके घर के फाटक के सामने पहुँचने पर अभ्यास और आग्रहवश उसने वरामदे की ओर ताका। सन्ध्या के धुँधले प्रकाश में श्रावण की झडी की बूँदों के बीच से पुण्डरीकाक्ष ने देखा कि राजावहादुर के वरामदे के रोशनी से जगमगाते हुए कोने मे, जहाँ से खडे होकर देखने पर फाटक की राह से वाहर की सडक का थोडा-सा अश दिखाई पडता है, खडी है एना। पुण्डरीकाक्ष ने जिस दिन से राजाबहादुर के यहाँ मनोविनोद के लिए जाना आरभ किया था, उस दिन से प्रतिदिन ही उसने एना को उसी स्थान पर खडी हुई पाया था। पुण्डरीकाक्ष को देखते ही वह मुस्कराहट के साथ नीरव भाव से आदरपूर्वक उसकी अभ्यर्थना कर लिया करती थी।

आज एना को देखने पर पुण्डरीकाक्ष के मन में एक समस्या उत्पन्न हो आई। वह सोचने लगा कि एना जो इस प्रकार एक ही स्थान पर खडी रहा करती थी उसका क्या कोई विशेष अर्थ नही है ? क्या उसे सडक पर चलनेवाले भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों को देखने का कौतूहल था, इसलिए उसकी वहाँ खडी होने की आदत हो गई थी, या वह किसी की प्रतीक्षा किया करती थी ? यदि वह प्रतीक्षा ही किया करती थी तो किसकी ?

पुण्डरीकाक्ष ने मन ही मन कहा—इतने दिन तक तो मै यही सोचता था कि एना जिसकी प्रतीक्षा मे खडी रहा करती थी वह मै ही हूँ। एना अपनी दीदी के भावी पति की आदरपूर्वक सवर्द्धना करने के लिए खडी रहा करती थी। किन्तु इसके वाद ही पुण्डरीकाक्ष के मन में फिर आया—मै एना की दीदी को ही मन ही मन चाहता हूँ, उनको देखने के लिए ही दौड-दौडकर आया करता हूँ, यही एना ने कैसे जान

लिया ? वह तो अन्तर्यामिनी है नही, सर्वज्ञा नही है, आकृति देखकर मन का भाव जान लेने की क्षमता उसमें है नही। तब ?

पुण्डरीकाक्ष की चिन्ता-धारा फिर बदल गई। वह सोचने लगा—तब क्या वह सोचती थी कि मै उसी को देखने के लोभ से उसके यहाँ जाने के लिए उत्कण्ठित हृदय से पल-मुहूर्त्त गिनता रहा करता था और निर्दिष्ट समय पर उपस्थित होने में कभी एक पल, एक मुहूर्त्त का भी विलम्ब नही होने देता था। रेलगाडी की ही तरह ठीक बँधे हुए समय पर उपस्थित होता रहा हूँ, उसी से गपशप करने, उसी से हँसी-मज़ाक करने के लिए ? बराबर किया भी तो मैंने यही है। मेना के समीप आते ही मेरा कण्ठरोध हो जाता, मै अन्तिम अवस्था को प्राप्त हुए व्यक्ति की तरह हो जाता। मुझे ऐसा जान पडता कि मेरी नाडी ही छूटी जा रही है। उसके सामने मै आदर, सम्मान और भय के मारे जड-सड हो जाया करता। और एना के साथ ? एना के साथ तो मैंने कितना गपशप किया है, कितना हँसी-मज़ाक किया है ? इससे आदमी के मन मे किस प्रकार की धारणा हो सकती है ? उसने यदि मेरा मनोभाव समझने में भूल की है, तो कोई अन्याय नही किया।

पुण्डरीकाक्ष वही खडे-खडे एक-एक बात पर गम्भीर भाव से विचार कर रहा था। वह फिर सोचने लगा—एना ने जो इस प्रकार की धारणा कर ली है वह क्या कोरी भूल ही थी ? मेरा मन क्या उसे देखकर प्रसन्न नही हो उठा ? उसे देखने के लिए, उसके साथ बातचीत करने के लिए, क्या मैं उत्सुकतामय आग्रह से प्रतीक्षा नही करता रहता था ? उसके मन में यदि भ्रम उत्पन्न हो गया हो, तो उसका भी कारण तो मै ही हूँ। मैंने ही उसके मन में इस भ्रम का सञ्चार कर दिया है।

सोचते-सोचते पुण्डरीकाक्ष का ध्यान राजाबहादुर की बात पर गया। वह सोचने लगा कि जिस दिन मैंने मेनादेवी के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया था उस दिन मेरे मुह से उनका नाम सुनकर वे चौंक उठे थे। यह नाम उनके कान में अकस्मात् पडा था। उन्हे ऐसी

आशा नही थी कि मैं मेनादेवी के साथ विवाह करने का प्रस्ताव करूँगा। उन्हे आशङ्का हुई थी कि मैं भूल कर रहा हूँ, इसी लिए उन्होने मेरी स्मृति ठीक करने का उद्योग किया था। परन्तु बाद को भी जब मैं दृढ आग्रह के साथ अपनी पहली बात पर अडा रहा तब वे निश्चयपूर्वक जान पाये कि मैं मेनादेवी को ही प्राप्त करने की इच्छा कर रहा हूँ। उस समय उनके मुख पर चिन्ता की रेखा उदित हो आई थी। उस दिन से मेना देवी का मुख तो भङ्कर तूफान के समय के काले मेघ के समान काला और प्रभाहीन हो गया और एना भी हो उठी क्रूर-स्वभावा तथा दुर्लभ-दर्शना। इधर दो दिन तक तो इस कोने मे खडी होकर उसने मेरे आगमन की प्रतीक्षा भी नही की। इधर आज जैसे ही मैं मेनादेवी के विवाह की बात भग करके उन्हे मुक्ति दे आया हूँ, वैसे ही क्या एना की भी प्रसन्नता लौट आई? क्या आज वह फिर मेरे ही आगमन की प्रतीक्षा मे खडी है? तो क्या यह मुझसे प्रेम करती है और मैं भी इससे प्रेम करता हूँ? और मेना की नारी-मर्यादा से सम्पन्न महत्त्वव्यञ्जक गम्भीर मूर्ति देखकर मैं श्रद्धा और सम्मान को भूल से प्रेम समझ बैठा था? मैंने और तो किसी प्रकार की आशा भी नहीं की, और किसी प्रकार का लोभ प्रदर्शित करने का साहस तो मैं कर नही सका। अब मैं कभी इस रास्ते मे पैर न रक्खूँगा। इसके सिवा जीवन के अब कितने दिन बाकी ही है। जो कुछ है उन्हें भी उसी तरह फूँक दूँगा जिस तरह ये लम्बे पैंतीस वर्ष फूँक दिये।

पुण्डरीकाक्ष सडक पर कीचड मे खडा था। मस्तक पर अविराम धारा से वर्षा हो रही थी, किन्तु इस सबकी ओर ध्यान न देकर बडी देर तक वह सोचता खडा रहा। बाद को छाता सीधा करके मस्तक पर लगाये हुए वह चलने लगा। वह जरा दूर तक चला भी गया। इतने मे राजाबहादुर के यहाँ का एक नौकर भीगते-भीगते दौडता हुआ आया और कहने लगा—बाबू जी, आपको छोटी दीदी रानी बुला रही है।

पुण्डरीकाक्ष ठमककर खडा हो गया। निमेष भर के लिए तो अपना मुख चिन्ता से अन्धकारमय किये हुए वह खडा रहा, किंतु उसके बाद

ही उसका वह चिन्ता का अन्धकार हँसी की उज्ज्वलता के रूप में परिवर्तित हो गया। वह प्रसन्न भाव से नौकर के आगे-आगे चला।

राजावहादुर के घर में पुण्डरीकाक्ष के पैर रखते ही एक नौकर दौडता हुआ उसके पास आया और उतावली के साथ उसके हाथ से भीगा हुआ छाता ले लिया। उसके वाद ही उसने भीगा हुआ वरसाती कोट भी उसके शरीर पर से उतार लिया। अव पुण्डरीकाक्ष धीर भाव से पैर वढाता हुआ ऊपर चढने लगा।

सगमरमर की सीढी पर चढते-चढते पुण्डरीकाक्ष ने जैसे ही मोड़ पर से ऊपर की ओर दृष्टि दौडाई, उसने देखा कि सीढी के सिरे पर वरामदे में मुस्कराती हुई खडी है एना।

पुण्डरीकाक्ष की आँखों से आँखे मिलते ही एना दवे कण्ठ से एक गीत गा उठी। उसका उस समय का स्वर वहुत ही कोमल, वहुत ही रसिकतामय था। गीत का भाव यह था—

"देखो, एक पथ-भ्रान्त पथिक आया है! हे नवीन पथिक, तुम्हें मै पहचानता हूँ। गली-गली में तुम्हारे वाटरप्रूफ का छोर उडता फिरता है। देखो, यह पथिक ऐसा पागल है कि इस तरह के पानी में घर छोड़-कर भटकता फिर रहा है। कौन ऐसा है जो कि इसके प्रति करुण होकर इसे पुकारे ?"

पुण्डरीकाक्ष मुस्कराता हुआ ऊपर आगया। एना ने गाना वन्द कर दिया और हँसते-हँसते वह कहने लगी—ऐसे समय में जव कि झमाझम पानी वरस रहा है, मस्तक पर छाता लगाये हुए खडे-खडे तुम किस दुर्भावना में पडे थे, जरा वतलाओ तो? दुस्तर पारावार का लङ्घन करने का अभ्यास तो तुम्हे है, फिर जरा-सी यह सडक पार करने में ही सशय का अन्त नही होता? जिस प्रकार लोभी वालक सडक पर मिठाई की दूकान की ओर मुँह वाये ताकता खडा रहता है, उसकी मिठाई खाने की लालसा तो रहती है, किन्तु मिठाई खरीदने का साधन नही होता। मैं देखती हूँ कि आपका भी वही हाल है। लोभ तो है वड़ा

प्रवल किन्तु साहस नही होता। जानते तो है कि 'नन वट दि ब्रेव डिजर्व्स दि फेयर।' केवल वीर ही उत्कृष्ट श्रेणी की वस्तु प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

पुण्डरीकाक्ष ने हँसते हुए कहा—मै फेयर डिजर्व नही करता, इसमे स्वभावत मुझे साहस भी नही होता। अपराधी हुआ हूँ अपनी भूल के कारण, इसी लिए हृदय पर भय अधिकार जमाये हुए है।

एना ने रसिकतामय स्वर से कहा—मा भैषी, मा भैषी। वांस के वन मे डोम मे इस तरह का अन्याय तो हो ही जाया करता है। इसमें कोई विशेष अपराध नही सचित हुआ। और यदि आप समझते है कि अपराध हो ही गया तो क्षमा माँगने के लिए भी तो आना आवश्यक था।

पुण्डरीकाक्ष ने सूखे हुए मुख से कहा—मुझे तो क्षमा माँगने का भी साहस नहीं होता। आपने यदि मुझे बुलाया है तो आप ही मेरी क्षमा-प्रार्थना अपनी दीदी के पास भेज दीजिएगा। इसके सिवा मैंने जो स्पर्द्धा की है, उसके लिए आप भी मुझे क्षमा कर दीजिएगा।

हँसी से भरा हुआ अपना मुख ऊपर करके कौतुक से मस्तक हिलाती हुई एना वोली—न, मै किसी प्रकार भी क्षमा न करूँगी। इस विषय में हमारा आपका सदा झगडा होता रहेगा, सदा ही आपको इसके लिए ताने सुनने पडेगे। परन्तु दीदी शान्त व्यक्ति है, उनकी वात अलग है। वे चाहे तो क्षमा भी कर दे सकती है। आइए, कमरे मे वैठिए, मै दीदी को बुलाये लाती हूँ।

पुण्डरीकाक्ष ने कुछ व्यग्रता के साथ कहा—नही, नहीं, मै उनके साथ कोई वातचीत नही कर सकता। जो कुछ कहना होगा वह आप ही मेरी ओर से कह दीजिएगा।

एना हँसती हुई वोली—इसी वल पर वडी दीदी के साथ विवाह करने की इच्छा की थी? दीदी यदि कहीं वहू हो गई होती तव तो भय के मारे दम घुटते-घुटते ही आप मर जाते। यह एक बहुत वडा जजाल आपका दूर हो गया। अव आप एक ऐसी वहू चुनिए,

जिसके साथ आसानी से बातचीत कर सके। मेरे साथ तो आप बहुत खुलकर बातचीत कर सकते हैं।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—हाँ, आपसे तो मैं खूब जी खोलकर बातें कर सकता हूँ। प्रतिदिन देखते-देखते मैं शायद मन ही मन आप दोनों ही बहनों से प्रेम करने लग पडा था। उनमें से एक हो गई थी केवल मेरे कल्पना-लोक की नारी। महिमा की प्रतिकृति और दूसरी हुई थी व्यावहारिक जीवन की मनोरम सखी! एक हुई थी स्वप्नलोक में विहार करनेवाली देवी तो दूसरी हुई थी प्रतिदिन के जीवन की प्रत्येक वस्तु को अमृत मे अभिषिक्त करनेवाली मानवी! एक हुई चिन्ता की विषय और दूसरी हुई वाक्य हँसी और रङ्ग-रसिकता की विषय।

एना ने उसी प्रकार प्रफुल्ल मुख से ही कहा—तब तो आप गदाधरचन्द्र के दल के आदमी हैं। आपको दूध भी चाहिए, तम्बाकू भी चाहिए। परन्तु यदि दूध न मिल सका तो तम्बाकू का भी परित्याग क्यों करते हैं?

पुण्डरीकाक्ष ने गम्भीर भाव से कहा—मैं आजन्म का हतभाग्य हूँ। इसी लिए साहस नही कर पाता। आशङ्का होती है कि कही अधिक कामना करने पर सभी कुछ न खो बैठूँ?

एना ने हँसते-हँसते कहा—कामना करके ही एक बार क्यों नही देखते? खो न बैठिएगा। भय की कोई बात नही है। मेरे परामर्श से यदि पहले कार्य किये होते तो मै आपको मार्ग छोडकर नरकुल के पेड पर चढने की दुराशा से निवृत्त किये होती। एक अनुभवी साहित्य-कार का कथन है—जीवन मे बहुत-से सुयोग आ सकते है, किन्तु आते नही। जो मनुष्य आधा राज्य और राजकन्या एक साथ ही प्राप्त कर लेता है, उसका भाग्य अच्छा है। परन्तु जो इस तरह नही पाता, सयोग से उसे दाहनी ओर से आकर मिल जाता है राज्य और बाई ओर से उसके पास आ पहुँचती है राजकन्या, वह भी कम सौभाग्य-शाली नहीं होता।

आनन्द से हृदय को विकसित करते हुए पुण्डरीकाक्ष कहने लगा-- तब क्या तुम इस बात का साहस और भरोसा दे रही हो कि मैं वाईं ओर से राजकन्या को प्राप्त करने की दुराशा का हृदय में पोषण कर सकता हूँ ?

एना ने समस्त शरीर से हँसकर, मस्तक हिला कर कहा—हाँ, तुम ऐसा कर सकते हो। परन्तु राजकन्या को प्राप्त करने की 'दुराशा' तो अब दूर हो चुकी है, इससे तुम राजकन्या को प्राप्त करने की 'आशा' कर सकते हो। भाषा-सम्बन्धी त्रुटि मत करो।

एना की यह बात पुण्डरीकाक्ष के लिए बहुत ही सन्तोषदायक हुई। आनन्द की अधिकता के कारण विह्वल-सा होकर वह खडा रहा। एना ने इधर-उधर की बाते करते-करते खूब जोर-जोर से हँसते-हँसते पुण्डरीकाक्ष को जगा कर लिया, तब वह कहने लगी—अब तुम आकर कमरे में बैठो। मै दीदी को बुला लाऊँ। अब तो दीदी गुरुजन हो जायँगी, उन्हे प्रणाम करो।

एना ने कमरे मे प्रवेश किया। आह्लाद के अतिरेक के कारण शरीररूपी लता को इस प्रकार आन्दोलित करती हुई वह चल रही मानो आनन्द की साक्षात् तरङ्ग ही है। पुण्डरीकाक्ष उसके पीछे-पीछे जाकर द्वार के पास जूते खोलकर रखने के लिए खडा हो गया।

एना ने पूछा—यह क्या ? जूते क्यों खोल रहे हो ? यह तो देवी का मन्दिर नही, बल्कि मानवी का गृह है। इसलिए ।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—जूते एकदम से भीग गये है। पिचपिच करते है।

एना ने कहा—इसमे भला जूतों का अपराध ही क्या है ? ऐसी झडी मे घटा भर तक खडे-खडे भीगते रहे। जरा-सा ठहरिए, पिता जी की एक जोडा चट्टियाँ ले आ देती हूँ।

पुण्डरीकाक्ष ने व्यस्त होकर कहा—न, न, राम राम ! मैं भला उनकी चट्टियो मे पैर डालूँगा ? वे गुरुजन है।

एना हँसती-हँसती कहने लगी—तब तो दीदी के जूतों में भी पैर नहीं डाले जा सकते। देखूँ, यदि मेरे जूते इन गदाधर के पादपद्म को अपने वक्ष में धारण कर सकें।

पुण्डरीकाक्ष ने हँसते-हँसते कहा—तो क्या जूतों के ही द्वारा पहले-पहल वरण किया जायगा? परन्तु तुम तो मेरी साली हो नहीं। और होगी क्यों नहीं। मैं सदा यही समझता रहूँगा कि साली को ही रखकर गृहस्थी के सुख का उपभोग कर रहा हूँ।

एना ने हँसकर कहा—तो इसमें हानि ही क्या है? क्या कोई साली को गृहिणी बनाता ही नहीं? तुम्हारे मन में यदि यह भाव रहा, तब तो बल्कि और अच्छा है। उस दशा में मैं तुम्हारे लिए कभी पुरानी होऊँगी ही नहीं। तुम सदा परकीया-रस में ओत-प्रोत रहोगे। हम दोनों की वैष्णव-प्रेम की साधना जारी रहेगी।

पुण्डरीकाक्ष को कमरे में बैठाल कर एना जूते लाने के लिए इस तरह गई, मानो एक आनन्द की तरङ्ग उछलती हुई चली जा रही है। एक नौकर के हाथ में उसने एक जोड़ा चट्टी बाहर बैठक में पुण्डरीकाक्ष के पास भेज दिया और वह स्वयं गई मैना के कमरे में।

मैना अपने कमरे में खिड़की के पास चुपचाप बैठी हुई वर्षा की बहार देख रही थी। साथ ही साथ वह यह भी सोचती जाती थी कि इधर दो दिन के बीच में मेरे जीवनरूपी मंच पर कितनी जल्दी-जल्दी पर्दे बदलते गये, कैसी-कैसी नाटक की-सी घटनायें घट गईं। इतने में एना एकराशि जूही के फूल के समान हँसी-खुशी में भरपूर होकर दीदी के शरीर पर लोट पड़ी और दोनों हाथों से उसे लिपटाये हुए आनन्द-विह्वल स्वर में कहने लगी—दीदी, दीदी, मैंने उस उजड्ड को सड़क पर से बुलवाकर प्रस्ताव कर दिया है और उसने स्वीकार भी कर लिया है। दीदी, तुम चलो।

प्रसन्नता के मारे विकसित हो आये अपने मुख पर आश्चर्य का भाव

व्यक्त करती हुई मेना ने कहा—आँ ? यह क्या कहती है ? तूने प्रस्ताव कर दिया ? तुझे लज्जा नही आई ?

आह्लाद के अतिरेक से पुलकित होती हुई एना ने कहा—इसमें लज्जा की कौन-सी बात है ? एक तो वह गँवार यों ही मुँह-चोर है, तिस पर वह तुमसे धक्का भी खा चुका है। इससे वह भडककर घबरा उठा है। क्या सदा पुरुष ही लोग प्रस्ताव करते रहेगे ? स्त्रियों को इस बात का साहस कभी होगा ही नही ? इसके सिवा वैष्णव-प्रेम का आदर्श है लज्जा-पर्य्यन्त का परित्याग कर देना !

मेना एना को खीचकर अपनी गोद के पास ले आई और उसने उसका मुख चुम्बन किया। वाद को उसके नेत्रों से आनन्द के आँसू वहने लगे।

एना दीदी के नेत्रों में जल देखकर अत्यन्त ही व्यथित हो उठी। कुछ तो दीदी के प्रति समवेदना होने के कारण और कुछ आनन्द की अधिकता के कारण उसके भी नेत्रों मे जल आ रहा था, किन्तु अपना वह भाव दूर कर देने के विचार से अपनी वातों मे हँसी की पुट देकर उसने कहा—दीदी, तुम रो रही हो, यह देखकर लोग अपने मन में यही धारणा बनावेगे कि इस उजड्ड को नही पा सकी हो, इसी लिए तुम्हें रुलाई आ रही है।

आँसुओं के भीतर से ही वहन के मुँह की ओर ताकती हुई मेना, कहने लगी—मै रोती क्यों हूँ, यह जानती है भाई ? मै तेरी दीदी होकर तेरा यह आनन्द नष्ट कर वैठी थी। तुझे मै आजन्म दुखी कर रखने को उद्यत हुई थी।

इसके उत्तर में एना भी गम्भीर होकर ही बोली—तुम अपने आपको भी तो आजन्म के लिए दुख में झोंकने को उद्यत हुई थी दीदी ! यह सब जो होना था, हो गया, तुम वाहर आओ। मै उजड्ड को अकेला ही बैठाल आई हूँ।

अपने आँसुओं के साथ हँसी मिलाती हुई मेना बोली—तू अव भी

इसी नाम से पुकारती रहेगी ? पुण्डरीक बाबू भला अपने मन में क्या कहेंगे ?

हँसी से शरीर के समस्त अङ्गों को हिलाती हुई एना बोली—कहेंगे क्या ? इस तरह का प्यार का नाम सुनकर कृतार्थ हो जायँगे। तुम चलो, चलो।

यह कहकर एना मेना को खींचती हुई लेकर चली। मेना आगे की ओर पैर बढाते-बढाते अञ्चल से नेत्रों का जल पोंछने लगी।

मेना और एना ने आकर देखा तो पुण्डरीकाक्ष के पास राजाबहादुर बैठे थे। उन्होंने कन्याओ को देखते ही कहा—तुम दोनों कहाँ थी ? पुण्डरीकाक्ष आकर अकेले बैठे थे।

मेना के मुख की ओर दृष्टि डालकर पुण्डरीकाक्ष ने देखा कि उसका विषाद का मेघ बहुत कुछ उड चुका है, उसके मुख पर लावण्य-श्री की उज्ज्वलता लौट आई है।

पिता की बात सुनते ही मेना अपने हँसी से विकसित हो उठे मुख से कहने लगी—बाबू जी, एना मुझे खुश-खबरी सुनाने गई थी। उसने एकदम मे नीलकण्ठ होकर मेरे कन्धे का भार उठाकर अपने कन्धे पर रख लिया है. और वह भार भी स्वच्छन्दतापूर्वक उसके कन्धे पर सवार हो जाने के लिए स्वय ही उद्यत हो उठा है। एना इस कलिकाल की स्वय दधीच मुनि का अवतार है। कितना विशाल आत्मत्याग है उसका ? कितना कष्ट स्वीकार करने के लिए उद्यत है वह !

मेना आज अपने स्वभाव के प्रतिकूल इतनी बातें कह गई और हँसने लगी। उसे इस प्रकार हँसती देखकर और उसकी रस से भरी हुई बाते सुनकर पुण्डरीकाक्ष और राजाबहादुर आश्चर्य में आ गये, साथ ही वे आनन्दित भी हुए।. उनकी समझ में यह बात आई कि पुण्डरीकाक्ष एना के साथ विवाह करने के लिए जो तैयार हो गया है उसके कारण उसने एक साथ ही सबको सुखी और दायित्व से मुक्त कर दिया है। मेना पिता को जिस ऋण-चिन्ता से मुक्त करने के लिए आत्मबलिदान करने

को उद्यत हुई थी, वह ऋण-चिन्ता जाती रही, साथ ही उसे आत्म-वलिदान भी नहीं करना पडा। एना सुखी हुई, साथ ही पुण्डरीकाक्ष भी अत्यन्त असुखी हुआ हो, यह भी नही मालूम पडता।

कन्या की यह बात सुनकर राजाबहादुर मारे आह्लाद के प्रफुल्लित हो उठे। एक बार उन्होंने पुण्डरीकाक्ष के मुह की ओर ताका और एक बार एना के मुख की ओर। उन दोनों ही का लज्जा से झुका हुआ किन्तु मुस्कराहट की रेखा से युक्त मुख देखकर उन्होंने कहा—बहुत अच्छा हुआ, वहुत अच्छा हुआ। इस प्रकार की व्यवस्था करने का मेरा प्रारम्भ से लेकर अव तक का सङ्कल्प था। एना का रुख पहचान कर ही मैं स्वय पुण्डरीकाक्ष के पास गया था और उनसे अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव किया था। कारण, उस समय भी तो कन्दर्प के साथ ही मेना के विवाह की वात पक्की हो चुकी थी। यह वडा उत्तम कार्य्य हुआ, वडा ही उत्तम कार्य्य हुआ। इससे तुम सभी लोग सुखी होओगे और तुम सवको सुखी देखकर मै भी सुखी होऊँगा।

एना ने आगे वढकर लज्जा-जडित भाव से पिता को प्रणाम किया। उसकी देखा-देखी पुण्डरीकाक्ष ने भी आगे वढकर राजावहादुर को प्रणाम किया। वे दोनों पास ही पास उनके सामने खडे हुए। राजा-वहादुर उतावली के साथ उठे। उन्होंने दोनों ही हाथ फैलाये और उन दोनों को खींचकर अपने पास ले आये। तव हाथ से दोनो को लिपटाये हुए वे वोले—तुम दोनों एक दूसरे की प्रीति से तृप्ति-लाभ करो, सुखी होओ, यही मेरा आशीर्वाद है। महाकवि कालिदास के शब्दो में मैं कहता हूँ—

'आशीरन्या न ते योग्या पौलोमी-मङ्गला भव।'

इतने मे एक नौकर ने आकर राजावहादुर मे कहा—हुजूर, एक आदमी आया है, आपसे मिलना चाहता है। वह कहता है कि उसे आपसे कोई वहुत जरूरी वात कहनी है।

राजावहादुर ने पूछा—कैसा आदमी है ? कोई भला आदमी मालूम पडता है ?

नौकर ने कहा—एक लडका-सा वावू है।

वहाँ से उठकर चलते-चलते राजावहादुर ने कहा—तुम लोग वैठो, मै अभी आता हूँ।

राजावहादुर के उठकर जाते ही एना ने मेना को प्रणाम किया और हँसते-हँसते पुण्डरीकाक्ष से कहा—लो, प्रणाम करो। वाहर से तो इस तरह का भाव दिखाते रहना कि मानो ये गुरुजन है और भीतर ही भीतर कहते रहना—देहि पदपल्लवमुदारम्।

पुण्डरीकाक्ष ने लज्जित होकर मुस्कराते हुए मुख से मेना को नमस्कार किया।

मेना ने कहा कि मै भी पिताजी के ही समान महाकवि कालिदास के शव्दों मे आशीर्वाद देती हूँ—उपरागान्ते शशिन समुपगता रोहिणी योगम्।

एना ने हँसते-हँसते कहा—यह कहो कि उपराग और अनुराग दोनों ही के अन्त मे। परन्तु दीदी, तुम्हारा आशीर्वाद तुम्हारे लिए इतनी सुविधा का नही हुआ। तुम अन्त में उपराग के ही दल में पड गई हो।

पुण्डरीकाक्ष ने कृत्रिम तर्जन करके एना के कान के पास कहा—आह, दीदी को तुम जो मन में आता है, वही कह वैठती हो ?

एना होंठ उलटकर चवुरी वाँवे हुए वोली—हुश, वडी दीदी वनी है ! दो दिन पहले दीदी क्या थीं ? दो दिन पहले क्या ये ही तुम्हारे कल्पलोक की स्वप्न-विहारिणी नही थी ? अभी-अभी तो तुम इनके सम्वन्ध में कैसी कवित्वमयी भापा का प्रयोग करते रहे हो !

वात उडा देने के विचार से मेना ने कहा—अभी से तूने इन सज्जन के लिए तुम शव्द का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया ?

नेत्रों में और मुख पर विजली की-सी छटा देदीप्यमान करती हुई

एना बोली—दो दिन बाद तो इस प्रकार का प्रयोग करना ही है, इससे आज से ही अभ्यास किये रखती हूँ। तुम भी 'तुम' कहना आरम्भ कर दो। परन्तु उन्हे कभी ऐसा अवसर न देना कि ये भी तुम्हे तुम कहने लग पडें। फिर भी 'आपका' थोडा-सा व्यवधान रहेगा। तुम्हारे प्रति इनका जो प्रेम है, उसे ज़रा भी गुप्त कर रखने का तो अब कोई उपाय है नही, इससे जितना भी हो सके, उतना ही सावधान रहने में कुशल है।

एना को मधुरभाव से डाँटते हुए पुण्डरीकाक्ष फिर कुछ कहने जा रहा था, इतने मे राजाबहादुर आ पहुँचे। उनके मुख पर विषाद की रेखा फैली हुई थी। आते ही मेना की ओर ताकते हुए वे बोले—कांग्रेस का एक वालटियर यह सूचना देने आया है कि भास्कर को पुलिस पकड ले गई।

सबका हँसी से भरा हुआ मुख मलिन और उद्विग्न हो उठा। मेना के मुख की आभा तो एकदम से ही जाती रही। एना ने पूछा—उन्हे पुलिस क्यों पकड ले गई?

राजाबहादुर ने कहा—आज कांग्रेस की एक सभा होनेवाली थी। पुलिस ने आकर सभापति को गिरफ्तार कर लिया और सभा में सम्मिलित होने के लिए जो भीड एकत्र थी, उसे डडे मार कर तितर-बितर कर दिया। उस छिन्न-भिन्न होकर भागती हुई जनता को एकत्र करके भास्कर स्वय सभापति बन गया और व्याख्यान देने लगा। इससे पुलिस ने उसे भी गिरफ्तार कर लिया। जो लडका हम लोगों को यह समाचार देने आया है, वह कहता है कि भास्कर बहुत दिनो से उन लोगों को छिपाकर रुपये-पैसे की सहायता दिया करता था, इससे वे सब उसे पहचानते है। पुलिस ने भास्कर को जब गिरफ्तार कर लिया है तब यह भी सम्भव है कि वह उसकी चीज़-वस्तु की तलाशी लेने भी आवे। इसी से वह लडका आया है। वह भास्कर की चीज़ें यहाँ से उठाकर ले जाना चाहता है। उन्हे कही और जगह छिपाकर वह रख देगा।

यह वात सुनने के वाद मेना के मुख की आभा प्रदीप्त हो उठी। उसने दृढतापूर्ण स्वर मे कहा—न, उनकी चीज़े किसी अज्ञात और अपरिचित व्यक्ति के हाथों में दी ही नही जा सकती। जो आदमी आया है, वह झूठ नही वोल रहा है या पुलिस का गुप्तचर नही है, यह कैसे मालूम किया जा सकता है। वावू जी, तुम जाकर कह दो कि भास्कर वावू की चीजों में कुछ छिपाने लायक नही है। आने दो पुलिस को, वह लेती नही तलाशी।

राजावहादुर द्विविधा का-सा भाव व्यक्त करते हुए कहने लगे—यह तुम ठीक-ठीक क्या जानो कि भास्कर की चीजों में कुछ छिपाने लायक है ही नहीं ?

मेना ने दृढ स्वर में कहा—हाँ, मैं जानती हूँ। वे कभी कोई भी अनुचित कार्य्य नही कर सकते। जो अन्याय नही है, पाप नही है, उसे छिपाने की कोई आवश्यकता नही है। पुलिस आती है तो आने दो।

राजावहादुर ने जव देखा कि मेना दृढ है और गर्व के साथ ये वाते कह रही है, तव वे कहने लगे—अच्छा, तो मैं जाता हूँ और यही वातें उससे कहे देता हूँ।

राजाबहादुर चले गये। साथ ही साथ मेना भी मुख गम्भीर किये हुए वहाँ से चली गई। एना और पुण्डरीकाक्ष का मुख भी विषाद से आच्छादित हो उठा। वे दोनों गम्भीर होकर नीरव भाव से खडे रहे। उन दोनों की आज की इस आनन्द-पूर्णिमा के ऊपर कोई राहु विषाद की घनी छाया का सचार करके चला गया।

ज़रा देर तक की नीरवता के वाद पुण्डरीकाक्ष ने कहा—तुम्हारी दीदी ने कल उन्हे वहुत कडी वात कहकर डाँट दिया था। मालूम पडता है कि इसी से दु खी होकर उन्होंने अपने आपको इस प्रकार का दण्ड दिया।

एना ने आश्चर्य मे आकर पूछा—क्यों ? दीदी ने उन्हें क्यों डाँटा ? और जव उन्होंने डाँटा ही तव वह वात तुम्हे कैसे मालूम हुई ?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—अब उस बात को तुम लोगों से छिपा रखने में कोई लाभ नही है, इससे बतलाये देता हूँ।

यह कहकर लतागृह में छिपे-छिपे पुण्डरीकाक्ष ने जो कुछ देखा-सुना था, वह सब एना से कह गया। एना तो सुनकर अवाक् रह गई।

बाद को पुण्डरीकाक्ष ने एना को और भी सारी बातें बतलाई। जौहरी के यहाँ से मेना और एना के सारे गहने वह किस प्रकार खरीद ले आया, वे सब गहने उसने किस मतलब से रख छोडा था, अन्त मे उन्हे लेकर वह किस प्रकार भास्कर को देने गया और भास्कर से क्या-क्या बाते हुई, यह सब उसने एना को विस्तारपूर्वक बतलाया। इन सारी बातों से पुण्डरीकाक्ष तथा भास्कर के महत्त्व और लोभशून्यता का परिचय पा जाने पर एना का हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठा। चञ्चलता की मूर्ति तथा हँसी से निरन्तर खिलखिलाती रहनेवाली एना इन बातो से इतनी प्रभावित हुई कि वह गम्भीर हो उठी। मुह से कोई शब्द न निकाल कर उसने पुण्डरीकाक्ष के हाथ पर हाथ रख दिया। इतने ही से पुण्डरीकाक्ष ने यह अनुभव कर लिया कि कितनी अगाध श्रद्धा और प्रीति के साथ यह मेरे इस आचरण का समर्थन कर रही है।

इधर मेना पिता के पीछे-पीछे गई और जिस कमरे मे कांग्रेस के वालटियर के साथ उनकी बाते हो रही थी, उसके दरवाजे की आड में वह खडी हो गई। इस प्रकार गुप्त भाव से उसने सारी बाते सुन ली। बाद को वालटियर जब विदा लेकर चलता बना तब उसने कमरे मे प्रवेश किया और पूछने लगी—बाबू जी, क्या वह आदमी चला गया?

राजाबहादुर ने कहा—हाँ।

तब मेना मस्तक झुकाये हुए धीमे स्वर मे बोली—उनकी सारी चीज़े मै एक बार देख लेती हूँ। जो कुछ कागज-पत्र ह, वह सब हटा-कर रख दूँ। तुम ज़रा फाटक के सन्तरियो को सावधान कर दो कि सूचना दिये बिना कोई भी बाहरी आदमी भीतर पैर न रखने पावे।

राजाबहादुर ने कहा---अच्छी बात है। परन्तु भास्कर का बक्स और दराज़ खोलोगी कैसे ? कुंजी कहाँ है ?

मैना ने कहा---देखूँ, शायद मेरे या एना के गुच्छे की कोई कुंजी लग जाय।

राजाबहादुर ने कहा---तब मेरा भी कुंजियों का गुच्छा ले जाओ।

भास्कर के कमरे मे जाकर मैना ने बाहर का द्वार बन्द कर लिया। भीतर का द्वार उसने खोल रक्खा। उसने यह सोच रक्खा था कि यदि आवश्यकता हुई तो इसी द्वार से भाग कर मैं भीतर जा सकूँगी।

मैना और राजाबहादुर को लौटकर आते न देखकर पुण्डरीकाक्ष ने एना से कहा---अच्छा, तो आज मैं चलता हूँ, कल सवेरे ही आऊँगा। अब तुम अपनी दीदी के साथ-साथ रहना।

उन दोनों के मिलन का जो आनन्द था, उस पर विषाद की छाया पड गई। इससे उन दोनों ही का मन फीका पड गया। उनके मुख की हँसी विलीन हो गई थी। इससे एना ने कोई आपत्ति नही की। पुण्डरीकाक्ष भी भारी मन लिये हुए वहाँ से रवाना हो गया।

सत्रहवाँ परिच्छेद

भास्कर की डायरी

मेना ने जाकर भास्कर का बक्स खोला। उसमें जितने भी कागज़-पत्र थे, वे सब उठाकर वह अपने कमरे मे ले आई। रात्रि मे भोजन आदि से निवृत्त होने पर उसने कमरे की साँकड लगा ली और उन सब कागज़ों को सजा-सजाकर एक बक्स मे रखने लगी। उन कागज़ों में कुछ पूरे और कुछ अधूडे लेख भी थे। उन सबके विषय देख-देखकर मेना ने समझ लिया कि इनमे कोई आपत्तिजनक बात नही हो सकती। इससे उसने निश्चय किया कि इन्हे भास्कर बाबू के बक्स मे रख आऊँगी। मेना ने यह भी निश्चय किया कि दो-चार पुरानी और बेमतलबी चिट्ठियाँ भी उसमे रख आऊँगी, जिससे पुलिस को इस बात का सन्देह न हो कि बक्स से कुछ कागज़ हटाये गये है।

भास्कर के उन सब कागज़ों मे एक डायरी थी। मेना उसे उठाकर बक्स मे रखने ही जा रही थी कि एकाएक वह हाथ से छूट पडी। उसे उठाने के लिए हाथ बढाती हुई वह जैसे ही झुकी वैसे ही डायरी के खुले हुए पृष्ठ पर अकस्मात् अपना नाम देखकर चौंक पडी। उस समय मेना के हृदय में इतना प्रबल कौतूहल उत्पन्न हुआ कि वह उसे किसी प्रकार रोक न सकी और डायरी का पन्ना खोलकर पढने लगी। यद्यपि हर एक पक्ति पढ लेने के बाद ही मेना के मन मे यह बात आती कि दूसरे की डायरी पढना उचित नही है, परन्तु फिर भी एक पक्ति पढ लेने के बाद ही दूसरी पक्ति पढ लेने का हृदय मे इतना प्रबल आग्रह उत्पन्न होता था कि पढे बिना उससे रहा ही न जाता।

पहला पृष्ठ समाप्त कर लेने पर मेना का पढने का नशा खूब जम गया और उस नशे में उचित-अनुचित का विचार छोडकर वह बराबर पढती ही गई। भास्कर ने लिखा था—

"खैर, गर्जनपुर के ज़मींदार लालमोहन चक्रवर्ती का पुत्र प्रभाकर आज अदृष्ट के फेर से गङ्गानगर के जमींदार राजाबहादुर राजेन्द्रनारायण चौधरी के घर का नौकर है। प्रभाकर चक्रवर्ती आज भास्कर राय है और अखबारवालों के लिए वह शङ्कर शर्मा है। इस प्रकार के हेर-फेर मे चाहे और कुछ न हो, किन्तु कौतुक इसमें अवश्य है।

"सत्यनिधन एटर्नी आदमी अच्छा है। उसने कम से कम मेरे लिए एक नौकरी का प्रबन्ध तो कर दिया है, वह भी एक सज्जन व्यक्ति के यहाँ। साथ ही उसने मेरा वास्तविक परिचय भी गुप्त ही रक्खा है। नौकरी मैं कर रहा हूँ। किन्तु जिनके यहाँ नौकरी कर रहा हूँ, वे आदमी बहुत ही अच्छे हैं।

"राजाबहादुर मुझसे पुत्रवत् स्नेह करते हैं। उनकी कन्यायें देखने मे बहुत ही सुन्दरी है। कितना तेज है उनके मुखमण्डल पर। विशेष-कर उनकी बडी कन्या मेना एक आदर्श कन्या है। उन्होने अपनी गम्भीरता और मर्य्यादा के कारण एक महिमामयी महाराणी के समान सारे घर को अत्यन्त शोभाशाली और महिमामय बना रक्खा है।

"छोटी कन्या एना मानो वास्तव मे एना ही है। वे हरिणी के समान उछलने-कूदनेवाली है, चञ्चला है, हँसना-खेलना और मनोरंजन करना ही उनका एकमात्र कार्य्य है। ये कभी बहुत ही सरल हो जाती है और कभी बहुत ही गम्भीर हो उठती है। जीवन के सभी विषयों को ये हँसी का अस्त्र लेकर खदेडती रहती है।

"इन लोगों के यहाँ मै अच्छी ही तरह से हूँ। मैं नौकरी करत हूँ, यह अनुभव होने का अवसर इन लोगों ने कभी आने ही नहीं दिया सभी लोग मेरा सम्मान करते है, मुझे स्नेह की दृष्टि से देखते है राजाबहादुर तक मुझे किसी प्रकार की आज्ञा नही देते। वे पराः

लेने के बहाने से ही जो कुछ कार्य्य होता है, उसका इशारा कर दिया करते है।

"मेना देवी और एनादेवी मुझसे कभी बोलती नहीं, तो भी मुझे देखने पर उनकी दृष्टि मे सम्मान का ही भाव उदय हो आता है। मैने कभी उनसे किसी प्रकार का सम्पर्क स्थापित करने का पयत्न भी नहीं किया। एक तो धनवान् आदमी की कन्याये है, दूसरे अविवाहिता है। कहीं कोई यह कल्पना न कर बैठे कि मै इनके प्रति अनुरक्त हूँ अथवा मै इनका अनुराग आकर्षित करके अपने को एक हिल्ले से लगा लेने का उद्योग कर रहा हूँ।

यहाँ मै आराम मे ही हूँ। तो भी गुज्जरी नदी के तट पर गर्जनपुर गाँव मे जो मेरा घर है, उसके लिए मेरा चित्त कभी-कभी दुखी हो उठता है। वहाँ था पिता का स्नेह, माता की स्मृति, कितने प्रेमी व्यक्तियों की प्रीति और सम्मान। इसी लिए—

रेवा-रोधसि वेतसी-तरु-तले चेत समुत्कण्ठते।

"मुझे सबसे अधिक क्लेश इस कारण है कि देश के कल्याण की कामना से मैने जितने प्रकार के भी कार्य्य आरम्भ किये थे, वे सब पिता जी के आदेश से बन्द कर देने पडे। मुझे इस प्रकार की आज्ञा उन्होंने पुलिस के भय से दी थी। पिता जी की इस आज्ञा की मै उपेक्षा भी कर जाना चाहता था, किन्तु वे मुझसे घबराने-से लगे थे। उन्हे भय था कि मै कही पुलिस के हथकण्डे मे आकर उन्हे तक न उसमे फॉस बैठूं? इसी से वे मुझसे कह बैठे कि तुम घर से निकल जाओ।

"पिता जी के मुँह से यह बात निकलते ही जो मै घर छोडकर चल पडा, इसके कई कारण है। एक तो मुझे यह बात लग गई, दूसरे मुझे यह सोचकर बडा दुख हुआ कि हमारे देशवासियो मे कितनी नपुसकता आ गई है। घर छोडने का तीसरा कारण यह है कि मै बहुत अधिक नीराश हो उठा था। ग्रामवासियों की उन्नति तथा उनकी सुख-सुविधा के लिए मैने वहाँ जो कोई भी सस्था स्थापित करने का उद्योग किया

है, उसमें उन लोगों की ओर से सहायता के स्थान पर बाधा ही प्राप्त हुई है। ग्रामवासियों ने मेरे सभी लोकोपकारी कार्य्यों में बहुत अधिक विघ्न उत्पन्न किये है। वे सभी इस बात के लिए डरते थे कि मैं व्यर्थ में पुलिस को चिढाने के लिए उपद्रव खडा कर रहा हूँ। हाय रे छाया के भय से विह्वल हो जानेवाले मूढ देश, अपनी शिक्षा, स्वास्थ्य तथा जीविका के साधनों को उन्नत बनाने मे तुम्हे इतना भय है, इतना अनुद्योग है, इतना अनुत्साह है।"

कई दिनों के विराम के बाद एकाएक एक दिन भास्कर को फिर डायरी लिखने की सूझी। उस दिन उसने लिखा था——

"मैं जिस नौका पर बैठता हूँ, उसी में छिद्र हो उठता है। अपने पिता का आश्रय त्याग कर मैं राजाबहादुर के आश्रय मे आया। कोई भी पिता पुत्र के प्रति जिस प्रकार का स्नेह कर सकता है, ये उससे कम स्नेह मेरे प्रति नहीं करते। परन्तु इन बेचारों की अवस्था भी बहुत ही शोचनीय है। ऋण के द्वारा ये बेचारे बाल-बाल बँधे हुए है। मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं इनसे वेतन न लूँगा। रहने के लिए स्थान तथा स्नेह और सम्मान पा गया हूँ, यही मेरे लिए बहुत है। परन्तु मैं यदि कुछ न लूँगा तो भी उन्हे सङ्कोच होगा, इससे केवल पचास रुपया मासिक लेता जाऊँगा। ये रुपये मैं गुप्त रीति से कांग्रेस के कार्य्य के लिए देता जाऊँगा जिससे कि पुलिस खबर पाकर कही हमारे पिता को तंग न कर सके। मेरा खर्च मेरे लेखो के पुरस्कार से ही चल जायगा। शङ्कर शर्मा के लेखों का अब खूब आदर होने लगा है।

इसके बाद कई दिनों का व्यवधान देकर डायरी में फिर लिखा था——

"डायरी लिखने का मेरा स्वभाव नही है, किन्तु कोई साथी न होने के कारण मै इस कापी के पन्नों से अपने मन की बातें कहा करता हूँ। यह डायरी मेरे मन की बातों की गूँगी भंडारिन है। यह मेरी परम सखी है। इसके कानों मे एक-एक बात कह देने में किसी प्रकार की आशङ्का नहीं है। यह सुनने मे किसी प्रकार की आपत्ति नही

करती, किसी प्रकार का तर्क नही करती, कोई उपदेश नही देती। जो बात इससे गुप्त रखने को कही जाती है, उसी को हरएक आदमी से कहते फिरने के लिए इसका मुह भी नही खुजलाता रहता।

"आज साँझ को मेना देवी के पास मै पहले-पहल गया था। आज पहला अवसर था जब कि मैंने उनसे बातचीत की। राजाबहादुर के ऋण का हाल सुनकर उनका मुख मलिन हो उठा। परन्तु उस मुख की उस समय की शोभा जिसने नही देखी है उसे यह समझाना सम्भव नही है कि उस गम्भीरता तथा मलिनता में कैसी अनुपम सुन्दरता थी उनके मुख की। मन आज हर्ष और विषाद से परिपूर्ण हो उठा है। ऐसा जान पडता है कि मानो आज सध्या के आकाश मे नया रङ्ग लग गया है। यह क्या अनुराग की प्रतिच्छुरित आभा है ?

कई दिनों के पन्ने फिर खाली छोड दिये गये थे। तब एक दिन के पन्ने मे लिखा था——

"आज राजाबहादुर ने मेनादेवी को बतलाया—शङ्कर शर्मा के नाम से जो व्यक्ति लिखा करता है वह मै ही हूँ। यह बात सुनकर वे मुस्कराती हुई प्रसन्नतामयी दृष्टि से मेरी ओर ताकने लगी। इतने मे ही मुझे साहित्य-साधना मे सिद्धि मिल गई। साधना के अन्त में मै देवी का वर पा गया। मैंने सुना कि शङ्कर शर्मा के लेख उन्हे पसन्द है। इससे यह अनुभव हो रहा है कि शङ्कर शर्मा की लेखनी और जीवन दोनों ही सार्थक हो गये। जीवन मे जो भी उत्तम से उत्तम पुरस्कार मिलना सम्भव था, वह मुझे मिल गया। शनि, राहु, केतु आदि जितने भी पाप-ग्रह है, इस समय यदि वे सभी मिलकर मेरी ओर क्रूर दृष्टि से देखने लगे, तो भी मै उनके कारण किसी प्रकार की चिन्ता न करूँगा।"

फिर कई दिनों का व्यवधान देकर लिखा था——

"सुनने में आया है कि कन्दर्प नामक किसी एक जमीदार के साथ मेनादेवी के विवाह की बात पक्की हो गई है। जाने दो, दुर्भावना दूर हुई। कभी-कभी मन मे यह दुराशा उदय हो आया करती थी कि शङ्कर

शर्मा यदि प्रिय लेखक है, तो आदमी भी वह विलकुल अपसन्द कर देने के लायक नही हो सकता। मै तो समझता हूँ कि शङ्कर शर्मा अत्यन्त ही निम्नश्रेणी का और तुच्छ समझ लेने के लायक नही है। वात केवल इतनी है कि वह गरीव है। परन्तु यह गरीवी भी तो उसने अपने आप ही मोल ली है ? वह यदि शान्त और सुशील होकर सरकार की इच्छा के अनुकूल हवा में अपनी जीवन-नौका का पाल उडाता चला जाय तो इसी समय धनवान् हो सकता है। उस अवस्था में यह कन्दर्प शङ्कर शर्मा के सामने वहुत साधारण जान पडने लगेगा। परन्तु लोभ करना कोई अच्छी वात नही है । यदि मेनादेवी उस कन्दर्प के प्रति अनुरक्त हों, तो क्यों व्यर्थ में अस्वीकृत हो जाने के क्लेश को निमत्रित कर ले आऊँ ? यह मेरे लिए सौभाग्य की ही वात हुई, जो मैंने अधिक घनिष्ठता नही की। किसी प्रकार का सम्पर्क न स्थापित करके दूर-दूर रहकर मैंने कितनी वुद्धिमानी का काम किया है। भास्कर राय मे वुद्धि है, यह कहना पडेगा।"

फिर कई दिनों तक कुछ नही लिखा गया था। अन्त में डायरी के अन्तिम पृष्ठों की ओर एक दिन लिखा था—

"पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड नामक एक सज्जन आज वाँह फुलाकर— राजगृह में प्रविष्ट हुए है। पहले उन्होंने अपनी वुआ को भेजकर मणि को वज्र से समुत्कीर्ण कर रक्खा था, आज वे सूत्र के समान सुडसुडाकर हाजिर हो गये। उनका निमन्त्रण है। उनकी अभ्यर्थना के लिए कल से ही राजकुमारियो का अपार आयोजन आरम्भ हो गया है। कितने प्रकार की भोजन-सामग्रियाँ कल से तैयार की जा रही है।

"आज दोपहर के वाद राजकुमारियों का ध्यान गया है शृंगार करने की ओर, इसलिए कि अपने सौन्दर्य से वे नवाव साहव का मन आकर्षित कर लें। राजावहादुर मुझसे कह रहे थे, इस निमन्त्रण-सभा मे उपस्थित रहने के लिए। एक आदमी का निमन्त्रण है, उसे आदरपूर्वक वुलाया जा रहा है और मुझे यों ही उपस्थित हो जाने की आज्ञा दी

जा रही है। मुझसे तो यह न हो सकेगा। 'हसमध्ये वको यथा' होकर बैठे रहने के लिए मै तैयार नही हूँ। इसके सिवा मैं क्या उपस्थित रहूँ किसी के एकान्त सम्भाषण में विघ्न डालने के लिए! किसी का रोष-भाजन बनने के लिए! 'मणिना भूषित सर्पं किमसौ न भयङ्कर!' (मणि से विभूपित होने पर क्या सर्प भयङ्कर नही होता?) और उससे भी अधिक भयङ्कर होता है मणि से विभूपित प्रेम का आकाक्षी पाणि-प्रार्थी। अपना प्रतिद्वन्द्वी समझकर निरीह व्यक्ति को भी वह काटने दौडता है। इधर 'मणिना भूषिता' रूपसी भी कम भयङ्करी नही होती। 'मनसा देवि नमोऽस्तु ते' कहकर उन्हे बचाकर मै दूर ही हटा रहता हूँ।

"मैने भूल की थी। पहले से किसी के सम्बन्ध मे किसी प्रकार की धारणा बनाना उचित नही है। मनुष्य का कार्य्य देखकर उसके सम्बन्ध मे विचार करना चाहिए। एनादेवी ने बडे ज़ोरों की सजावट की थी। ऐसा सुन्दर-वेश उन्होंने बनाया था कि उनकी ओर देखकर एक बार मुनि का भी मन आकर्पित हो उठे। परन्तु मेनादेवी ने किसी प्रकार का साज-शृगार नही किया था। खद्दर की एक देशी साडी और एक साधारण कुर्ती पहने हुए अपनी शुचिव्रता मूर्ति में वे अधिक सुन्दरी हो उठी थी। इस वेश मे वे वडी ही सुन्दरी मालूम पड रही थी। शायद मेरी दृष्टि मे पक्षपातिता दोष आ गया हो। होगा, कौन जाने?"

फिर कई दिनों के पृष्ठ खाली पडे थे। बाद को बिलकुल कल की तारीख मे लिखा था—

"पुण्डरीकाक्ष तो प्रतिदिन ही आते-जाते रहते है। एनादेवी उनके आगमन की प्रतीक्षा मे वासकसज्जा किये हुए प्रतिदिन ही वरामदे मे खडी रहती है। इस प्रकार दोनों ही बहने 'बुक्ड' है। यह खूब रहा! परन्तु दो दिन से दोनों बहने बहुत उदास मालूम पडती है! कारण क्या है? क्या इन दोनों मे कुछ झगडा हो गया है?"

"आज अकस्मात् कन्दर्प प्रकट हो आये है। खूब अच्छे डील-डौल के है। हृष्ट-पुष्ट है! मुखमण्डल पर प्रसन्नता की रेखा विराजमान

रहती हैं। नौकर-चाकर के हाथ से पाले-पोसे गये जीव हैं। और बेचारा पुण्डरीकाक्ष! वह तो इनके सामने बिलकुल ही निष्प्रभ हो उठेगा। हज़ार हो, वह तो अभी एकाएक कल धनवान् हुआ है और ये हैं ज़मींदार के लड़के!

"मेरा भी निमन्त्रण है। राजाबहादुर ने बड़े आग्रह के साथ कहा है इससे मैं अस्वीकार नहीं कर सका। परन्तु मैं इस सभा में तो बिलकुल ही वशीभूत-सा हुआ बैठा रहूँगा। पुण्डरीकाक्ष एकाएक उन्नत अवस्था को प्राप्त हुआ है, एकाएक नवाब बन बैठा है! मेरे जैसे गरीब नौकर से बातचीत करने में उसे अपनी मर्यादा में कमी आ जाने की आशङ्का होती है। पहले जब वह मुझे देखता था, तब विनीत भाव से नमस्कार करता था। आज-कल का यह हाल है कि मेरी ओर वह देखता तक नहीं! सामना हो जाने पर मुँह फेर लेता है और छाती फुलाये हुए अपने रास्ते चला जाता है। मन ही मन मुझे हँसी आती है। हँसी इस बात पर आती है कि धनवान् हो जाने पर असभ्यता प्रदर्शित करने तथा दूसरों का तिरस्कार करने की आदत डाल लेने की क्या आवश्यकता है?

"और कन्दर्प? वह तो ज़मींदार आदमी है। उसके लिए तो मेरे-जैसे नौकर से बातचीत करना ही असम्भव है। घर की लड़कियों तक ने तो कभी मुझसे बातचीत करने या मुझे जानने की इच्छा की नहीं। आज इस निमन्त्रण-सभा में क्या वे मुझसे बोलने लगेंगी? अकेले राजाबहादुर सुजनता के अवतार हैं। शिष्टाचार की रक्षा के लिए वे अपने नौकर के भी सम्मान में अपने भावी जामाताओं से किसी प्रकार की भिन्नता नहीं आने देंगे। इससे बड़ा तमाशा होगा। वे दोनों ही मन ही मन अपना अपमान समझेंगे, क्रुद्ध होंगे और कुड़-कुड़ायेंगे।

"निमन्त्रण-सभा में जाकर देखा तो वहाँ की अद्भुत ही लीला थी। कन्दर्प खूब उछलते-कूदते हुए अपनी वीरता की घोषणा

कर रहे थे। उनके एक बार ज़रा-सा विराम लेते ही एनादेवी ने मुझसे अनुरोध किया, चलिए भास्कर बाबू, हम लोग बगीचे मे टहल आवे। मै तो सोच रहा था कि इन कन्दर्प का मुख जब तक खाद्य और पानीय से नही पूर्ण हो जाता तब तक इनकी ये गर्वमय बाते हम लोगों को गले के नीचे उतारनी ही पडेंगी। अब एनादेवी के आह्वान से मै चकित तो अवश्य हुआ, किन्तु आत्म-रक्षा का मार्ग पाकर उनके साथ निकल पडा। इससे पहले एनादेवी ने कभी मुझसे बातचीत नही की थी। मैंने भी उनके पास फटकने का साहस नही किया था। कई दिन काम के बहाने से मेनादेवी के पास अवश्य गया था, किन्तु उनसे भी काम के सम्बन्ध की बातों के सिवा और एक भी बात नही की। परन्तु आज यह कैसी बात हो गई? इस तरह की घटना की तो कभी कल्पना तक मन मे नही उदित हुई थी!

एनादेवी ने मुझे अपने साथ मे बुला भर लिया, घर से बाहर निकलने पर उन्होंने मुझसे एक भी बात नही की। मै पड गया बडे सङ्कट में। न तो मुझसे बोलते बनता था और न चुप रहते बनता था। न तो उनका साथ छोडकर चला आते बनता था और न उनकी छाया का सहचर होकर उनके पीछे-पीछे मुझसे घूमते ही बनता था।

एकाएक एना ने देखा कि बेचारा पुण्डरीकाक्ष छोटा-सा मुँह किये हुए पैर घिसलाते-घिसलाते किसी प्रकार अकेला ही बगीचे में टहल रहा है, मेना को लेकर कन्दर्प बगीचे की दूसरी ओर इससे ज़रा-सा पहले ही चला गया है। इस प्रकार दोनों राजकुमारियो ने, कन्दर्प को और मुझे अपना साथी चुन-चुनकर उस बेचारे को चरने के लिए अकेला ही छोड दिया। बेचारे की अवस्था देखकर मुझे बडी ममता हो रही थी। ऐसे समय मे पुण्डरीकाक्ष का सामना होते ही एना खिल-खिलाकर खूब ज़ोर से हँस पडी।

"एना की उस समय की हँसी में इतना व्यङ्ग्य था कि उसके आघात से पुण्डरीकाक्ष बहुत ही सकुचित हो उठा। उसकी आकृति बिलकुल ही तेजहीन हो गई। जान पडने लगा कि अब पुण्डरीकाक्ष की नाडी ही छूट जाना चाहती है।

"एना मुझे साथ में लिये हुए तेजी से पैर बढाती हुई दूसरी ओर चली गई, पुण्डरीकाक्ष से बहुत दूरी पर। पुण्डरीकाक्ष की दृष्टि की आड में होने ही उन्होंने तडाक-फडाक मेरा भी साथ छोड दिया और घर की ओर चल पडी।

"अब पुण्डरीकाक्ष की-सी ही दशा मेरी भी हो गई। मैं भी अकेला पड गया। इससे लौटकर घर में अपने आपको छिपाने जा रहा था। इतने मे एकाएक मेरे कान में मेनादेवी की आवाज़ आई। उस आवाज़ में भय था, व्याकुलता थी और था भयङ्कर क्रोध से भरा हुआ आकुल आह्वान—भास्कर बाबू, इस शराबी बदमाश के हाथ से क्या आप मुझे बचा सकते है!

"कान मे पहुँचते ही मैंने पहचान लिया कि यह कण्ठ-स्वर मेनादेवी का है। जिस ओर से वह स्वर आ रहा था उसी ओर मुँह फेरकर मैंने ध्यान मे देखा। किन्तु सन्ध्या के अन्धकार में मुझे कुछ दिखाई न पडा। लता-कुज के भीतर से केवल धक्कमधक्के की आवाज़ कान में पडी, मानो कोई किसी को पटकने की कोशिश कर रहा है।

"दो ही छलाँग में मैं कुज में पहुँचा। वहाँ पहुँचकर देखा तो कन्दर्प खडा हाँफ रहा था। मेनादेवी भी हाँफती-हाँफती अपने अस्तव्यस्त कपडों को यथास्थान करके सँभाल रही थी। मामला समझने मे विलम्ब नही हुआ। मेरे जी में आ रहा था कि उस कन्दर्प-स्वभाव सार्थकनामा व्यक्ति के चैतन्य का अन्त करके उसे सदा के लिए सचेत कर दूँ। परन्तु मैंने अपने आपको सँभाल लिया। सोचा कि यह राजा का भावी जामाता है और मैं राजा का एक अदना-सा नौकर हूँ। परन्तु उस हतभाग्य ने मुझे अपनी मनस्कामना पूर्ण करने का सुअवसर स्वय

दे दिया। उसने मुझे गाली दी और उसकी गाली का जवाब मैंने घूँसे से दिया। मुँह पर ऐसे जोर का घूँसा मारा कि ज़बान ही न खुल सकी। मुँह की गाली मुँह मे ही रह गई। मेरा पुरस्काररूपी घूँसा खाकर कन्दर्प लडखडाते-लडखडाते एक फूल के वृक्ष से टकरा गया, इससे उसके पैर रुक गये और वह गिरने से बच गया।

"कन्दर्प भगा। मै भी लता-कुज के बाहर आ गया। वहाँ खडे-खडे मै इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि मेनादेवी निकलकर आवे तो मै उन्हे घर पहुँचा दूँ। कुज से उनके निकलते ही मेरी जिह्वा पर कैसी दुष्टा सरस्वती बैठ गई! मै उनसे कह बैठा—इस तरह की घटना के बाद तो आप इस बदमाश की सहधर्मिणी होना स्वीकार करेगी नही, ऐसी दशा मे यदि आप कृपा करके उसके स्थान पर मुझे अभिषिक्त कर लेती,—

"मेरी बात समाप्त होने से पहले ही मेनादेवी भभककर जल उठी। वह पहला अवसर था जब कि उन्होने मुझे यह सूचित किया कि पुण्डरीकाक्ष ने राजाबहादुर का सारा ऋण चुका दिया है, और उसके बदले मे उसने मेनादेवी के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की है। इससे वे भी अपनी स्वीकृति देने के लिए बाध्य हुई है। परन्तु मेरी सच्चरित्रता, मेरी सुजनता तथा मेरे प्रेम के प्रति अत्यन्त ही निष्ठुरतापूर्ण अन्याय करके उन्होंने मुझ पर इस प्रकार की दुर्भावना करने का अभियोग लगाया कि मै पुण्डरीकाक्ष के द्वारा लौटाई गई जमीदारी के लोभ से उन्हे प्राप्त करना चाहता हूँ। यह कितनी बडी भूल थी उनकी, क्या मै धन-लोलुप हूँ, ऐश्वर्य्य के फेर मे हूँ! यदि मै चाहूँ तो आज ही पिता के पास लौटकर चले जाने पर अतुलित ऐश्वर्य्य का अधीश्वर बन सकता हूँ।

"मीराबाई के स्वामी राणा कुम्भ के हृदय मे भक्ति थी। किन्तु कभी वे वह भक्ति प्रकट नही होने देते थे। वे सोचते थे कि मेरा प्रश्रय मिल जाने पर मीरा और भी अधिक भावोन्मत्त हो उठेगी। अन्त मे

एक दिन रात मे राणा जब निद्रित अवस्था में थे तब उनके मुँह से भगवान् का नाम निकल ही गया। यह सुनकर मीरा ने समझ लिया कि मेरे स्वामी तो परम भागवत हैं। इससे प्रात काल उठते ही उन्होंने उस दिन उत्सव मनाने की घोषणा कर दी। मीरा की यह घोषणा सुनकर राजा ने यह जानना चाहा कि यह उत्सव किस बात के लिए मनाया जा रहा है? इसके उत्तर मे मीरा ने सूचित किया कि निद्रा की अवस्था मे भी जो व्यक्ति भगवान् का स्मरण करता है, उसके समान भागवत और कौन हो सकता है? इस प्रकार के व्यक्ति मेरे स्वामी हैं। इसी बात की प्रसन्नता प्रकट करने के लिए मैंने आज उत्सव की घोषणा की है। मीरा की बात सुनकर राजा ने खेद प्रकट करते हुए कहा—"दीवार के अन्दर जो इतना रोज़ छिपाकर रक्खा था, वह आज निकल गया।"

"मेरी भी आज वही दशा हुई। इतने दिनों तक प्राचीररूपी वक्ष के भीतर बन्द करके जिस प्रेम को यक्ष की निधि के समान मैंने गुप्त कर रक्खा था, आज अकारण ही उसका आवरण मुक्त करके उसे अपमानित कर दिया। परन्तु मुझे पुरस्कार भी प्राप्त हो गया है। मेनादेवी ने मुझे सूचित कर दिया कि यही बात यदि मैंने कल कही होती तो वे बड़े आदर के साथ मुझे वरण कर सकती थीं। बस, मुझे जो कुछ अधिक-से-अधिक लाभ हो सकता था, वह हो गया। मैंने जो अपना प्रेम व्यक्त कर दिया, उसी के कारण तो उनके हृदय का यह गूढ सवाद ज्ञात करने मे समर्थ हो सका हूँ। परन्तु व्यक्त कर देने के कारण प्रेम की जो अमर्यादा हुई, उससे मेरे हृदय को क्लेश हो रहा है।

"हृदय के भीतर ही भीतर जो प्रेम छिपा रहता है, वह भी कितना पवित्र होता है। अन्धकारमय हृदय मे माणिक्य के समान वह देदीप्यमान रहता है, परन्तु आलोक में आने पर वही कलङ्क के समान कालिमामय दिखाई पड़ने लगता है।

"मैंने प्रियपात्र को निराशामय अवस्था मे देखकर प्रेम-प्रदान करके

उसे सान्त्वना देने, उसका निराशा का सन्ताप दूर करने के विचार से ही अपना हृदय नग्न किया था। परन्तु क्या सवकी सव आशायें पूरी ही हो जाया करती है ? मेरी भी नही हुईं। इसमे खेद की कौन-सी वात है ? दु ख विलकुल ही न पा सके, इस तरह का हतभाग्य कौन है ? अपने प्रियपात्र के हाथ से यह आघात मिलने पर मेरे हृदय मे जो खरोच हो गई है, वही मेरे चिरजीवन के प्रेम का साथी और साक्षी है। परन्तु रामचन्द्र की सव वार्तो की पुनरावृत्ति करते हुए विलाप करने की भी मुझे इच्छा हो रही है। अपने हृदय की विकलता का मै किसी प्रकार भी निवारण नही कर पाता हूँ!

हा हा देवि स्फुटितहृदये ध्वसते देहवन्ध ।
शून्य मन्ये जगदविरतज्वालमन्तर्ज्वलामि ।।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा ।
विष्वङ्मोह स्थगयति कथ मन्दभाग्य. करोमि ।।

हाय हाय देवी, मेरा हृदय फटा जा रहा है। शरीर की समस्त ग्रन्थियो के वन्धन शिथिल हो उठे है, यह जगत् शून्य-सा मालूम पड रहा है। निरन्तर जलती हुई चिता के समान मेरा हृदय जला जा रहा है। मेरी विरह-विधुर अन्तरात्मा अवसाद-ग्रस्त होकर अन्धतमसा मे मानो निमज्जित हुई जा रही है। मोह चारो ओर से घेरे आ रहा है। वतलाओ देवि, वतलाओ, मै मन्दभाग्य इस समय कौन-सा उपाय करूँ। ?"

उसके वाद ही आज की तारीख में लिखा है—

"कल सारी रात मुझे नीद नही आई। यहाँ से भागने का उपाय सोच रहा था। जिसके ऊपर धनलोलुप होने का लाञ्छन लगाया जा चुका है, उसका अब यहाँ रहना अच्छा नही है। कन्या के मन मे जव इस प्रकार की वात आ जानी सम्भव है, तव पिता ही रुपये-पैसे के काम में मेरा विश्वास क्यो करने लगे ? मुझे यहाँ से भागना ही पडेगा, भागना ही पडेगा। परन्तु इस प्रकार भागने मे कही कोई यह न समझ बैठे कि

में अमानत में ख़यानत करके भाग गया हूँ या कोई अनुचित कार्य कर बैठा हूँ, जिसका रहस्य खुल जाने की आशङ्का से अपना मुँह छिपा लिया है। समस्त रात्रि कोई उपाय स्थिर नहीं कर सका।

"सवेरा होते ही पुण्टरीकाक्ष आये थे। वे लता-कुज के समीप कहीं थे और कल मेनादेवी के प्रति मैंने और कन्दर्प ने जो कुछ अत्याचार किया है, उसका हाल उन्हें मालूम हो गया है। उन्होंने यह भी मालूम कर लिया है कि मैं मेनादेवी से प्रेम करता हूँ। केवल इतना ही नहीं बल्कि मेनादेवी की बात सुनकर उन्होंने अपने मन में इस बात का भी मिथ्या सन्देह कर लिया है कि मेनादेवी भी मुझे चाहती है। हाय रे अन्ध सन्देह! यही सन्देह तो पहले मेरे हृदय में भी उदित हुआ था। इसी के कारण तो मैंने अपना गुप्त प्रेम मेनादेवी के समीप प्रकट कर देने की भूल की है। यही कारण है कि मैं इस प्रकार का लाञ्छन अपने ऊपर लगा ले आया!

"जो भी हो, पुण्डरीकाक्ष के मन में जो यह सन्देह उत्पन्न हो गया है कि मेनादेवी मुझसे प्रेम करती है, उसके कारण उन्होंने निश्चय कर लिया है कि उनके साथ विवाह करने की जो पुण्डरीकाक्ष की प्रार्थना है, उसे वे वापस ले लेंगे। इस प्रकार मेनादेवी का और उनका जो विवाह-सम्बन्ध स्थिर हुआ है, उससे मुक्त होकर मेनादेवी अपनी इच्छा के अनुसार मेरे साथ विवाह कर सकेंगी। मेनादेवी को इस प्रकार की स्वतन्त्रता मिल सकती है, किन्तु मेरे ऊपर जो अर्थलोलुप होने का लाञ्छन लगा है, उससे कौन मुझे छुटकारा दिला सकता है?

"पुण्डरीकाक्ष ने वह उपाय भी किया है। उन्होंने मेरे सामने कम-से-कम पचास-साठ हज़ार रुपयों की कीमत के सोने के जड़ाऊ गहने और सोने-चाँदी के काम के बर्तन आदि लाकर रख दिया और कहने लगे—ये सभी गहने मेनादेवी और एनादेवी के हैं। पिता को ऋण की चिन्ता से मुक्त करने के लिए उन्होंने यह सब उन्हें विक्रय के

लिए दे दिया था। जिस दिन उन सबको लेकर राजाबहादुर सराफ की दूकान पर देने गये थे, उस दिन पुण्डरीकाक्ष भी दूकान पर वर्त्तमान थे। राजाबहादुर तब तक पुण्डरीकाक्ष को पहचानते नही थे, किन्तु पुण्डरीकाक्ष राजाबहादुर को पहचानते थे। इनके दूकान से चले आने पर वे सारा सामान खरीद ले आये। अपने पास वे इस विचार से वह सब रक्खे थे कि मेनादेवी को विवाह मे चढाव मे देगे। अब उन्होंने तो यह निश्चय ही कर लिया है कि वे मेनादेवी के साथ विवाह न करेगे, इससे उनके सभी गहने-आदि वे मुझे दे रहे थे कि मै अपनी ओर से उन्हे चढाव मे दूँ, साथ ही इससे मेरे ऊपर अर्थलोलुप होने का जो लाञ्छन लगा है, वह बहुत कुछ दूर हो जाय। परन्तु ऐसा भी कही होता है ?

"पुण्डरीकाक्ष ने राजाबहादुर की इतनी बडी जमीदारी रेहन से छुडाकर उन्हे वापस दे दी है। इससे उनका कितना बडा ऋण राजा-बहादुर के ऊपर चढ गया है। इसके सिवा ये गहने भी कितने मूल्यवान् है। सारी जमीदारी महाजनों से छुडाकर पुण्डरीकाक्ष यदि राजाबहादुर को न भी देते और राजाबहादुर उनके साथ मेना का विवाह कर देते, तो शायद दहेज के रूप में उनका दिया हुआ धन इन गहनों के मूल्य के बराबर किसी प्रकार हो जाता। ऐसी अवस्था मे मेरे हृदय की कामना के पूर्ण होने का मार्ग तो उन्होंने स्वय ही हर प्रकार से बन्द कर रक्खा है।

"पुण्डरीकाक्ष के प्रति मेरे हृदय में जरा भी शत्रुता का भाव नही है। इसके विपरीत उनके हृदय की इस प्रकार की विशालता देख-कर मै मुग्ध हो गया हूँ। विशेषत ऐसी परिस्थिति में, जब कि अपने प्रियपात्र को सुखी करने के लिए उन्हे मै इस प्रकार आग्रहपूर्वक आत्म-त्याग करते देखता हूँ, तब मेरा हृदय उनके प्रति अपार श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठता है।

"इतनी बडी धन-राशि ले जाकर पुण्डरीकाक्ष ने मेरे सामने रख

दी और उसे ग्रहण करने के लिए वे मुझसे अनुरोध करने लगे। उन्हें इस प्रकार का नि स्वार्थ दान करते देखकर मैंने कहा—आप मेनादेवी के साथ विवाह नहीं कर सके, इसके लिए आपको दुःख और क्षोभ नही हो रहा है? इसके उत्तर में पुण्डरीकाक्ष ने कहा—मुझे दुःख तो हो रहा है, किन्तु क्षोभ नही हो रहा है। मैंने मेनादेवी से प्रेम किया है, यही मेरे लिए बहुत है। इसके बदले में मैं भी यदि उनका प्रेम प्राप्त करने में समर्थ हो पाता, तो वह मेरे लिए लाभ की बात होती। यदि उन्हे पत्नी के रूप में प्राप्त कर लेता तब तो मेरा परम लाभ था, इसमें कोई सन्देह ही नही है। परन्तु मैंने तो इस प्रकार की वणिक्-वृत्ति मे लाभ-हानि का लेखा लगाकर प्रेम किया नहीं। 'तस्या प्रीतिः, तत्प्रियकार्य्यसाधनञ्च' उनमे प्रीति है तो उनके प्रिय कार्य्य का साधन करूँ। यह है मेरे प्रेम का आदर्श।

"अपनी सन्तोष-वृत्ति का परिचय देते हुए पुण्डरीकाक्ष ने कहा—हमारे देश मे प्रेम के मार्ग में कितने प्रकार के विघ्न हैं! ऐसा भी प्रायः हो जाता है कि प्रेमिक-प्रेमिका और-और जाति के होते हैं, इससे उनका विवाह नही हो पाता। यह तो सयोग की बात थी कि मेना-देवी मेरी स्वजातीया है। परन्तु जन्मपत्र मिलाने पर ग्रह-योग की प्रतिकूलता होने के कारण भी तो हम दोनों के विवाह में बाधा पड सकती थी! इतने विघ्न जब पद-पद पर हमारे प्रेम के साथ लगे रहते हैं, तब मनोरथ सार्थक न होने पर नीराश होने का तो कोई कारण नही है। आशा छोडकर ही प्रेम करना चाहिए। आशा पूर्ण हो जाय तो अच्छा ही है और यदि न पूर्ण हो तो भी सहन कर जाना चाहिए।

बात यह है कि इसका कोई निश्चय नहीं रहता कि जिससे हम प्रेम करने जा रहे हैं, उसका प्रेम आकर्षित कर ही लेंगे, या उस प्रेम-बन्धन को दृढ करने मे समर्थ हो सकेंगे। यह सोच-समझकर ही

[illegible] भी अभिलाषा नही है। परन्तु नही, मेनादेवी को प्राप्त करने की कामना मुझे हृदय मे निकाल देनी होगी। उन्हे प्राप्त करने का मार्ग मुझे बन्द कर देना होगा। इसलिए जेल जाने के सिवा मेरे लिए और कोई उपाय नही है।

"जेल जाने का भी मेरा यह ढग बहुत ही लज्जाजनक है। कितने लोग देश-सेवा के लिए गौरव के साथ कारागार का जीवन स्वीकार कर रहे है और मै क्या कर रहा हूँ? नितान्त ही स्वार्थपरायणता के साथ अपनी दुर्बलता दूर करने के लिए स्वदेश-प्रेम का मिथ्या आवरण धारण करके जेल जाना चाहता हूँ! एक आघात के कारण जब शरीर और मन व्यथित रहता है, ठीक उसी समय दूसरा भी आघात आकर लग जाता है, तब पहले आघात की बात भूल जाती है। इससे मै एक आघात को एक दूसरे आघात से ढकने जा रहा हूँ और लोग कहेगे—वाह, भास्कर कैसा वीर है!

"इस प्रकार देश-सेवा का ढोंग रचकर जो स्वय अपने को तथा दूसरों को भी ठगने जा रहा है वह हूँ मै, इसके कारण कभी-कभी मन मे बहुत ही लज्जा और धिक्कार का भाव आता है। परन्तु रक्षा का इससे उत्तम और लाभदायक कोई दूसरा उपाय तो दिखलाई पडता नही। इससे इस मार्ग का ही अवलम्बन करना पडेगा।

"अभी अपना सामान यही पडा रहने देता हूँ। काग्रेस का कोई स्वयमेवक भेज दूँगा, वह ले जाकर कही रख देगा। लौटकर आने पर यदि मिल गया तो अच्छा ही है, और यदि कही न मिल सका तो भी मेरा कुछ होना-जाना नही है। इतनी बडी हानि जब मै स्वीकार कर रहा हूँ तब दो चार लेखों, दो-चार पुस्तकों और दो-चार धोती-कुर्ता के खो जाने मे मेरा क्या बिगड जायगा? जो हानि मै स्वीकार कर रहा हूँ मेनादेवी के पास मे जाकर, यहाँ तक कि उन्हे एक बार देखने तक की आशा छोड रहा हूँ, तब इसके सामने तो और सभी प्रकार की हानियाँ मेरे लिए बहुत ही तुच्छ है, नगण्य है। समुद्रे पातिता

श या शिशिर' कि करिष्यति। जिसने समुद्र मे अपनी शय्या लगाई है, उसका शिशिर-ऋतु क्या करेगी।

"भाई डायरी, तुम्हारे कान में मै हृदय की बहुत-सी बाते कह गया और ऐसी बातें कह गया, जो नितान्त ही गोपनीय है। जिन्हे मै और किसी से भी कहने का साहस न कर सकता। मनुष्य को जब हृदय की बात कहने का अवसर नही मिलता तब उसका श्वास-रोध हो उठता है। तुम्ही मेरे एक ऐसे सहायक हो, जिसके सामने मुँह खोलकर मै साँस ले सकता हूँ। तुम्हारे कान मे मैने अपनी अन्तिम बात कह ली। अब और कुछ कहने का समय मुझे न मिलेगा मित्र। इसलिए अब विदा हो रहा हूँ। तुम मुझे विदा दो। जाते समय मै तुम्हारा अभिनमस्कार कर जाऊँगा।"

यही भास्कर की डायरी समाप्त होकर रुक गई थी। शायद यही उसके नेत्र से एक बूँद जल भी गिरा था। उस जल का दाग वहाँ बना था। अन्तिम पक्ति मे एक स्थान की स्याही फैल गई थी।

मेना जब तक डायरी पढ रही थी, तब तक वह बराबर ही आँखें पोंछ-पोंछकर आँसुओं के समूह को हटाती जाती थी। भीगे हुए पक्ष्मजाल के भीतर से ही उसे डायरी पढ़नी पड रही थी। अन्त में आकर उसकी दृष्टि जब भास्कर के अश्रुजल के चिह्न पर पडी तब उसके नेत्रों मे तर-तर करके आँसुओं की धारा बह चली। उसके आँसुओं का झरना उफना आया। शय्या पर लोटकर पश्चात्ताप के मारे वह जलने लगी। उसके मन में बार-बार केवल यही एक बात आती—मै ही हतभागिनी हूँ, मै ही हतभागिनी हूँ; जिसने उन्हे अपमानित करके दु ख के मुख में झोंक दिया है।

मेना का हृदय जैसे-जैसे भास्कर के प्रति प्रीति से पूर्ण होता जाता था, वैसे ही वैसे पुण्डरीकाक्ष की महत्ता के प्रति भी उसे अत्यधिक श्रद्धा होती जा रही थी। वह मन ही मन कहने लगी—एना के भाग्य बडे अच्छे है जो इस प्रकार के व्यक्ति को वह स्वामी के रूप में प्राप्त

करने जा रही हूँ। मेरे भाग्य मे तो सुख है नही, वे ही लोग सुखी हों। भगवान् करें, वे सदा प्रसन्न रहे।

उस दिन रात्रि भर में मेना को एक क्षण के लिए भी निद्रा नही आई। समस्त रात्रि उसने रोते ही रोते बिता दी। दूसरे दिन प्रात काल जब वह उठी तब उसके मुख-मण्डल पर क्लान्ति और विषाद का भाव उदित हो आया था। कमरे मे निकलते ही दीदी के मलिन और सूखे हुए मुख पर एना की दृष्टि पडी। इससे वह भी दु खित हो उठी। विषाद के मारे मुख मलिन किये हुए आकर एना ने दीदी के हाथ पर हाथ रख दिया और उसे सान्त्वना देने के लिए कोमल-स्वर मे केवल पुकार कर ही रह गई—दीदी!

मेना ने दृष्टि उठाकर बहन की ओर देखा। उसकी ओर देखते ही मेना के नेत्रों मे आँसुओं की झडी लग गई। एना की भी आँखें भीग उठीं।

ज़रा देर तक चुपचाप आँसू बहा लेने के बाद मेना ने कहा—मैंने ही उन्हे ठेलकर जेल भेजा है एना!

आश्चर्य में आकर एना ने कहा—यह कैसे? इसके उत्तर में मेना भास्कर की डायरी का हाल आदि से अन्त तक एना को बतला गई।

सारी बाते सुनने पर एना को जब भास्कर का परिचय मिला तब वह आश्चर्य मे आ गई। भास्कर के स्वदेश-प्रेम का हाल जानकर उसे सन्तोष हुआ। मेना ने बिना सोच-विचार किये एकाएक जो उसे इस प्रकार का रूखा और कटु उत्तर दे दिया, इसके कारण एना दु खी हुई, साथ ही वह सुखी भी हुई पुण्डरीकाक्ष की नि स्वार्थ परोपकार-परायणता का हाल जानकर। दूसरे का हित-साधन करने के लिए पुण्डरीकाक्ष इतना आत्मत्याग कर सकते है, यह जानकर एना का हृदय श्रद्धा से लबालब भर उठा। उसके हृदय में सुख और दु ख दोनों ही की तरङ्गें पास ही पास नाचने लगी। उसके मुख पर सुख

और दु ख की छाया मेघ से ढकी हुई सूर्य्य की किरणो के समान रह-रहकर प्रकट होने और छिपने लगी।

एना से सारा हाल राजाबहादुर ने सुना। पुण्डरीकाक्ष ने भी सुना। अपनी प्रशसा से वह लज्जित हो उठा। उसके मुख पर भी व्यथा की एक हलकी-सी छाया उदित हो आई। किन्तु मुख पर मुस्कराहट का भाव लाते हुए उसने अपनी झुकी हुई दृष्टि उठाकर एक बार एना और मेना की ओर ताका।

राजाबहादुर तथा सत्यनिधन एटर्नी ने मिलकर भास्कर के मुकदमे में वडी पैरवी की। कई वकील-बैरिस्टर नियुक्त किये। राजाबहादुर ने स्वय ज़मानतदार होकर उसे छुडाने के लिए दरख्वास्त दी, किन्तु किसी प्रकार भी वह छूट न सका।

भास्कर के ऊपर जो अभियोग लगाया गया था उसे उसने स्वीकार कर लिया। साथ ही उसने बहुत जोरदार शब्दों में कहा—मैंने स्वदेश-प्रेम के सम्बन्ध में व्याख्यान देकर, वन्दे मातरम् की ध्वनि करके या राष्ट्रीय झडा फहराकर कोई नैतिक अपराध नही किया है। ये बातें सुनने के बाद अदालत ने भास्कर को एक वर्ष का सपरिश्रम कारावास का दण्ड दिया।

एक दिन जेल में भास्कर को सूचना मिली कि मेना उससे मिलने आई है। पहले तो भास्कर ने यही सोचा कि उससे मिलना अस्वीकार कर दूं। परन्तु उसके बाद ही एक बार मेना को देख लेने की इतनी प्रबल इच्छा उसके हृदय मे उत्पन्न हुई कि उसका उससे न मिलने का सङ्कल्प हवा हो गया।

कैदियों से मिलने के लिए जो स्थान निर्दिष्ट था, वहाँ पर मेना आई। उसके ऊपर दृष्टि पडते ही भास्कर के मन में आया—

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणि।
अति-निष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति॥

मेना मोटे खद्दर की एक साडी और खद्दर की ही एक कुर्ती पहने

हुए थी। उसके शरीर पर कोई आभूषण नही था। दोनों हाथों में केवल पतली-पतली दो-चार चूडियाँ भर थी। पैर उसके नगे ही थे।

भास्कर के समीप आते ही मेना उसके चरणों पर लोट पडी। दण्डवत्-प्रणाम करने के वाद आँसुओं से भास्कर के चरण धोते-धोते क्षीण कण्ठ से वह केवल इतना भर कह सकी—तुमने मेरा अक्षम्य अपराध क्षमा नही किया, यह अच्छा किया है। यह दण्ड तुमने नहीं ग्रहण किया, मुझे दिया है। तुमसे क्षमा प्राप्त करने के लिए मैं आजन्म प्रतीक्षा करती रहूँगी। यदि हो सके, मेरा प्रायश्चित्त समाप्त होने पर मुझे क्षमा कर देना।

भास्कर नीचे की ओर झुका। उसने मेना के हाथ पकडकर उसे उठाया। मुह से वह कुछ बोला नहीं, मेना के मुह की ओर ताकते हुए उसने अपनी मुस्कराहट से उसे अभिनन्दित किया।

मेना ने भास्कर के हाथ से अपना हाथ खींचा नही। भास्कर ने भी मेना का हाथ नही छोडा। आँखों में आँसू-भरे हुए मेना ने कहा—मैंने तुम्हारी डायरी पढी है, सारी वाते मुझे मालूम हो गई है। पिता जी से कहकर मैंने उनकी सारी सम्पत्ति का एना के नाम विल करवा दिया है। अपने लिए मैंने उन्हे एक कौडी भी नही छोडने दिया। मेरे पास जितने भी वस्त्र और आभूषण थे, वे सब मैंने दीन-दुखियो को दे दिये है। अव मैं विलकुल खाली हाथ रहकर तुम्हारे अनुग्रहरूपी महान् ऐश्वर्य्य के लिए तपस्या करूँगी। तुम्हे यदि प्रसन्न कर सकी तो तुमसे मैं वर माँगूंगी कि तुम अपने आपको मुझे दान कर दो।

भास्कर ने मेना के दोनों हाथ जोर से पकड लिये। मुख पर प्रसन्नता का भाव विकसित करके उसने कहा—इस समय मैं व्रतधारी हूँ। अभी मैं कुछ न कहूँगा। मुझे लौटने दो।

मेना ने अपनी करुणा से भरी हुई कातर-दृष्टि से भास्कर की ओर एक वार फिर ताका। तव उसने उसके चरणों पर मस्तक रखकर

प्रणाम किया और भास्कर की आकृति पर जो आनन्द का भाव विकसित था, उससे अभिषिक्त होकर वह धीरे धीरे जेल से निकल आई।

भास्कर से मैना को अकेले में मिलने का अवसर मिल सके, इसी लिए उसके साथ और कोई नहीं गया था। जेल के फाटक के पास ही एना गाडी पर बैठी हुई मैना की प्रतीक्षा कर रही थी। लौटकर आते ही एना ने देखा कि दीदी की नेत्रो की पलकें भीगी हुई तो है, किन्तु उनका मुख उज्ज्वल है। इससे उसे आशा हुई। आनन्दमय कौतूहल के साथ उसने पूछा—दीदी, क्या उन्होने क्षमा कर दिया है?

गाडी पर बैठती हुई मैना बोली—हाँ भाई, उनसे क्षमा मिल गई, उन्होंने मेरा पाणि-ग्रहण किया है।

बडी बहन के सौभाग्य की सूचना का संवाद मिल जाने पर एना का मुख आनन्द से उज्ज्वल हो उठा।

॥ इति ॥